षूंदि गरजंता षूंदि गुणिवंता अनंत सिधां की बांणी।
गोरष नाथ गगन मिलिया जागत मैं षि निदांणी॥

—सबदी, १००

गोरख-बानी

संपादक और टीकाकार

डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

एम्० ए०, डी० लिट्० (बनारस)



हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

द्वितीय संस्करण : २००३ वि० : १००० प्रतियाँ

मुद्रक—ए० पी० शर्मा, शारदा प्रेस, नया कटरा—प्रयाग

प्रकाशक का वक्तव्य

गुरु गोरखनाथ के नाम से हमारा अशिक्षित समाज तक अपरचित नहीं, किन्तु उनके जीवनचरित वा रचनाओं का पूरा पता अभी अपने विशेषज्ञों तक को नहीं है। 'गोरख' शब्द के पीछे अभी तक एक अनोखा रहस्य छिपा हुआ जान पड़ता है, और गुरु गोरखनाथ किसी अतीत युग के कोई अद्भुत व्यक्ति समझ पड़ते हैं, जिन पर विविध काल्पनिक धारणाओं के धुँधलेपन ने एक पौराणिक आवरण-सा डाल रक्खा है। फिर भी काबुल से कामरूप एवं काठ मांडू से सुदूर दक्षिण तक के कदाचित् ही कोई प्रदेश इनके प्रभाव से वंचित हो। भ्रमणशील यात्रियों को यदि कहीं खोह, कहीं टीले, कहीं मंदिर वा कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न जातियों वा संस्थाओं द्वारा इनका स्मरण हो आता है, तो अध्ययनशील पाठकों के सामने, संस्कृत, बँगला, मराठी, पंजाबी, हिन्दी आदि भाषाओं की रचनाओं के अंतर्गत, इनकी योगपद्धति, शरीरविज्ञान, कायाकल्प, आत्मनिरीक्षण, शुद्धचार वा समाज-सुधार-संबन्धी सिद्धांतों के अनेक प्रभाव बराबर दृष्टिगोचर होते रहते हैं। इनके नाम के साथ-साथ एक विचित्र परंपरा सी बँधी हुई है, जिसमें गोपीचन्द, भरथरी, मयनामती, मछींद्र, हाडीया, जलंधर, चर्पट, चौरंगी, वा सैकड़ों कनफटे योगियों के जीते-जागते चित्र भरे पड़े हैं, और जिसके आधार पर भिन्न-भिन्न 'गान' वा कहानियाँ भी रची जा चुकी हैं।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में गुरु गोरखनाथ वा उनके पंथवालों की रचानाओं को एक विशेष महत्त्व का स्थान प्राप्त है। इनके पदों व सबदियों की रचना का समय बौद्ध सिद्धों के प्राचीन दोहों व चर्यागीतियों के प्रायः पीछे तथा संतों के शब्दों एवं साखियों के बहुत पहले आता है। तदनुसार, यदि आज तक की इन सभी उपलब्ध रचनाओं का एक साथ तुलनात्मक अध्ययन कर उस पर विचार किया जाय तो, इनके विषय, भाषा व रचना-शैली में एक विचित्र साम्य दीख पड़ेगा, और जान पड़ेगा कि लगभग एक ही प्रकार की विचारधारा व परंपरा का क्रमिक विकास बहुत काल तक निरंतर होता आया। उदाहरण के लिए मनोमारण वा चित्तशुद्धि, सहजभाव वा सहजानुभूति, विडंबना-विरोध व स्पष्टवादिता की झलक प्रायः सर्वत्र एक-सी दीख पड़ती है तथा रूपकों व उलट-

योगियों द्वारा उपदेशों व सिद्धांतों के स्पष्टीकरण का निराला ढंग भी बराबर लक्षित होता रहता है। इसके सिवाय कबीर साहब आदि कई संत गुरु गोरखनाथ के प्रति न्यूनाधिक श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए भी जान पड़ते हैं, और उन्होंने कई स्थलों पर इनके भावों शब्दों व वाक्यांशों तक को ज्यों-का त्यों अपनाया है। गुरु गोरखनाथ या उनके पंथ के प्रभावों से हिन्दी के प्रेममार्गी सूफ़ी कवि भी अछूते नहीं, और हम देखते हैं कि जायसी ने 'पद्मावत' में राजा रतनसेन को योगी का रूप देते व सिंहलगढ़ को कायागढ़-सा वर्णन करते समय भी नाथ-पंथ के ही आदर्शों वा पद्धतियों का स्पष्ट अनुसरण किया है, और एक प्रकार से उन्हीं के आधार पर अपना परिणाम तक निकाला है।

गुरु गोरखनाथ व नाथ-पंथियों की हिन्दी रचनाएँ अभी तक अधिकतर हस्तलिखित रूप में ही पड़ी हुई हैं और उन्हें पढ़ने वा देखने तक का सुअवसर बहुत कम लोगों को मिल रहा है। बौद्ध सिद्धों की कई प्राचीन हिन्दी वा अपभ्रंश की रचनाएँ सुदूर तिब्बत व नेपाल से प्राप्त की जाकर टीका-टिप्पणियों के साथ विस्तृत रूप में छप चुकी हैं, और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, डाक्टर शहीदुल्ला, डाक्टर बागची व श्री राहुल सांकृत्यायन ने उनके पाठभेद वा आलोचना पर भी न्यूनाधिक प्रकाश डाला है, किन्तु हिन्दी पुस्तकों की खोज वाले विवरणों से पता चलता है कि नाथ-पंथ विषयक ऐसे तीसों ग्रंथ फुटकर वा संग्रहों के रूप में पड़े हुए हैं जिन्हें भलीभाँति संपादित करके, प्रकाशित करने की चेष्टा भी नहीं की गई। अभी जहाँ तक पता है, केवल एक ग्रंथ 'गोरख-बोध' व कुछ फुटकर पदों को लाहौर के डाक्टर मोहनसिंह ने अंग्रेज़ी अनुवाद व कुछ टिप्पणियों के साथ छपाया है। डाक्टर बड़थ्वाल ने, प्रस्तुत संग्रह में, उस ग्रंथ के साथ-साथ बहुत सी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं को भी संपादित कर 'गोरख-बानी' के नाम से सर्वसाधारण के सामने लाने का प्रयत्न किया है।

'गोरख-बानी' में संगृहीत रचनाओं के अंतर्गत हमें नाथ-पंथ के प्रायः मुख्य मुख्य सिद्धान्तों की बानगी देखने को मिलती है। गुरु गोरखनाथ का पंथ उपनिषद् दर्शनों का सार-भाग लेकर चला है। उसके प्रवर्तक का इस बात में पूर्ण विश्वास है कि आत्मा की खोज में कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, वह इसी शरीर के भीतर—यति, पिंड के भीतर गुप्त एवं पुरुष के हृदय में पुरुष की ज्योति—स्वरूप व सर्वनिहित है। उन्होंने, प्राचीन हठयोग-पद्धति को ग्रहण करते हुए भी, उसकी बहुत सी क्रियाओं का अधि-

कतर लाक्षणिक अर्थ ही लगाया है, और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है केवल बाह्य बातों में न पड़ कर हमें आत्मचिंतन की ओर ही विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके सिवाय उन्हें बाह्य विडंबनाओं के प्रति बड़ी घृणा है, और वे कल्पित देवी देवताओं की आराधना के प्रति अश्रद्धा तथा वर्ण-विभेद व सांप्रदायिक संकीर्णता के प्रति घोर-विरोध प्रदर्शित करते हुए और ब्रह्मचर्य, आत्मसंयम व युक्ताहार विहारादि में अटूट विश्वास रखते हुए दीख पड़ते हैं। 'गोरख-बानी' में, इसी प्रकार, नाथ-पंथ की गुरु-परंपरा, मछींद्र नाथ के कामरूप-निवासी एवं मयनामती रानी की तथा आदि कई बातों के भी उल्लेख अनेक बार आए हैं।

'गोरखबानी' में संगृहीत सभी रचनाएँ, संभवतः गुरु गोरखनाथ की कृति नहीं हैं। इनमें से कुछ एक में दूसरों के नाम स्पष्ट-रूप में आए हैं और कई-एक की, बहुत सी अन्य बातों के कारण भी सहसा उनकी रचना नाम लेना उचित नहीं जान पड़ता। फिर भी इतना निश्चित है कि ऐसी रचनाएं उनके अनुयायियों की ही हो सकती हैं। विद्वान् संपादक ने इन रचनाओं को, कम से कम आधे दर्जन से अधिक प्रतियों का मिलान कर, अनेक पाठभेदों के साथ प्रकाशित कराया है और उनका अनुवाद करते अथवा उन पर यथास्थल टिप्पणी आदि देते समय किन्हीं संस्कृत वा प्राचीन हिंदी टीकाओं से भी थोड़ी-बहुत सहायता ली है। संग्रह में पदों व सबदियों के अतिरिक्त लगभग एक दर्जन छोटे-छोटे फुटकर ग्रंथ भी आ गए हैं, जिनमें से दो की रचना गद्य में हुई है। 'गोरख-बानी' विषय, भाषा, शैली आदि अनेक दृष्टियों से अध्ययन के उपयुक्त एक महत्त्वपूर्ण संग्रह है जिसका हिंदी साहित्य के प्रेमियों द्वारा समुचित स्वागत होना चाहिए।

इलाहाबाद
१ अक्टूबर १९४२

रामचंद्र टंडन
साहित्य मंत्री

वासियों द्वारा उपदेशों व सिद्धांतों के स्पष्टीकरण का निराला ढंग भी बराबर लक्षित होता रहता है। इसके सिवाय कबीर साहब आदि कई संत गुरु गोरख-नाथ के प्रति न्यूनाधिक श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए भी जान पड़ते हैं, और उन्होंने कई स्थलों पर इनके भावों शब्दों व वाक्यांशों तक को ज्यों-का त्यों अपनाया है। गुरु गोरखनाथ वा उनके पंथ के प्रभावों से हिन्दी के प्रेममार्गी सूफ़ी कवि भी अछूते नहीं, और हम देखते हैं कि जायसी ने 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन को योगी का रूप देते व सिंहलगढ़ को कायागढ़-सा वर्णन करते समय भी नाथ-पंथ के ही आदर्शों वा पद्धतियों का स्पष्ट अनुसरण किया है, और एक प्रकार से उन्हीं के आधार पर अपना परिणाम तक निकाला है।

गुरु गोरखनाथ व नाथ-पंथियों की हिन्दी रचनाएँ अभी तक अधिकतर हस्तलिखित रूप में ही पड़ी हुई हैं और उन्हें पढ़ने वा देखने तक का सुअवसर बहुत कम लोगों को मिल रहा है। बौद्ध सिद्धों की कई प्राचीन हिन्दी वा अप-भ्रंश की रचनाएँ सुदूर तिब्बत व नेपाल से प्राप्त की जाकर टीका-टिप्पणियों के साथ किसी न किसी रूप में छप चुकी हैं, और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, डाक्टर शहीदुल्ला, डाक्टर बागची व श्री राहुल सांकृत्यायन ने उनके पाठभेद वा प्रामाणिकता पर भी न्यूनाधिक प्रकाश डाला है, किन्तु हिन्दी पुस्तकों की खोज वाले विवरणों से पता चलता है कि नाथ-पंथ विषयक ऐसे तीसों ग्रंथ फुटकर वा संग्रहों के रूप में पड़े हुए हैं जिन्हें भलीभाँति संपादित करके, प्रकाशित करने की कभी चेष्टा भी नहीं की गई। अभी जहाँ तक पता है, केवल एक ग्रंथ 'गोरख-बोध' व कुछ फुटकर पदों को लाहौर के डाक्टर मोहनसिंह ने अंग्रेज़ी अनुवाद व कुछ टिप्पणियों के साथ छपाया है। डाक्टर बड़थ्वाल ने, प्रस्तुत संग्रह में, उक्त ग्रंथ के साथ-साथ बहुत सी अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं को भी संपादित कर 'गोरखबानी', के नाम से सर्वसाधारण के सामने लाने का प्रयत्न किया है।

'गोरख-बानी' में संगृहीत रचनाओं के अंतर्गत हमें नाथ-पंथ के प्रायः मुख्य-मुख्य सिद्धांतों की बानगी देखने को मिलती है। गुरु गोरखनाथ का पंथ प्रसिद्ध षट्दर्शनों का सार-भाग लेकर चला है। उसके प्रवर्त्तक का इस बात में पूर्ण विश्वास है कि आत्मा की खोज में कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, वह अपने भीतर—काठ के भीतर—अग्नि, बीज के भीतर वृक्ष एवं पुष्प के भीतर गंध की भाँति—व्याप्त व अंतर्निहित है। उन्होंने, प्राचीन हठयोग-पद्धति की अनेक बातों को स्वीकार करते हुए भी, उसकी बहुत सी क्रियाओं का अधि-

कतर लाक्षणिक अर्थ ही लगाया है, और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है केवल बाह्य बातों में न पड़ कर हमें आत्मचिंतन की ओर ही विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके सिवाय उन्हें बाह्य विडंबनाओं के प्रति बड़ी घृणा है, और वे कल्पित देवी देवताओं की आराधना के प्रति अश्रद्धा तथा वर्ण-विभेद व सांप्रदायिक संकीर्णता के प्रति घोर-विरोध प्रदर्शित करते हुए और ब्रह्मचर्य, आत्मसंयम व युक्ताहार विहारादि में अटूट विश्वास रखते हुए दीख पड़ते हैं। 'गोरख-बानी' में, इसी प्रकार, नाथ-पंथ की गुरु-परंपरा, मछींद्र नाथ के कामरूप-निवासी एवं मयनामती रानी की तथा आदि कई बातों के भी उल्लेख अनेक बार आए हैं।

'गोरखबानी' में संगृहीत सभी रचनाएँ, संभवतः गुरु गोरखनाथ की कृति नहीं हैं। इनमें से कुछ एक में दूसरों के नाम स्पष्ट-रूप में आए हैं और कई-एक की, बहुत सी अन्य बातों के कारण भी सहसा उनकी रचना नाम लेना उचित नहीं जान पड़ता। फिर भी इतना निश्चित है कि ऐसी रचनाएं उनके अनुयायियों की ही हो सकती हैं। विद्वान् संपादक ने इन रचनाओं को, कम से कम आधे दर्जन से अधिक प्रतियों का मिलान कर, अनेक पाठभेदों के साथ प्रकाशित कराया है और उनका अनुवाद करते अथवा उन पर यथास्थल टिप्पणी आदि देते समय किन्हीं संस्कृत वा प्राचीन हिंदी टीकाओं से भी थोड़ी-बहुत सहायता ली है। संग्रह में पदों व सबदियों के अतिरिक्त लगभग एक दर्जन छोटे-छोटे फुटकर ग्रंथ भी आ गए हैं, जिनमें से दो की रचना गद्य में हुई है। 'गोरख-बानी' विषय, भाषा, शैली आदि अनेक दृष्टियों से अध्ययन के उपयुक्त एक महत्त्वपूर्ण संग्रह है जिसका हिंदी साहित्य के प्रेमियों द्वारा समुचित स्वागत होना चाहिए।

इलाहाबाद
१ अक्टूबर १९४२

रामचंद्र टंडन
साहित्य मंत्री

विषय-सूची

भूमिका

"कबीर का संबंध सिद्धों से मिलाना उतना आसान नहीं है..........। भोटिया-साहित्य की सहायता से इस" सिद्धों "की धारा को बारहवीं शताब्दी तक ला सकते हैं। लेकिन बाद की—कबीर तक की तीन शताब्दियों को भरना असंभव-सा ही मालूम होता है।[1]"—भदंत राहुल सांकृत्यायन ने अपने एक लेख में लिखा। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने इतिहास में इस पर टिप्पणी करते हुए कहा, "किंतु मैं समझता हूँ कि यह आसान है, यदि सिद्धों के साथ नाथ संप्रदाय वालों को भी सम्मिलित कर लिया जाय। मैं नहीं कह सकता कि इस बहुत ही स्पष्ट विकास की ओर" राहुल जी की "दृष्टि क्यों नहीं गई?[2]"

जो बात राहुल जी को कठिन जान पड़ी वही उपाध्याय जी को इस लिए सरल लगी कि उनके सामने[3] 'हिंदी काव्य में योग-प्रवाह' शीर्षक मेरा निबंध था जो राहुल जी के सामने नहीं था। इस निबंध[4] में मैंने पहले-पहल नाथ योगियों और उनकी कविता का परिचय दिया था। इस संक्षिप्त परिचय ही से विद्वानों ने मान लिया कि नाथ योगियों की 'बानियां' हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास की लड़ी में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। इससे उनके संग्रह और संपादन की आवश्यकता स्पष्ट है। जिस कार्य को मैंने इस ग्रन्थ—'जोगेसुरी बानी' किया है।

यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में गोरखनाथ की बानी संग्रहीत हैं और दूसरे भाग में अन्य योगियों की बानियां। नाथ योगियों की

[1] सरस्वती, वर्ष ३२, खंड १, पृष्ठ ७१२। यह निबंध टिप्पणी ४ वाले मेरे निबंध से पहले लिखा और छपने भेज दिया गया था।

[2] 'हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास'—रामदीनसिंह रीडरशिप व्याख्यान, पृष्ठ १७५-६

[3] वही, पृष्ठ १७१, पाद-टिप्पणी।

[4] काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के साहित्य परिषद् में कोषोत्सव के अवसर पर दिया गया व्याख्यान (दिसम्बर १६३०) और पीछे नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ११, सं० ४ (माघ १९८७ वि०) में प्रकाशित।

बानियां कई हस्तलिखित प्रतियों में मिलती हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है—

(क) प्रति—पौढ़ी हस्तलेख—यह प्रति पौढ़ी, गढ़वाल के पंडित तारादत्त गैरोला को जयपुर से प्राप्त हुई थी। इसके चार विभाग हैं। पहले में दादू, कबीर, नामदेव, रैदास और हरिदास के ग्रन्थ हैं। दूसरे में योगियों की रचनाएं हैं। तीसरे में दादू के सुंदरदास, गरीबदास, रज्जबदास आदि कई शिष्यों की बानियां हैं, और चौथे में सर्वांगी ग्रन्थ, जिसमें रज्जब ने गोरखनाथ से लेकर तुलसीदास तक समस्त योगी साधु, संत, महात्माओं की चुनी बानियों का उत्तम संग्रह किया है। इस ग्रन्थ से योगियों की बानियां भी नकल कराकर उनका मैंने मूल से मिलान किया। इस प्रति के अंतिम अंश के साथ पुष्पिका नष्ट हो गयी है, इस लिए उसके लिपिकाल का पता नहीं चलता। यह असंभव नहीं कि यह प्रति रज्जब जी ही के लिए अथवा उनके समय में लिखी गई हो। यदि यह बात हो तो इसका समय संवत् १७१५ के आसपास होना चाहिए। यह सबसे पहली प्रति है जिसके द्वारा योग-साहित्य के साथ मेरा साक्षात् परिचय हुआ। (क) को छोड़कर और सब प्रतियों का उल्लेख उस क्रम से किया गया है जिससे वे मुझे मिली हैं।

(ख) जोधपुर दरबार पुस्तकालय की प्रति। जोधपुर के पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष पं० विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ ने इसकी नकल कराकर भेजने की कृपा की। परन्तु इसमें गोरखनाथ की रचनाओं में केवल सबदियां आईं। विधिवशात् उस समय गोरख की अन्य रचनाएं न प्राप्त हो सकीं। इसका भी समय अज्ञात है।

(ग) यह प्रति मुझे जोधपुर के श्री गजराज ओझा से उपलब्ध हुई। इसमें आरंभ में कबीर की साखियां हैं। तदुपरांत योगियों की सबदियां और अंत में हठयोग के कुछ हिंदी ग्रन्थ। इसमें भी गोरख की केवल सबदियां हैं, अन्य रचनाएं नहीं। लिपिकाल इसका भी ज्ञात नहीं।

(घ) यह प्रति मुझे जोधपुर के कविया श्री शुभकरण चारण से प्राप्त हुई। यह बृहद् संग्रह-ग्रन्थ है जिसे एक निरंजनी साधु ने प्रस्तुत किया था।

इसमें हरिदास आदि निरंजनी साधुओं और कबीर आदि निर्गुणी संतों की बानियों के साथ-साथ योगियों की बानियां भी हैं। यह प्रति संवत् १८२५ में लिखी गई थी।

(ङ) मंदिर बाबा हरिदास, नारनौल, राज्य पटियाला में है और कार्तिक सुदी अष्टमी गुरुवार १७६४ की लिखी है। इसे गंगाराम निरंजनी वैष्णव ने स्वामी रूपदास के पठनार्थ जयपुर में लिखा था। नागरी-प्रचारिणी सभा की पंजाब-खोज के विवरणों में इसकी नकल की गई थी।

(च) यह प्रति श्रीयुक्त पुरोहित हरिनारायण जी, बी० ए०, जयपुर के पास है। इसमें बहुत से ग्रन्थ हैं। प्रति का लिपिकाल पुष्पिका में इस प्रकार दिया हुआ है—

संवत् १७१५ वर्षे शाके १५८० महामंगलीक फाल्गुन मासे शुक्लपक्षे त्रयोदस्यां तिथौ १३ गुरुवासरेः डिंडपुर मध्ये स्वामी पिराग-दास जी शिष्य स्वामी माधोदास जी तत्शिष्य वृन्दावनेनालेखि आत्मार्थे॥ शुभं भवतु ॥ श्री रामो जयति ॥

(छ) यह प्रति भी पुरोहित जी के पास है। यह भी बड़ा संग्रह-ग्रन्थ है। रज्जब जी की साखी की समाप्ति के बाद जो योगियों की बानी के कुछ पीछे आती है, लिपिकाल में यों दिया है—

संवत् १७४१ जेठ मासे ॥ थावर वारे ॥ तिथिता ॥८॥ दीन ९ मै लिपि पर्ति स्वांमीं सांई दास को सु लिपि ॥

(ज) यह प्रति भी उक्त पुरोहित जी के पास है और सं० १८५५की लिखीहै।

(झ) इस प्रति की नकल एक महत्वपूर्ण सूत्र के द्वारा करायी गई है। बाबा ज्वालानाथ, ग्राम अडिंगापुर कुटी, पो० औ० माधौगंज, जिला हरदोई के पास इसका होना बताया गया है। नकल तो उपलब्ध है, किंतु मूल से मिलान के उद्देश्य से जब उक्त पते से पत्र भेजा गया तो डेड लेटर आफिस से यह वापिस आ गया। उस पर माधौगंज पो० औ० के किसी व्यक्ति ने लिखा था कि उस हलके में उक्त नाम का कोई स्थान नहीं है। इस नकल का उल्लेख करना इस लिए आवश्यक हो गया है कि गोरखनाथ के नाम से प्रचलित कुछ रचनाएं इसमें सेवादास की कही गई हैं और कुछ अन्यों को

नकल करनेवाले ने सेवादास को कहा है।

(ञ) इनके अतिरिक्त इन योगियों की रचनाओं के एक संस्कृत अनुवाद की हस्तलिखित प्रति मिलती है जो सरस्वती भवन, काशी में है। इसमें लिपिकाल नहीं दिया गया है और आरंभ का कुछ अंश नहीं है।

इन सब प्रतियों के द्वारा अब तक गोरखनाथ के नाम से प्रचलित चालीस छोटी-मोटी रचनाओं का पता चला है। कौन-कौन रचना किस किस प्रति में आई है, यह निम्नलिखित सरणी में दिखाया गया है—

	(च)	(क)	(छ)	(ङ)	(घ)	(ज)	(अ)	(झ)
	१७१५...		...१७४३	१७९४	१८२५	१८५५...		...१७६४
१. सबदी	❀	❀	❀	❀	❀		❀	
२. पद	❀	❀	❀	❀	❀	❀		
३. सिष्यादरसन	❀	❀	❀		❀			
४. प्रांण संकली	❀	❀	❀				❀	
५. नरवै बोध	❀	❀	❀		❀		❀	
६. आत्मबोध (१)	❀	❀			❀		❀	
७. अभैमात्रा जोग	❀	❀	❀		❀		❀	
८. पंद्रह तिथि	❀	❀	❀	❀	❀		❀	
९. सप्त वार	❀	❀	❀	❀	❀		❀	
१०. मछींद्र गोरखबोध	❀	❀	❀		❀			
११. रोमावली		❀	❀		❀		❀	
१२. ग्यानतिलक					❀	❀	❀	
१३. ग्यानचौंतीसा	❀		❀	❀(?)			❀	
१४. पंचमात्रा		❀	❀		❀		❀	
१५. गोरख गणेशगोष्टी	❀	❀	❀	❀		❀	❀	❀
१६. गोरख दत्त गोष्टी (ग्यान दीप बोध)		❀		❀	❀			
१७. महादेव गोरख गुष्टि	❀	❀	❀	❀				❀
१८. सिष्ट पुरान			❀	❀	❀	❀	❀	❀
१९. दयाबोध			❀	❀	❀	❀		❀

	(च)	(क)	(छ)	(ङ)	(घ)	(ज)	(ञ)	(झ)
	१७१५	...	१७४३	१७६४	१८५२	१८५५	...	१७१४
२०. जाती भौंरावली (छंद गोरख)		❀	❀		❀			
२१. नवग्रह			❀	❀	❀			
२२. नवरात्र			❀				❀	
२३. अष्ट पारछ्या			❀		❀			
२४. रह रास					❀	❀		
२५. ग्यान माला					❀	❀		
२६. आत्माबोध (२)	❀				❀			
२७. व्रत		❀				❀		
२८. निरंजन पुराण				❀				
२९. गोरख वचन			❀					
३०. इंद्री देवता			❀					
३१. मूल गर्भावली			❀					
३२. खाणी वाणी			❀					
३३. गोरख सत				❀				
३४. अष्ट मुद्रा					❀			
३५. चौबीस सिधि					❀			
३६. षडक्षरी					❀			
३७. पंच अग्नि					❀			
३८. अष्टचक्र					❀			
३९. अवलि सिलूक		❀						
४०. काफिर बोध		❀						

हिंदी के ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां बहुत प्राचीन नहीं मिलतीं। जो कुछ मिलती हैं विक्रम की सत्रहवीं अठारहवीं शती के इधर की ही हैं। रमते जोगियों की बानी के प्राचीन हस्तलेखों का न मिलना भी कोई अचरज की बात नहीं। क्योंकि वे चेलों और अनुयायियों के जीभ कान होती हुई आई होंगी। आखिर बानी ही ठहरीं। ऊपर की सारणी को देखने से पता चलेगा कि कोई भी दो प्रतियां आपस में सर्वथा मेल नहीं खाती। श्रुति-परंपरा से होती आती हुई इन

बानियों के संबंध में दो तथ्यों की ओर ध्यान जाता है। एक ओर तो नाथ गुरुओं की बानी के प्रति उनके शिष्यों में जो प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास की भावना होती है, वह उसे नष्ट होने से बचाती है, और दूसरी ओर स्मृति के कारण उसमें कुछ परिवर्तन या छूट हो जाती है तथा सांप्रदायिक उद्देश्य और मत-विकास या परिवर्तन या स्पष्टीकरण की अभिलाषा गुरुओं के नाम से नई रचनाओं के गढ़े जाने और पुरानी रचनाओं में परिवर्धन या परिवर्तन का कारण होती हैं। अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग परिवर्तन और परिवर्धन होते हैं। इस लिए विभिन्न स्रोतों से होकर आनेवाली प्रतियाँ उस छानबीन में सहायक होती हैं जिनके आधार पर हम मूल रचनाओं के निकट तक पहुँचने का प्रयत्न कर सकते हैं।

ऊपर की सरणी में, ज्ञात-लिपि कालवाली प्रतियों में से (च) प्रति (सं० १७१५) सब से पुरानी है। उसमें गोरख के नाम से १५ रचनाएं दी हैं। केवल (ङ) प्रति (सं० १७६४) में इससे कम अर्थात् १२ रचनाएं हैं जिनमें से सात (च) के साथ समान हैं और ६ उसमें नहीं हैं। अन्य सब प्रतियों में इससे अधिक रचनाएँ हैं। (छ) प्रति में ही जो (च) से केवल २६ वर्ष बाद की लिखी है २४ रचनाएं हैं जिनमें से १२ (च) में नहीं हैं। (घ) में सब से अधिक अर्थात् २६ हैं जिनमें से १६ (च) में नहीं हैं। (च) से सब से अधिक समानता रखनेवाली प्रति (क) है (काल अज्ञात संभवतः लगभग सं० १७१५)। उसमें की वह रचनाओं में से भी ८ (च) में नहीं हैं। इसी प्रकार (च) में की चार रचनाएं (क) में, तीन (छ) में, पाँच (घ) में, छः (ङ) में, और १२ रचनाएं (ज) में और ६ (अ) में नहीं हैं।

(च) प्रति के सब से पुरानी होने के कारण उसको सब से महत्वपूर्ण मानना उचित है और उससे अधिक समानता वाली (क) को भी। इस लिए पुस्तक के मूल अंश के लिए चयन करने के अर्थ मैंने उनको आधार माना है। परन्तु उनकी सब रचनाओं को नहीं लिया है। उनमें की उन्हीं रचनाओं को लिया है जिनका समर्थन अधिकांश अन्य प्रतियों से हो जाता है। (अ) प्रति का महत्त्व यह है कि उसे संप्रदाय के किसी स्तंभ ही ने प्रस्तुत कराया होगा। इसलिए उसमें उन बानियों का होना आवश्यक है, जिनका सम्प्रदाय में मान रहा होगा। 'गोरख गणेस गोष्टी' और महादेव गोरख गुष्टि' को मैंने छोड़ दिया है। यद्यपि वे (च) में हैं और अन्य प्रतियां पहली का तथा तीन दूसरी का समर्थन करती हैं। कारण आगे कहेंगे। इस प्रकार सरणी में की प्रथम दस रचनाएं मूल

अंश में आयीं। सं० ११ से १४ तक को भी मैंने मूल भाग में लेने के योग्य समझा है। इनमें से 'ग्यांन चौतीसा' (च) में है और (छ) तथा (ञ) से उसका समर्थन हो जाता है। परंतु उसको मैं समय पर प्राप्त करने में समर्थ न रहा। फिर भी आशा है कि शीघ्र ही वह भी अवश्य साहित्यिकों को उपलब्ध हो जायगा। 'रोमावली' और 'पंचमात्रा' (क) में हैं और (छ), (घ) तथा (ञ) के द्वारा उनका समर्थन हो जाता है। 'ग्यांन तिलक' ही एक ऐसी रचना है जो (क) (च) में नहीं है, और ऊपर की सरणी में केवल तीन प्रतियों में आई है और जिसे मैंने मूल अंश में रक्खा है। (ञ) में होने के कारण इसका सांप्रदायिक परंपरागत महत्त्व स्पष्ट है। भाषा की दृष्टि से पुरानी जान पड़ती है। विषय की दृष्टि से भी यह रचना महत्त्व की जान पड़ती है। रामानंद के नाम से प्राप्त 'ग्यांन तिलक' इसी की चाल पर रचा गया समझ पड़ता है और यह तथ्य है कि रामानंद के ऊपर नाथ संप्रदाय का गहरा प्रभाव था। जोधपुर दरबार के पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति में भी यह रचना गोरख की कही गई है। (घ) और (ज) प्रतियों में तो वह है ही।

सं० १५ से १६ तक की प्रतियों के ऊपर (झ) प्रति ने संदेह की छाया डाल दी है। इस प्रति में 'सिष्ट पुरान' और 'दयाबोध' ढीडवाने के सेवादास निरंजनी की रचनाएं मानी गई हैं, और प्रतिलिपिकार ने 'गोरख गणेश गोष्ठी' 'महादेव गोरख गुष्टि' और 'निरंजन पुराण' को सेवादास की कहा है, यद्यपि प्रति में कहीं इस बात का संकेत नहीं है कि ये तीन सेवादास की हैं। सामान्य अवस्थाओं में इस कारण मैं पहली दो रचनाओं को इस संग्रह में स्थान न देता परंतु यह प्रति जैसा पहले कहा जा चुका है, स्वयं संदिग्ध है। इस लिए जहाँ एक ओर मैं उनको संग्रह के मूल भाग में नहीं रख सकता वहीं सर्वथा हटा भी नहीं सकता। इसलिए मैंने उनको पहले परिशिष्ट के (क) विभाग में रक्खा है। 'गोरख गणेश गोष्टी' और 'महादेव गोरख गुष्टि' इस प्रति के कारण हटायी नहीं जा सकतीं, क्योंकि स्वयं प्रति में कोई प्रमाण नहीं है कि वे सेवादास की हैं। परंतु पौराणिक व्यक्तियों के साथ गोरख की गोष्टियां गढंत ही हो सकती हैं। इसी कारण 'गोरखदत्त गोष्ठी' भी जो (झ) प्रति में नहीं है, इन दो के साथ-साथ पहले परिशिष्ट के (क) विभाग में रक्खी गयी है। क्योंकि सांप्रदायिक परंपरा में उनका गोरखकृत रूप में बड़ा मान है। 'गोरख गोष्टी' और 'महादेव गोरख गुष्टि' (क), (च) और (ञ) तीनों में है और प्रथम का तो पाँच चार अन्य प्रतियों

से और दूसरे का दो से समर्थन होता है। 'निरंजन पुराण' भी प्रति में सेवादास का नहीं कहा गया है किंतु यह केवल (ङ) में है और पौराणिक ढंग की रचना तो है ही। इस लिए वह परिशिष्टों में भी सम्मिलित नहीं किया गया है।

'जाती भौंरावाली' जो (क), (छ) और (घ) तीन प्रतियों में है, गोरख की रचना नहीं, गोरख की स्तुति है और गोरख की नहीं हो सकती। उसके अन्त के कुछ पद्यों में कवि मेघ का नाम आता है और अधिक संभव यह है कि वह उसी की रचना होगी—

कवि कहै मेघ दीप कंवण आरम टलै अधारियौ।
सुरता सु पह पंडित सबै वलि कोई जांणि बिचारियौ॥

'अवलि सिलूक' और 'काफिर बोध' जो (क) में हैं—पिछला ग्रन्थ अन्यत्र कबीर का भी माना जाता है—गोरखनाथ के न होकर स्पष्ट ही रतननाथ के हैं, जैसा स्वयं इन रचनाओं से पता चलता है। और इसी लिए जोगेसुरी बानी के दूसरे भाग में रक्खे गये हैं। मूल 'गर्भावली' और 'खाणी वाणी ग्रन्थ' भी जो केवल (छ) में हैं 'निरंजन पुराण' की भांति पौराणिक रचनाएँ हैं, इस लिए वे सर्वथा छोड़ दिये गये हैं। 'गोरख वचन' भाषा की दृष्टि से आधुनिक है और केवल (छ) में है इस लिए छोड़ दिया गया है। 'गोरख संत' संस्कृत गोरख-शतक का हिंदी अनुवाद और गोरख कृत नहीं। शेष रचनाओं में से जिनके द्वारा गोरख या उनके मत पर कुछ प्रकाश पड़ता दिखाई दिया है; उनको मैंने दूसरे परिशिष्ट में रक्खा है।

गोरख के नाम से नई-नई रचनाएँ ही नहीं गढ़ ली गई होंगी, इस बात की भी संभावना है कि पुरानी अलग-अलग कृतियों में भी पद्यों की संख्या अधिक बढ़ गई होगी। और रचनाओं में तो मैंने अधिक अंशों या छूटों का संकेत पाद-टिप्पणी में किया है किंतु 'सबदी' में जो उनकी सबसे प्रामाणिक कृति जान पड़ती है, संख्या उत्तरोत्तर अधिक बढ़ती गयी है, यह सुबीते से नहीं हो सकता था। इससे मैंने मूल भाग ही में सब को रखकर यह सूचित कर दिया है कि कौन-कौन किस प्रति में आते हैं। जो सब प्रतियों में समान हैं (१८९ साखी तक) उनको अधिक प्रामाणिक मानना चाहिए। इनमें भी दो एक साखियाँ जो स्पष्ट ही अन्यों की हैं, इस लिए नहीं निकाली गई हैं कि उनके आगे-पीछे के कुछ अंश भी उन कवियों के हों जिनकी वे जान पड़ती हैं। इस बात की सूचना यथा स्थान पाद-टिप्पणी में दे दी गयी है।

'सबदी' गोरख की सब से प्रामाणिक रचना जान पड़ती है। वह सब प्रतियों में मिलती है। परंतु वह उतनी परिचित नहीं जितना 'गोरख बोध'। सब से पहली छपी प्रति (खंडित) भी जो मेरे देखने में आई है, वह उसी की है, और काशी की कार्माइकेल लाइब्रेरी में रक्खी है। उसे शिवराम शर्मा बुकसेलर पुरब फाटक, बनारस ने १९११ में प्रकाशित किया था, इसका एक अच्छा संस्करण लाहौर के डा० मोहनसिंह ने भी सम्पादित किया है, जिसमें साथ में अंग्रेजी अनुवाद दिया हुआ है। अन्य रचनाओं की कोई छपी प्रति मेरे देखनेमें नहीं आयी।

इस ग्रंथ के संपादन का कार्य मैंने बहुत पहले आरम्भ कर लिया था। कुछ प्रतियों का पता मुझे बहुत पीछे लगा। उदाहरणतः (च) (छ) प्रतियों का पता तब लगा जब समस्त ग्रन्थ का सम्पादन हो चुका था। उनके पाठ का मिलान करने से भी पता चला कि उनमें पाठ ऐसे नहीं हैं जो इन प्रतियों में से किसी में न आ गये हों। उदाहरण के लिए—इस भाग के परिशिष्ट में आरम्भ की १६ सबदियों के पाठांतर दे दिये गये हैं, जिससे यह बात पुष्ट होती है। इसलिए इन दो प्रतियों से मैंने बहुत थोड़ी सहायता ली है। सब से अधिक उपयोग मैंने (क) (ख) (ग) और (घ) प्रतियों का किया है। अधिकांश में मुझे सबसे अच्छा पाठ (क) प्रति का लगा है। इस लिए अधिकांश में मैं उसी को आधार बना कर चला हूँ। संपूर्ण पाठ मैंने उसका भी नहीं स्वीकार किया है। जहाँ कहीं अन्य प्रतियों में मुझे उससे अच्छा पाठ मिला है, उसको मैंने मूल में किया है। पाठ अधिकतर वही रक्खा गया है जो किसी न- किसी लिखी प्रति में मिलता है। जहाँ कहीं स्पष्ट ही अशुद्धि है और उसका प्रमाण मिलता है, वहीं मैंने अपनी ओर से नया पाठ दिया है तथा टिप्पणी में कारण सहित इस बात का संकेत कर दिया है। सब पाठांतर टिप्पणी में दे दिये गये हैं। इस प्रकार मूल में रखने से पहले प्रत्येक शब्द पर अलग-अलग विचार किया गया है। (ख) प्रति को छोड़कर अन्य प्रतियों में 'ख' सर्वत्र 'ष' लिखा गया है। और (ख) में भी सर्वत्र 'ख' नहीं मिलता है। इस लिए मूल में सर्वत्र 'ष' ही रक्खा गया है। जहाँ कहीं 'ख' छप गया हो उसे पाठक 'ष' बना लें। प्रतियों में कहीं चन्द्रबिंदु नहीं है। मूल में चन्द्रबिंदु कहीं-कहीं पर आ गये हैं। ह्रस्व मात्राओं के साथ जहाँ चन्द्रबिंदु मिलें, वे जान बूझ कर उच्चारण की सुविधा के लिए रक्खे गये हैं। दीर्घ मात्राओं के साथ जहाँ-जहाँ चंद्रबिंदु छपे हों उन्हें अनुस्वार समझना चाहिए।

इन बानियों के कर्ता गोरख कौन थे, किस समय हुए, इन प्रश्नों का विस्तृत विवेचन मैं अपने निबन्ध 'हिंदी काव्य की योगधारा' में कर रहा हूँ जो 'जोगेसरी बानी' के दूसरे भाग के साथ प्रकाशित होगा। यहाँ पर इतना ही कह देना बस होगा कि नाथ-परम्परा में इनके कर्ता प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते। मैं अधिक सम्भव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए। ये रचनाएं जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसा ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसमें भी प्राचीन के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती ही में हुआ हो।

जो भी हो, वास्तविकता तो हमारे सामने कर्ता की कीर्तिरूप यह कृति है। यदि कर्ता हमारी आँखों से ओझल भी रहे तो कृतज्ञता-पूर्वक उसकी कृति के अध्ययन का आनन्द तो हम उठा ही सकते हैं। यदि कर्ता भी हमारे लिए प्रत्यक्ष में व्यक्त हो जायँ तो अहोभाग्य। परन्तु यहां कृति से व्यक्ति तक पहुँचने का प्रयास बहुत काल तक अनुमान ही की सीमा के अन्तर्गत रहेगा।

अंत में उन सब महानुभावों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करने में मेरी सहायता की है। कुछ सज्जनों का नाम ऊपर हस्तलिखित प्रतियों के सम्बन्ध में आ चुका है। इनकी उदारता के बिना तो इस कार्य का संपन्न होना असम्भव ही होता। परन्तु इनके अतिरिक्त और भी अनगिनित सज्जन हैं—कहां तक नाम गिनायें—जिन्होंने प्रकट या अप्रकट रूप से मेरी सहायता की है। जिन्होंने अपने देखने में मेरी थोड़ी ही सहायता की है, उनकी सहायता भी मेरे लिए अमूल्य सिद्ध हुई है।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

गोरख-बानी

सबदी

बसती[1] न सुन्यं[2] सुन्यं[2] न बसती[1] अगम अगोचर ऐसा।
गगन[3]-सिषर[4] महिं बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे[5] कैसा ॥१॥

परम तत्त्व तक किसी की पहुँच नहीं है (अगम)। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है (अगोचर)। वह ऐसा है कि न उसे हम बस्ती कह सकते हैं, और न शून्य। न यह कह सकते हैं कि वह कुछ है (बस्ती) और न यह कि वह कुछ नहीं है (शून्य)। वह भाव (बस्ती) और अभाव (शून्य), सत् और असत् दोनों से परे है। (विशेष जोर देने की दृष्टि से 'सुन्यं न बस्ती' कह कर इसी बात को फिर से दोहराया है) वह आकास-मण्डल में बोलनेवाला बालक है। (आकाश-मण्डल में बोलनेवाला इस लिए कहा कि शून्य अथवा आकाश या ब्रह्मरंध्र में ही ब्रह्म का निवास माना जाता है, वहीं पहुँचने पर ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है। वहीं आत्मा को ढूँढ़ना चाहिए। बालक इसलिए कि जिस प्रकार बालक पाप-पुण्य से अछूता है, उसी प्रकार परमात्मा भी। जरा-मरण से दूर, काल से अस्पृष्ट सतत बाल-स्वरूप ही योगियों का साध्य आदर्श है। इसी लिए 'गोरख गोपाल' 'बूढ़ा बाल' कहे जाते हैं।) उनका नाम ही कैसे रक्खा जा सकता है ? (क्योंकि वह तो नाम और रूप दोनों उपाधियों से परे है) ॥१॥

१. (क) बस्ती। २. (ख) सुनी; (ग) सून्य; (घ) सुनि। ३. (ख) गिगनि। ४. (क) सिषर मैं ; (ख), (ग) मडल पै (घ) मंडल मैं ; (ङ) शिषर महिं। ५. (ख) कहौ धु ; (ङ) धरोगे ; (ग), (घ) धरौगे।

अदेपि देषिबा देषि बिचारिबा अदिसिटि[1] राषिबा चीया[2] ।
पाताल की गंगा ब्रह्मंड[3] चढ़ाइबा, तहां बिमल बिमल जल पीया ॥२॥
इहां ही आछै[4] इहां ही अलोप[5] । इहां ही रचिलै तीनि त्रिलोक ।
आछै संगै[6] रहै जू वा । ता कारणि अनंत सिधा[7] जोगेस्वर हूवा ॥३॥
वेद कतेब[8] न षांणीं बांणीं[9] । सब ढंकी[10] तलि आंणीं ॥
गगनि सिषर महि[11] सबद प्रकास्या । तहं बूझै[12] अलष बिनांणीं ॥४॥

न देखे हुए (परब्रह्म) को देखना चाहिए। देख कर उस पर विचार करना चाहिए। जो आँखों से देखा नहीं जा सकता उसे चित्त [चीत्र, चीय] में रखना चाहिए। पाताल (मणिपूर चक्र) की गंगा (योगिनी शक्ति, कुंडलिनी) को ब्रह्मांड (ब्रह्मरंध्र, सहस्रार या सहस्रदल कमल) में प्रेरित करना चाहिए। वहीं पहुँच कर (योगी साक्षात्काररूप) निर्मल रस पीता है ॥२॥

अक्षय (आछै) परब्रह्म यहाँ अर्थात् सहस्रार या ब्रह्मरंध्र (शून्य) में ही है। यहीं वह गुप्त (अलोप) है। तीनों लोकों की रचना यहीं से हुई। (ब्रह्म का ही व्यक्त स्वरूप यह ब्रह्मांड है। ब्रह्मरंध्र रूप केंद्र ही से उसने अपना सर्वदिक् प्रसार किया है।) ऐसा जो अक्षय परब्रह्म सर्वदा हमारे साथ रहता है, उसी के कारण (उसी को प्राप्त करने के लिए) अनन्त सिद्ध योग मार्ग में प्रवेश कर योगेश्वर हो जाते हैं।

अलोप-गुप्त। निषेध वाचक 'अ' का बहुधा जन साधारण की बोली में व्यर्थ ही आगम हो जाता है। उस का कोई अर्थ नहीं लिया जाता; जैसे वृथा के लिए अविर्था ॥३॥

(परब्रह्म का ठीक ठीक निर्वचन) न वेद कर पाये हैं, न किताबी धर्मों की पुस्तकें और न चारों खानि की वाणी। ये सब तो उसे आच्छादन (ढंकी)

१. (क) अदृष्ट ; (ख) अदिसीटी ; (ग), (घ) अदिष्टि। २. (क) चिया। ३. (ख) गंगा ब्रह्म। ४. (घ) अछिक ; (ग) अषय। ५. (घ) अलोक। ६. (घ) अछै संगि, (ग) अछै संगै। ७. (घ) अनेक राजा। ८. (ख), (घ) वेदे न कतेवे। ९. (ख), (घ) षांणी न वांणी। १०. (क), ढांकी; (ग), (घ) ढाकी। ११. (ख) गींगनी चढ़ि; (ग) गगन सिषर चढ़ि। १२. (घ) बूझिलै; (ग) बूझिलै।

अलष विनांणीं दोइ दीपक[1] रचिलै तीन भवन[2] इक जोती।
तास बिचारत[3] त्रिभवन सूझै[4] चुणिल्यौ मांणिक मोती ॥५॥
वेदे न सास्त्रे कतेबे न कुरांणे पुस्तके[6] न बंच्या[7] जाई।
ते पद जांनां[8] विरला जोगी और दुनी[9] सब धंधै लाई ॥६॥
हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। कांम क्रोध न करिबा[10] संग॥
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत। दिढ[11] करि राषि आपनां[12] चीत[13] ॥७॥

के नीचे ले आये हैं। उन्होंने तो सत्य को प्रकट करने के बदले उसके ऊपर आवरण डाल दिया है। (यदि ब्रह्म के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान तुम्हें अभीष्ट है तो) ब्रह्मरन्ध्र (गगन शिखर) में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, उसमें विज्ञान रूप अलक्ष्य परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करो ॥४॥

विज्ञान स्वरूप अलक्ष्य परब्रह्म ने दो दीपकों (व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप-सविकल्प और निर्विकल्प समाधि) की रचना की। उन दोनों दीपकों में अलक्ष्य का ही प्रकाश है। उसी एक ज्योति से तीनों लोक व्याप्त हैं। उस ज्योति पर विचार करने से तीनों लोक सूझने लगते हैं, त्रिलोक-दर्शिता आती है। और हंस-स्वरूप आत्मा ज्ञान-रूप मोतियों को चुगने लगता है तथा उसे माणिक्य रूप कैवल्यानुभूति हो जाती है। विनाणीं = विज्ञानी ॥५॥

वेदों, शास्त्रों,—कितावी धर्मों की किताबों, कुरान आदि ग्रन्थों में जिस पर-ब्रह्मपद का वर्णन नहीं पढ़ा जा सकता, उस पद को विरले योगी जानते हैं। बाकी दुनिया तो माया में लिप्त होकर धंधों ही में लगी रहती है ॥६॥

हँसना चाहिए, खेलना चाहिए, मस्त रहना चाहिए किंतु कभी काम-क्रोध का साथ न करना चाहिए। हँसना, खेलना और गीत भी गाना चाहिए किंतु अपने चित्त को दृढ़ करके रखना चाहिए ॥७॥

---

१. (ङ) दीपग। २. (क) तीनि भुवन। ३. (ख) वीचार्‌या, (ग) विचारी। ४. (ख) त्रभवन नीपजै। ५. (ख), (ग), (घ) चुणि लै ६. (ग) पुस्तगे। ७. (ख), (ग), (घ) लिष्या। ८. (क) जांणंत; (ख), (ग) बाचत। ६. (क) में 'दुनी' नहीं है। १०. (घ) 'न करिबा' के स्थान पर 'का तजिबा'। ११. (ख) डिढि। १२. (ग) आंपणां; (घ) अपणां। १३. (ख) च्यंत; (ग), (घ) चित।

हसिवा षेलिवा धरिबा ध्यांन । अहनिसि कथिवा ब्रह्म गियांन[१] ।
हसै षेलै न करै मन भंग । ते निहचल सदा नाथ[२] कै संग ॥८॥
महंमद[३] महंमद न करि[४] काजी महंमद का विषम बिचारं ।
महंमद हाथि[५] करद[६] जे[७] होती लोहै[८] घड़ी[९] न सारं ॥९॥
सबदैं मारी सबदैं जिलाई ऐसा महंमद पीरं ।
ताकै[१०] भरमि न भूलौ[११] काजी सो बल नहीं सरीरं[१२] ॥१०॥

हँसना, खेलना और ध्यान धरना चाहिए। रात दिन ब्रह्म ज्ञान का कथन करना चाहिए। इस प्रकार (संयम पूर्वक) हँसते खेलते हुए जो अपने मन को भंग नहीं करते वे निश्चल होकर ब्रह्म के साथ रमण करते हैं ॥८॥

हे काजी 'मुहम्मद मुहम्मद' न करो। (क्योंकि तुम मुहम्मद को जानते नहीं हो। तुम समझते हो कि जीव हत्या करते हुए हम मुहम्मद के मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं) परन्तु मुहम्मद का विचार बहुत गंभीर और कठिन है। मुहम्मद के हाथ में जो छुरी थी वह न लोहे की गढ़ी हुई थी न इस्पात की जिससे जीव हत्या होती है। करद=क़र्द (अरबी) ॥९॥

(जिस छुरी का प्रयोग मुहम्मद करते थे वह सूक्ष्म छुरी शब्द की छुरी थी।) वह शिष्यों की भौतिकता को इसी शब्द की छुरी से मारते थे जिससे वे संसार की विषय-वासनाओं के लिए मर जाते थे। परन्तु उन की यह शब्द की छुरी वस्तुतः जीवन-प्रदायिनी थी क्योंकि उन की वहिर्मुखता के नष्ट हो जाने पर ही उनका वास्तविक आभ्यंतर आध्यात्मिक जीवन आरम्भ होता था। मुहम्मद ऐसे पीर थे। हे काजियो, उनके भ्रम में न भूलो, तुम

---

१. (ख) अहिनिसि...गिनांन। २. (क) रहै सिधौं के संग; (ख) रमै सिध कै संगि। ३. (ख), (ग), (घ) में यह शब्द अधिकतया 'महमंद' लिखा गया है, केवल 'ख' में एक जगह महंमद लिखा है। ४. (ग) में 'न करि' के स्थान पर 'करिसि' है, जिसे प्रश्नवाचक मानना चाहिए (घ) 'म करिसि'। ५. (ख) हाथे। ६. (ग) करंदा। ७. (घ) जू; (ख) में कुछ नहीं। ८. (ग), (घ) 'लोहै' के पहले 'सो'। ९. (क) और (ख) गढ़ी। १०. (ख) ऐसे। ११. (क) भ्रमि मति भूलै। १२. (ग), (घ) में यह साखी नहीं है। (ख) में यह साखी इस प्रकार आरंभ होती है—सबदही मारी सबदही जीलाई।

नाथ कहंतां सब जग[1] नाथ्या गोरष कहतां[2] गोई।
कलमा का गुर महंमद होता पहलैं मुवा[3] सोई ॥११॥
सारमसारं गहर गंभीरं गगन[4] उछलिया नादं[5]।
मानिक[6] पाया फेरि लुकाया झूठा वाद-बिवादं[6] ॥१२॥
कोई वादी कोई बिवादी[7] जोगी कौं बाद[8] न करनां[9]।
अठसठि तीरथ समंदि समावैं यूँ जोगी कौं गुरुमुषि जरनां ॥१३॥

उन की नकल नहीं कर सकते। तुम्हारे शरीर में वह (आत्मिक) बल ही नहीं है, जो मुहम्मद में था। (क्योंकि गोरख के अनुसार, मुहम्मद जिन बातों को आध्यात्मिक दृष्टि से कहते थे, उन को उन के अनुयायियों ने भौतिक अर्थ में समझा) ॥१०॥

(शब्दों के बाह्यार्थ पर नहीं जाना चाहिए, उन का तत्वार्थ ग्रहण करना चाहिए। इसी तत्वार्थ-दृष्टि के अभाव में) माया को अपने वश में रखने-वाले 'नाथ' का नाम लेते हुए भी सारा संसार माया के द्वारा नाथ डाला गया। (गुप्त आध्यात्मिक अंतर्जीवन को जगाने वाले—गोरष सो जिनि गोय उठाली करती बार न लावै—नानक, 'ग्रंथ', पृ० ४७३) गोरख का नाम लेते हुए भी आध्यात्मिक जीवन गुप्त ही रह गया। इसी प्रकार खाली कलमा के शब्द भी किसी का उद्धार नहीं कर सकते। कलमा को चलाने वाले मुहम्मद भी बचे न रह सके। (योगी अपने गुरुओं को इसी शरीर से अमर मानते हैं।) ॥११॥

साधना के द्वारा ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने पर अनाहत नाद सुनाई दिया, जो सार का भी सार और गंभीर से गंभीर है। इससे ब्रह्मानुभूति-रूप माणिक्य हाथ लगा। परन्तु वह माणिक्य व्यक्तिगत-साधना से प्राप्त होने पर भी दुनिया के लिए छिपा ही रहा। (वह स्वसंवेद्य है, वाणी से किसी को बताया नहीं जा सकता। इस अनुभूति के मिल जाने पर ज्ञात हुआ कि सारा वाद-विवाद झूठा है। (सच्ची तो केवल अनुभूति है।) ॥१२॥

विभिन्न मत वाले पण्डित अपने मत का मंडन और दूसरों के मत का

१. (ग) युग। २. (ग) कहतो। ३. (ग) पैहली; (घ) पहली। ४, (ख) गीगनी; (घ) गिगन। ५. (ख); (घ) माणिक, (ग) माण्क। ६. (ख) नाद... विवाद। ७. (ख) नादी। ८. (ख) रोस। ९. अधिकतर (ख), (ग) और (घ) में 'करणां', 'जरणां, हैं, केवल (ख) में 'करना' पाठ है।

उतपति हिन्दू जरणां जोगी अकलि परि मुसलमांनीं[1]
ते राह चीन्हों[2] हो काजी मुलां[3] ब्रह्मा बिस्न महादेव मांनीं[4] ।।१४।
मांन्यां सबद चुकाया दंद । निहचै राजा भरथरी परचै गोपीचंद ।
निहचै नरवै भए निरदंद । परचै जोगी परमानंद[5] ।।१५।।

खंडन करने में लगे रहते हैं। किन्तु योगी को इस प्रकार के शास्त्रार्थ में नहीं पड़ना चाहिए। जैसे सभी नदियों का (भारत की नदियों की संख्या कहीं अड़सठ और कहीं बहत्तर मानी जाती है। तीर्थ सब नदियों ही पर हैं।) जल समुद्र ही में समाता है उसी प्रकार शिष्य का विश्वास गुरुमुख वचनों में होना चाहिए। उन्हीं वचनों का मनन-चिंतन द्वारा पाचन करके आत्मीकरण करने में उन्हें दत्तचित्त रहना चाहिए। जरना=जीर्ण करना, पचाना, पूर्णरूप से स्वायत्त करना जो पूर्ण विश्वास के विना असंभव हैं ।।१३।।

उत्पत्ति से हम हिन्दू हैं, जरणां के कारण जोगी हैं और अक्ल से मुसलमानी पीर। (जोगी हिन्दू जन समुदाय में से ही चेला मुड़ाया करते हैं। योग सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि गुरुमुख से पाये हुए ज्ञान को मनन, चिंतन और साधना के द्वारा स्वानुभव में ला सकें। मुसलमानों में जिस प्रकार पीरों का मान है, उसी प्रकार योग-मार्ग में गुरुओं का। नाथों ने तो 'पीर' शब्द को ही स्वीकार कर लिया है। उनके 'महंत' महंत नहीं, पीर कहलाते हैं। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वस्तुतः कोई तात्विक मुसलमानी प्रभाव उनपर पड़ा हो।) हे मुल्लाओ और काजियो! उस मार्ग को पहिचानो जिसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तक ने माना है ।।१४।।

जिसने गुरु वचनों को माना उसकी दुविधा नष्ट हो गई। इसी निश्चय ने राजा भर्तृहरि को बनाया, उन्हें सिद्धि दी और राजा गोपीचन्द को ब्रह्म-परिचय (साक्षात्कार) कराया। इसी निश्चय ने नरपतियों (नरवै) को निर्द्वन्द्व बना दिया जिस से आत्म-साक्षात्कार के द्वारा वे पूर्ण परमानन्द प्राप्त करने वाले योगी हो गये ।।१५।।

१. (ग) मुसलमान; (घ) मुसलमानां। २. (ख) चीन्हत; (ग) चीन्हि हो। ३. (ग) मुसलां। ४. (ख) जो; (घ) ते। ८. (ग) मान्यां; (घ) मानां। ५. ([illegible] चरण किसी में नहीं है।

अह निसि[1] मन लै[2] उनमन रहै, गम की छांड़ि[3] अगम की कहै।
छाड़ै[4] आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ[5] ताका दास ॥१६॥
अरधै जाता उरधै धरै, कांम दगध जे[6] जोगी करै।
तजै अल्यंगन[7] काटै[8] माया, ताका बिसनु[9] पषालै पाया ॥१७॥
अजपा जपै सुंनि[10] मन धरै, पांचौं[11] इंद्री[12] निग्रह[13] करै।
ब्रह्म अगनि मैं होमै काया, तास महादेव बंदै पाया ॥१८॥
धन जोवन की करै न[14] आस, चित्त[15] न राषै कांमनि[16] पास।
नाद बिंद[17] जाकै घटि जरै, ताकी सेवा पारवती करै ॥१९॥

जो रात दिन बहिर्मुख मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहता है, गम्य जगत् की बातें छोड़ कर अगम्य आध्यात्मिक क्षेत्र की बातें करता है, सब आशाओं को छोड़ देता है, कोई आशा नहीं रखता, वह ब्रह्मा से भी बढ़ कर है, ब्रह्मा उसका दासत्व स्वीकार करता है। १६॥

नीचे की ओर गति वाले रेतस् (शुक्र) को ऊपर की ओर प्रेरित करे, ऐसा ऊर्ध्वरेता होकर जो काम को भस्म कर देता है, कामिनी का आलिंगन छोड़ देता है और माया को काट डालता है, (जिसके चरण पखारने से गंगा निकली है, वह) विष्णु भी उस जोगी के चरण धोता है। उरध=ऊर्ध्व का अपभ्रंश। इसी के अनुकरण पर 'अधः' से अरध बना है। ॥१७॥

जो अजपा का जाप करता है, ब्रह्मरंध्र (शून्य) में मन को लीन किये रहता है, पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में रखता है, ब्रह्मानुभूति रूप अग्नि में अपने भौतिक अस्तित्व (काया) की आहुति कर डालता है, (योगीश्वर) महादेव भी उसके चरणों की वंदना करता है ॥१८॥

जो धन यौवन की आशा नहीं करता, स्त्री में मन नहीं लगाता, जिसके शरीर में नाद और बिंदु जीर्ण होते रहते हैं, पार्वती भी उसकी सेवा करती है ॥१९॥

---

१. (ख) अहि निसि, (घ) अहनिस। २. (क) ले, (घ) जे। ३. (ग) छौंड़ि। ४. (ग) छौंडै। ५. (ख) हु; (ग) मै; (घ) मैं। ६. (ख) जौ। ७. (ख) अलिगण (अलिगण ?) (ग) आलिंगन (आलिंमन ?) ८. (ख) त्यागै, (घ) छाडै। ९ (क) विष्नु; (ख) बीसन; (घ) विष्न। १०. (ख); (घ) सुनि, (ग) सून्य। ११. (ख) पाँचु; (ग) पाँचु; (घ) पाँचूँ। १२. (ख), (घ) यंद्री। १३. (ख) न्यग्रह। १४. (ख), (ग) न करै। १५. (क), (ख), (ग), (घ) चित। १६. (ख), (घ) कामणी। १७. (ख), (ग)—ब्यंद।

बालै जोबनि[1] जे नर जती, काल दुकालां[2] ते[3] नर सती।
फुरतैं[4] भोजन अलप अहारी, नाथ कहै सो[5] काया हमारी ॥२०॥
सबदहिं ताला सबदहिं कूँची,[6] सबदहि सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूं[7] परचा हूआ, सबदहिं[8] सबद समाया ॥२१॥
पंथ बिन[9] चलिबा[10] अगनि बिन जलिबा, अनिल[11] तृषा जहटिया[12]।
ससंवेद[13] श्री(गुर)गोरष(नाथ)कहिया[14] बूझिल्यौ[15] पंडित[16] पढ़िया॥२२

बाल्यावस्था और यौवन में जो व्यक्ति संयम के द्वारा इन्द्रिय-निग्रह करते हैं वे समय-असमय में सर्वदा अपने सत पर स्थिर रह सकते हैं। वे फुरती से भोजन करते हैं, कम खाते हैं, नाथ कहते हैं कि वे हमारे शरीर हैं। उनमें और मुझ में कुछ अंतर नहीं ॥२०॥

शब्द ही ताला है, वही परमतत्त्व को बन्द किये रहता है। शब्द की धारा ही सूक्षम परमतत्व पर स्थूल आवरणों को बाँध कर सृष्टि का निर्माण करती है। इसलिए मूल अधिष्ठान तक पहुँचने के लिए शब्द की धारा पकड़ कर वापिस आना पड़ता है, इसीलिए वही कुंजी भी है, जिससे ताला खोला जाता है। गुरु के शब्द में भी परम तत्त्व रहता है जो उसी के मनन-चिंतन से खुलता है। अंतरी शब्द (नाद) का आगरण इसी शब्द (गुरु उपदेश) के कारण होता है। जब इस प्रकार स्थूल शब्द के द्वारा सूषम शब्द से परिचय हो जाता है तब स्थूल शब्द सूषम मूल शब्द में समा जाता है ॥२१॥

मार्ग के बिना चलना, अग्नि के बिना जलना, वायु से प्यास का बुझना

---

१. (ख) (ग) जोबन। २. (ख) दुकाले। ३. (ख) जे; (ग) ये। ४. (ग) (घ) फुरखै, (ख)फुरते। ५. (ग) सै। (घ) ते। ६. (ख) में अंतिम शब्दी यों आरंभ होती है सबदहि कूची सबदहि ताला''संस्कृत अनुवाद में भी यही क्रम है। (क) सबदहि सबद जब कूँची। ७. (क) जब; (ख) में नहीं; (ग) स्यूँ। ८.(ख)(ग), (घ) में 'सबदहि' से पहले तब। ९. (ख) बीणि; (घ) बिण। १०. सब प्रतियों में 'पुलिब' पाठ है। संस्कृत अनुवाद 'गमनं' किया गया है। सम्भवतः किसी पुरानी प्रति में से 'चलिबा' पुलिबा के रूप में गलत नकल हो गया और वही पाठ चल पड़ा। ११. संस्कृत अनुवाद में इसका अर्थ 'बिना जलं' किया गया है, जिसके लिए चारों में से किसी प्रति में भी आधार नहीं है। १२. (ख) ज्युदटीया (वा)। १३. (ख),(ग), (घ) सुसमवेद। (१४. (ख),(ग),(घ) कथिया १५ (ख) बोल्योरे; (ग), (घ) पूछिलै। १६. (ख) प्यंडता; (घ) पिंडत।

गगन[1] मँडल मैं ऊंधा[2] कूवा तहां अंमृत[3] का वासा।
सगुरा[4] होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा ॥२३॥
गगने न गोपंत[5] तेजे[6] न सोषंत[7] पवने न पेलंत[8] वाई।
मही[9] भारे न भाजंत उदके न डूबन्त[10] कहौं[11] तौ को पतियाई[12] ॥२४॥

(ठगा जाना, जटना)—यह केवल अनुभव से जानने के योग्य अपना अनुभव-ज्ञान गुरु गोरखनाथ ने कहा है, हे पढ़े पंडितो इसको समझो। ससंवेद = स्वसंवेद्य। संस्कृत अनुवाद में इसका अनुवाद 'सूक्ष्म वेद' किया गया है, जिसका अर्थ सूक्ष्म ज्ञान होगा परन्तु यदि पाठ सुषमवेद अथवा सुछम वेद होता, तभी यह अर्थ स्वीकार किया जा सकता ॥२२॥

आकाश मंडल (शून्य अथवा ब्रह्मरंध्र) में एक औंधे मुँह का कुंआ है जिस में अमृत का वास है। जिसने अच्छे गुरु की शरण ली है वही उस में से भर-भर कर अमृत पी सकता है। (क्योंकि उसे पीने का उपाय गुरु ही बता सकता है) जिसने किसी सच्चे गुरु को धारण नहीं किया वह इस अमृत का पान नहीं कर सकता, प्यासा ही रह जाता है ॥२३॥

(आत्म-तत्त्व का अनुभव प्राप्त कर लेने पर जान पड़ता है कि उसे) न तो आकाश (पञ्च भूतों में से एक) गुप्त कर सकता है, न अग्नि सुखा सकती है, न हवा इधर उधर झोंके से उड़ा (प्रेरित कर) सकती है, न पृथ्वी का भार तोड़ (विभक्त कर) सकता है, न पानी डुबा सकता है।

---

१. (ख) गीगनि। २. (क) औंधा; (ख) ऊषा; (ग) ओधा। ३. (ग) अम्रत; (घ) यंम्रत; (ख) में मेरा लिपि कर्त्ता पहले दो अक्षरों को पढ़ नहीं सका। ४. (ख), (ग), (घ) सुगरा। ५. (क) गोस्तं; (ख) गोसत; (ग) गोसतं। 'स' के ऊपर भी अनुस्वार रक्खा गया था जो पीछे लाल स्याही से काट दिया गया है। सम्भवतः पहले प्रतिलिपिकार ने 'गोसंत' लिखा था। (घ) गोसंत। सम्भवतः ये सब रूप 'गोपंत' अथवा 'गोप्त' की गलत नकलें हैं। ६. (ख) तेज। ७. (ख) सोखंत। ८. (क) पेलंति। (ग) लेपंत। ९. (ख) में 'उदके न बुडंत' पहले है। १० (ख) बुडंत। ११. (ख) कहूं (हु) (ग), (घ) कहूं। १२. (घ) पतिआई; (ख) पतीयाई (पतीपाई ?); (ग) पतियाह।

वास सहेती[1] सब जग वास्या, स्वाद सहेता मीठा[2]।
साच कहूँ तौ सतगुर मांनैं रूप[3] सहेता[1] दीठा ॥२५॥
मरौ वे जोगी मरौ, मरण है मीठा।
तिस[4] मरणीं[5] मरौ, जिस[4] मरणीं[6] गोरष[7] मरि[8] दीठा ॥२६॥

(परन्तु यदि यह बात मैं किसी से कहूँ तो) कौन मेरा विश्वास कर सकता है। (क्योंकि इन तत्त्वों के साथ जिन गुणों और क्रियाओं का सम्बन्ध जन साधारण सामान्यतया देखा करते हैं, उनको मेरे कथन में विरोध देख पड़ेगा ॥२४॥

(ब्रह्म को) सुगंधि से सारा जगत सुगंधित है। वह जगत में सुगंधि के समान व्याप्त है।) उसके स्वाद से सारा जगत मीठा है। जिसको ब्रह्मानन्द का आस्वाद मिल जाता है उसके लिए संसार के आत्यंतिक दुःख की कटुता मिट जाती है, और जगत आनन्दमय (मीठा) हो जाता है। (क्योंकि समस्त जगत में उसे) उसी का रूप दिखाई देता है। (उसी के रूप से जगत सुन्दर है।) इस सत्य का विश्वास केवल सद्गुरु को हो सकता है। (जिसे ब्रह्मानुभव नहीं वह इस पर विश्वास कैसे कर सकता है?) ॥२५॥

हे जोगी मरो, मरना मीठा होता है। किन्तु वह मौत मरो जिस मौत से मर कर गोरखनाथ ने परमतत्त्व के दर्शन किये।

(यह मरना सामान्य मृत्यु नहीं है, उससे भौतिक अस्तित्व का अन्त नहीं समझना चाहिए। योग मार्ग में तो विश्वास यह चला आता है कि योगी कभी मरता नहीं। इसलिए यह मरना जीवन्मृत्यु है। इसी का दूसरा नाम जीवन्मुक्ति है। इसमें स्वार्थी अर्थ में मृत्यु समझना चाहिए। भौतिक अर्थ में तो व्यक्ति के जीवन का अन्त ही सा हो जाता है अब वह अध्यात्मिक जीवन में परमार्थ के लिए जीता है। परमार्थ और परोपकार एक ही चीज नहीं। परन्तु परमार्थी जीवन परोपकार में भी अभिव्यक्त होता है) ॥२६॥

१. (ख), (ग), सहती…सहंता। २. (घ) मींठा। ३. (ग), (घ) में 'रूप' के पहले 'मैं' है। ४. (क) जिस…तिस। ५. (ग), (घ) करणी ६. (घ) करणी। ७. (क), (ख) श्री गोरषनाथ; (घ) जती गोरखनाथ। ८. (क) में नहीं है।

हबकि[1] न बोलिबा, ठबकि[1] न चालिबा धीरैं[2] धरिबा पावं ।
गरब न करिबा सहजैं[3] रहिबा भणत[4] गोरष रावं ॥२७॥
भरया[5] ते थीरं झलझलंति[6] आधा ।
सिधें सिध[7] मिल्या[8] रे[9] अवधू[10] बोल्या अरु[11] लाधा ॥२८॥
नाथ कहै तुम[12] सुनहु[13] रे अवधू दिढ[14] करि राषहु चीया ।
काम क्रोध अहंकार निबारौ[15] तौ सबै दिसंतर[16] कीया ॥२९॥

सब व्यवहार 'युक्त' होने चाहिए, सोच समझकर करने चाहिए । अचानक झटसे बोल नहीं उठना चाहिए । जोर से पाँव पटकते हुए नहीं चलना चाहिए । धीरे-धीरे पाँव रखना चाहिए । गर्व नहीं करना चाहिए । सहज स्वाभाविक स्थिति में रहना चाहिए, यह गोरखनाथ का उपदेश (कथन) है ॥२७॥

जो भरे हैं, ज्ञान पूर्ण हैं, वे स्थिर गंभीर होते हैं, अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते नहीं फिरते । जो अधकचरे हैं वे छलछलाते रहते हैं, चंचलतावश जगह बे जगह ज्ञान छाँटा करते हैं । (किन्तु उससे लाभ किसी का नहीं होता) सिद्ध ऐसे लोगों से नहीं बोलते ! हे अवधूत ! जब सिद्ध सिद्ध मिलते हैं, तभी उनमें वार्तालाप संभव है । उससे उन्हें लाभ भी होता है । भरा पात्र नहीं छलकता आधा ही छलकता है । लाधा = लब्ध, लभ्य, लाधा ॥२८॥

(योगियों का कोई घरबार नहीं, सारी दुनिया उनका घर है । इसलिए वे सर्वत्र घूमते फिरते हैं । यह उनकी विरक्ति का सूचक है किन्तु कुछ को देशाटन की ही चाट पड़ जाती है । इसीलिए गोरखनाथ का अवधूतों के लिए एक उपदेश है कि देश-देशांतर में जाना स्वयं देशांतर के उद्देश्य से आवश्यक नहीं है ।)

---

१. (ख) (ग), (घ) हबके···ठबके । २. (ग) धीरा (घ) धीरै । ३. (ख) सहजै (ग) सहिजै । ४. (ख) यूं भणत, (ग) यौं बोल्या । (घ) यूं बोल्या । ५. (घ) भरीया, (ग) भरया ६. (ख) झलझलंत (ग) झल झलकत (घ) झलकत (ख), (ग) औ (घ) में इसके आगे 'ते' है । ७. (ख) सिधा सीध; (ग) सिंधा (सिधां ?) सिधि; (घ) सिद्धांसिध । ८. (ख) मिलिया । ९. (ख), (ग), (घ) मे 'रे' नहीं । १०. (ग) में नहीं । ११. (ख), (घ) अर; (ग) र । १२. (ख), (ग), (घ) में नहीं । १३. (ख) सुणो; (ग) सुणां; (घ) सुणौ । १४. (क) दिड; (ख) दिढि । १५. (ख), (ग), (घ) निवारौ । १६. (ख), (ग) दिसावर ।

स्वामी[1] वन षंडि जाउं[2] तो षुध्या व्यापै[3] नग्री[4] जाउं त माया।
भरि भरि षाउं त विंद बियापै[5] क्यों सीझति[6] जल ब्यंद[7] की काया ॥३०॥
धाये[8] न षाइवा[9] भूषे[10] न मरिवा[11] अहनिसि[12] लेबा[13] ब्रह्म अगनि का भेवं।
हठ न करिवा पड़्या[14] न रहिबा यूँ बोल्या गोरष देवं[15] ॥३१॥
थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ[16] तिस[17] घटि पवनां रहै समाइ[18]।
गगन[19] मंडल में अनहद बाजै प्यंड[20] पड़ै तो सतगुर लाजै ॥३२॥

यदि चित्त स्थिर है और काम-क्रोध अहंकार का निवारण हो गया है तो सब देशान्तर हो गये। क्योंकि निवृत्ति के ही अर्थ देशान्तर किया जाता है, जो चित्त की स्थिरता से निष्पन्न हो जाता है। चीया = चित्त, चीअ, चीय ॥२६॥

हे स्वामी, जो वन खंड जाता हूँ तो क्षुधा व्यापती है, भूख सताती है, नगर में जाता हूँ तो माया आकृष्ट करती है, और भर भर कर खाता हूँ तो शुक्र के बढ़ने से काम-वासना सताती है। जल-बूँद (शुक्र) से निर्मित इस शरीर को किस प्रकार सिद्ध बनायें, समत्वावस्था में लायें? ॥३०॥

भोजन पर टूट नहीं पड़ना चाहिए (अधिक नहीं खाना चाहिए।), न भूखे ही मरना चाहिए। रात दिन ब्रह्माग्नि को ग्रहण करना चाहिए। शरीर के साथ हठ नहीं करना चाहिए और न पड़ा ही रहना चाहिए ॥३१॥

जो थोड़ा बोलता और थोड़ा खाता है, उसके शरीर में पवन समाया रहता है। (जिससे) आकाश मंडल (ब्रह्मरंध्र) में अनाहत नाद सुनायी देता है। इसलिए, अमरतत्व प्राप्त करने का साधन हमारे ही पास होने पर भी) यदि यह शरीर-पात हो जाय तो सद्गुरु के लिए लज्जा की बात है ॥३२॥

---

१. (ख), (घ) 'स्वामी' के आगे 'जी'। २. (ग), (घ) रहूँ। ३. (ग) में दूसरा और तीसरा चरण नहीं है। ४. (ख) नगरी। ५. (ख), (घ) कंद्रप व्यापै। ६. (ख), (ग), (घ) सीझत। सीझंत के बाद सब प्रतियों में गुरु गोरष नाथ' है। ७. (क), (ख) व्यंग, (घ) विंब। ८. (ख) अवधू धावे। ९. (ख) (घ) पायवा। १०. (ग), (घ) मूषा। ११. (ग) (घ) रहिबा। १२. (क) अहनिस, (ख) अहिनिसि। १३. (ख) लेइवा। १४. (क) पड़े, (ख) पड़ि। १५. (घ) रावं। १६. (ख), (घ) पाय; (ग) चोरा पाई। १७. (ख), (ग), (घ) ता। १८. (ख), (घ) समाय; (ग) समाई। १९, (ख), (घ) गिगनि, (ग) गगनि। २०. (घ) पिंड।

अवधू अहार तोड़ौ[1] निद्रा मोड़ौ[1] कबहुँ न होइगा[2] रोगी।
छठै छ मासै[3] काया पलटिबा ज्यूँ को को बिरला बिजोगी[4] ॥३३॥
देव कला[5] ते संजम रहिबा, भूत कला अहारं।
मन पवना[6] लै[7] उनमनि धरिबा[8] ते जोगी[9] तत सारं। ॥३४॥
अवधू निद्रा[10] कै घरि काल[11] जंजालं अहार कै घरि चोरं।
मैथुन[13] कै घरि जुरा गरासै[14] अरध-उरध लै जोरं[15] ॥३५॥

हे अवधूत आहार तोड़ो, मिताहार करो, नींद को अपने पास न फटकने दो, छठे छमासे कायाकल्प किया करो। इससे तुम कभी रोगी नहीं होओगे। कोई कोई बिरले जोगी ऐसा कर सकते हैं ॥३३॥

आहार उतना ही करना चाहिए जितने से (पाँच भौतिक) शरीर की

१. (क) तोड़ौं मोड़ौं। (ख), (घ) में इसके बाद 'ज्यु' है। २. (ख), (घ) होयबा; (ग) होइबा। ३. (ख), (ग), (घ) छ मासि। ४. (क) में पाठ है—'नाग बंग बनासपती को बिरला जोगी' (ख), (घ) में 'छठै छमासि काया पलटिवा' आगे ही एक दूसरी सबदी में है। जान पड़ता है कि यहाँ पर दो सबदियों का मेल हो गया है। (ख), (ग), (घ) में यह सबदी अधिक है, जिससे कोई विशेष अभिप्राय सिद्ध नहीं होता—

अवधू अहार कूँ तोड़िबा, पवन कूँ मोड़िबा ज्यूँ कबहुँ न होयबा रोगी।
छठै छमासि काया पलटंत, नाग बंग बनासपती जोगी ॥

'नाग बंग बनासपती जोगी, एक और सबदी में आया है (देखो सबदी ६२) वहाँ तीन बार काया पलटने का विधान है जो नाग, बंग, बनासपती के साथ मेल खाता है। इस लिए मैंने 'नाग बंग बनासपती जोगी' को अधिक सबदी के साथ ग्रहण नहीं किया है। छठे छमासे के हिसाब से वर्ष में दो ही बार काया पलट हो सकता है, तीन बार नहीं। ५. (घ) में 'कला' के आगे 'तो' है। ६. (क) पवन। ७, (क) (ख) (घ) ले। ८. (ग) (घ) रहिबा। ९. (ग) योगी। १०. (क) निंद्रा; (ख) न्यद्रा। ११. (ख) में 'काल' के आगे 'स' है। १२. (ख) चोर। १३. (ख) मिथन, (घ) मईथन। १४. (ख) ग्रसै। (ग) में केवल 'सै' लिखा है। स्पष्ट ही उससे भी 'गरासै' पाठ ही पुष्ट होता है। 'जुरा' के 'रा' से प्रतिलिपिकार गड़बड़ में पड़ गया और समझा कि 'गरा' लिखा जा चुका है। १५. (ख) जोड़।

अति अहार[1] यंद्री बल करै नासै[2] ग्यांन मैथुन[3] चित धरै।
व्यापै न्यंद्रा झंपै[4] काल ताके हिरदै[5] सदा जंजाल ॥३६॥
घटि घटि गोरख वाही[6] क्यारी। जो निपजै सो होइ[7] हमारी।
घटि घटि गोरष कहै कहांणीं। काचै भांडै रहे न पांणीं[8] ॥३७॥

रक्षा हो सके और अपने देवत्व की रक्षा के लिए संयम से रहना चाहिए। जो जोगी मन पवन को संयुक्त कर उन्मनावस्था में लीन कर देते हैं वे ही तत्त्व का सार प्राप्त करते हैं ॥३४॥

निद्रा में आसक्ति से जीव काल के जंजाल में फँसता है, आहार में आसक्ति से चोर (कामदेव) का हृदय में प्रवेश होता है, मैथुन से बुढ़ापा आ घेरता है। इसलिए नीचे गिरनेवाले (अरध) रेतस् को ऊर्ध्वावस्था से जोड़ना चाहिए, ऊर्ध्वरेता होना चाहिए ॥३५॥

अधिक आहार करने से इन्द्रियाँ बलवती हो जाती हैं, जिससे ज्ञान नष्ट हो जाता है और व्यक्ति वासना तृप्ति की इच्छा करने लगता है, नींद चढ़ जाती है और काल उसे ढक लेता है। ऐसा व्यक्ति हमेशा उलझन में पड़ा रहता है ॥३६॥

गोरख (ब्रह्मलीन आत्मा होने के कारण स्वयं ब्रह्म) ने प्रत्येक व्यक्ति की शरीर-रूप क्यारी को जोता-बोया है अर्थात् प्रत्येक हृदय में बीज रूप से परमात्मा विद्यमान है, किन्तु हमारी (गोरख की, ब्रह्म की) वही क्यारी है जिस में कुछ उपज हो जाय। अर्थात् वही ब्रह्मलीन हो सकता है जो उस अन्तःस्थ ब्रह्म का स्वानुभव कर ले। गोरख प्रत्येक शरीर में अपना उपदेश कर रहे हैं, अनाहत नाद हो रहा है। (किन्तु इसका लाभ वे ही उठा सकते हैं जिन्होंने अपनी काया को सिद्ध कर लिया है। कहीं कच्ची हाँड़ी में पानी ठहर सकता है? (जिन्होंने अपनी काया को सिद्ध नहीं किया है, वे इससे लाभ नहीं उठा सकते)। निपजै=निष्पद्यते, निपज्जइ ॥३७॥

---

१. (ग) हार। २. (ख) न्यासै; (घ) न्हासै। ३. (ख) मिथन; (ग) मथन; (घ) मद्यपन। ४. (घ) झंकै। ५. (क) हृदै। ६. (ख) बावै। ७. (ख), (घ) होय। (ग) में प्रतिलिपिकार की असावधानी से छूट गया है। ८. (ग) में अंतिम दो चरण भी छूट गये हैं।

घटि घटि गोरष फिरै निरुता[1] । को घट जागे को घट सूता ।
घटि घटि गोरष घटि घटि मींन । आपा परचै[2] गुर मुषि[3] चींन्ह[4] ॥३८॥
पावड़ियां पग फिलसै[5] अवधू लोहै छीजंत[6] काया ।
नागा मूनी[7] दूधाधारी एता[8] जोग न पाया ॥३९॥
दूधाधारी पर घरि चित[9] । नागा लकड़ी चाहै नित[10] ।
मोनीं करै म्यंत्र[11] की आस । बिन गुर गुदड़ी[12] नहीं बेसास[13] ॥४०॥

घट घट में गोरख बिना आहट के (बिना दूसरों के जाने) फिरता है । ब्रह्म प्रत्येक घट में विद्यमान है । किसी शरीर में वह जाग रहा है, किसी में सो रहा है । घट घट में गोरख हैं, घट घट में मीन (मत्स्येन्द्र) हैं । गुरु और शिष्य में कोई भेद नहीं है । गुरु तो ब्रह्मवित् होता ही है, शिष्य भी उसके दिखाये मार्ग का अनुसरण कर ब्रह्मवित् अर्थात् ब्रह्म ही हो जाता है । गोरख अपने गुरु मीन के प्रभाव से कैवल्यपद को प्राप्त हुए हैं । गुरु के इसी महत्व को दिखाने के लिए यहाँ पर मीन का उल्लेख हुआ है । गुरु मुख शिक्षा से आत्म-परिचय (आत्म-ज्ञान प्राप्त करो । निरुता = बिना शब्द किये, बिना आहट, बिना दूसरों के जाने [निः + रुति (शब्द, ध्वनि)] ॥३८॥

हे अवधूत ! (शरीर को वश करने के बाहरी उपायों से योग सिद्धि नहीं होती ।) पावड़ी पहनने वाला चलने में फिसल जाता है । लोहे की सांकलों से जकड़ने से शरीर नष्ट होता है । नागा, मौनी और केवल दूध पीकर रहने वाले, इतनों को योग-लाभ नहीं होता ॥३९॥

पयाहारी (दूध पर ही रहने वाले) का मन सदा दूसरे के घर रहता है, (सोचता रहता है, अमुक के यहाँ से दूध आ जाता तो अच्छा होता) नागा शरीर को गरम रखने के लिए सदैव लकड़ी चाहता है । मौनी को एक साथी की जरूरत होती है, जो उसके बदले बोल कर मार्ग-देखा सके ॥४०॥

१. (ख) निरूपा । २. (ख) प्राचे । ३. (ग) गुर-मुष । ४. (ख) चीन्ह; (ग) चीन्हि । ५. (ग), (घ) फिसले रे । ६. (ख) (ग) (घ) छीजै । ७. (ग) (घ) मोंनी । ८. (ग), (घ) तिनहूँ । ९. (क) पघचिंत । (घ) पर घर । १०. (ख) न्यंति; (ग) न्यत; (घ) नित्त । ११. (क) म्यन्त्र । (ग) मित्र । १२. बिना गुरू गोदड़ी (ख) गोरप कहै पूता बिन गुदड़ी··· (ग), (घ) बिना हि गुदड़ी । १३. (ख) बीसास; (ग) बिसवास (घ) बिसवास ।

चालत[1] चंदवा षिसि षिसि पड़ै[2] । बैठा ब्रह्म अगनि परजलै[2] ।
आडै आसणि[3] गोटिका[4] बंध । जावत प्रथिमी[5] तावत कंध ॥४९
यहु[5] मन सकती[6] यहु[5] मन सीव । यहु[5] मन पांच तत्त[7] का[8] जी
यहु[9] मन ले जै[10] उन मन रहै । तौ तीनि लोक की बातां[11] कहै[12]॥५

तत्त्व की कंथा बनाई है । वह क्षमा का खड़ासन, ज्ञान की अधारी, सद्बु को खड़ाऊँ और विचार का डंडा उपयोग में लाता है । काठ के डंडे में हुए पीढ़े को अधारी कहते हैं जिसे योगी, साधु सहारे के लिए रखते हैं । प्रकार का खड़ासन भी होता है जिसके सहारे खड़े खड़े बैठने का सा मिलता है । शरीर का नहीं मन का योग वास्तविक योग है । बाह्य युि को छोड़कर आभ्यंतर युक्तियों को ग्रहण करना चाहिए ॥४८॥

चंचलता से (चालत) चंद्र स्राव (अमृत) खिसक खिसक कर क्ष हो जाता है । स्थिरता से (बैठा) ब्रह्माग्नि प्रज्वलित होती है । ति (अर्थात् चल और स्थिर के बीच की) अवस्था में [आदि] के अभ्य से वह सिद्धि (गोटिका बंध) प्राप्त होती है जिससे योगी इच्छानु अदृश्य हो जाता है [कहते हैं कि सिद्ध योगी अभिमंत्रित गोली (गुटिक मुँह में रखकर अदृश्य हो जाता है] और अमरत्व प्राप्त कर लेता है जि जब तक पृथ्वी रहती है तब तक उसका शरीर (स्कध = कंध) भी र है ॥ ४९ ॥

यही मन शिव है, यही मन शक्ति है, यही मन पंच तत्वों से नि जीव है, (मन का अधिष्ठान भी शिवतत्व परब्रह्म ही है । माया (शक्ति संयोग से ही ब्रह्म मन के रूप में अभिव्यक्त होता है और मन ही से भूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है । इस लिए मन का बहुत बड़ा महत्व है मन को लेकर उन्मनावस्था में लीन करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता है, लोकों की बातें कह सकता है ॥ ५० ॥

---

१. (क) जावत (ख) चलता । २. (ग) परै⋯परजरै । ३. (क) आ (ख) आसण । ४. (घ) गुटिका । ५. (ख) प्रथमी, (क) पृथी, (घ) प्रिथ ६. (ख) यौ हु; (ग) यौ हूँ । ७. (घ) सक्ती । ८. (क) पँच तत (ग) तत्त्व । ९. (ख) को, (घ) की । १०. (क), (ग), (घ) जे । ११. (क) बा १२. (ग) कहै है ।

अवधू नव घाटी रोकि लै[1] बाट[2]। बाई वणिजै[3] चौसठि[4] हाट।
काया पलटै अविचल बिध[5]। छाया[6] बिवर्राजत[7] निपजै सिध ॥५०॥
अवधू दंम कौं[8] गहिबा उनमनि[9] रहिबा, ज्यूं[10] बाजबा अनहद तूरं।
गगन मंडल मैं तेज[11] चमंकै[12], चंद नहीं तहां सूरं ॥५१॥
सास उसास बाइ[13] कौं भषिबा[14], रोकि लेहु[15] नव द्वारं।
छठै छमासि काया पलटिबा[16], तब उनमँनीं जोग अपारं ॥५२॥
अवधू सहंस्र[17] नाड़ी पवन[18] चलैगा, कोटि झमंकै[19] नादं।
बहतरि[20] चंदा बाई सोष्या किरणि प्रगटी[21] जब[22] आदं ॥५३॥

हे अवधूत ! शरीर के नवों द्वारों को बन्द करके वायु के आने जाने का मार्ग रोक लो। इससे चौसठों संधियों में वायु का व्यापार होने लगेगा। इससे निश्चय ही कायाकल्प होगा। और साधक सिद्ध हो जायगा जिसकी छाया नहीं पड़ती ॥२०॥

हे अवधूत, दम (प्राण) को पकड़ना चाहिए, प्राणायाम के द्वारा उसे वश में करना चाहिए। इससे उन्मनावस्था सिद्ध होगी। अनाहत नाद रूपी तुरी बज उठेगी और ब्रह्मरंध्र में बिना सूर्य या चंद्रमा के (ब्रह्म) का प्रकाश चमक उठेगा॥२१॥

(केवल कुम्भक द्वारा) श्वासोच्छ्वास का भक्षण करो। नवों द्वारों को रोको। छठे छमासे कायाकल्प के द्वारा काया को नवीन करो। तब उन्मन योग सिद्ध होगा ॥२२॥

हे अवधूत शरीर में फैले हुए सहस्र-नाड़ी-जाल में जब पवन का संचार

---

१. (ख) लेबा। २. (ग) (घ) घाट। ३. (ग) वणजै (घ) बिणजै। ४. (ख), (ग) चोसठि; (घ) चौष्ठि। ५. (ख), (ग), (घ) बध। ६. (ख) छाय। ७. (ख), (घ) बिबरजत, (ग) बिवरज। ८ (ख), (ग), (घ) दमकूं। ९. (क) उनमन (घ) उनमन्य। १०. (ग), (घ) तब। ११. (ख) जोति। १२. (क) (ख), (ग) चमकै। १३. (ग), (घ) बाय। १४. (क) भछिबा। १५. (ख) लेबा (ग) लै (घ) लेह। १६. (ग) (घ) पलटै। १७. (ख) सहंसर; (क) (घ) सहंश्र; (ग) सहस। १८. (ख), (ग), (घ) हंस। १९. (क) झमका। २०. (क) बहतर; (ख) बहोतरि। २१ (ख), (ग), (घ) प्रगटै। २२, (ग), (घ) में नहीं।

दषिणी[1] जोगी रंगा चंगा, पूरबी[2] जोगी बादी।
पछमी जोगी बाला भोला, सिध जोगी उतराधी ॥४१॥
अवधू पूरब दिसि[3] व्याधिका रोग, पछिम दिसि[3] मितु[4] का सोग।
दछिण[5] दिस[3] माया का भोग, उत्यर दिसि[3] सिध[6] का जोग ॥४२॥
धूतारा ते[7] जे धूतै आप, भिष्या[8] भोजन[9], नहीं संताप।
अहूठ[10] पटण मैं भिष्या करै। ते अवधू सिव पुरी[11] संचरै ॥४३॥
घरवारी सो घर की जाणै। वाहरि[12] जाता भीतरि आणै।
सरव निरंतरि[13] काटै माया। सो घरबारी कहिए निरञ्जन की काया॥४४॥

योग सिद्धि के लिए उत्तराखंड का महत्त्व ४१, ४२ इन दो सबदियों में कहा गया है। स्वयं गोरखनाथ ने हिमालय की कंदराओं में योग साधन किया था, ऐसा जान पड़ता है ॥४१, ४२॥

(योगी धूर्त नहीं होता) अगर वह धूर्त है तो ऐसा धूर्त कि आपा (अहंकार) को ठग लेता है। भिक्षा मांग कर वह भोजन करता है। उसे कोई संताप नहीं होता। साढ़े तीन (अहुठ) हाथ का शरीर ही वह नगर है जिस में घूम फिर कर वह भिक्षा माँगता है। हे अवधूत ! ऐसे धूर्त शिवलोक (ब्रह्मरंध्र) में संचरण करते हैं ॥४३॥

(योगी घरबारी नहीं होता, यदि वह घरबारी है तो ऐसा कि) जिसे अपने घर (काया) का पूरा ज्ञान है। अपने घर की जो वस्तु बाहर जा रही हो, नष्ट हो रही हो (श्वास और शुक्र) उसको वह भीतर ले जाता है, उसकी रक्षा करता है, वह सब से अभेद भाव रखते हुए निर्लिप्त रहता है और माया का खंडन कर देता है। ऐसे घरबारी को माया रहित निरंजन ब्रह्म का शरीर, अर्थात् ब्रह्म-तुल्य समझना चाहिए ॥४४॥

---

१. (क) दछिणी; (ख), (घ) दिषणी। २. (ख) (ग) (घ) पूरब···पछिम। ३. (ग), (घ) उत्तर दिशा। ४. (ख) म्रन (मरन); (ग) (घ) मृत। ५. (ख) दिषण। ६. (घ) सिधाँ। ७. (ख), (ग), (घ) में 'ते' नहीं। ८. (क) भिक्षा। ९. (ग) जोजन। १०. (ग) अहुँट। ११. (ख) पुरीस। संभवतः अधिक 'स' गलती से आ गया है। १२. (ग) बाहिर। १३. (घ) में प्रतिलिपिकार 'तरि' लिखना भूल गया था। कोर पर 'रित' लिख दिया।

गिरही सो जो गिरहै[1] काया। अभि अंतरि की त्यागै माया।
सहज सील का धरै सरीर। सो गिरही गंगा[2] का नीर ॥४५॥
अमरा[3] निरमल पाप न पुंनि। सत रज विबरजित सुंनि।
सोहं[4] हंसा सुमिरै[5] सबद[6]। तिहि[7] परमारथ अनंत सिध ॥४६॥
पाषंडी सो काया पषालै। उलटि[8] पवन अगनि प्रजालै[9]।
ब्यंद[10] न देई सुपनैं जाण[11]। सो पाषंडी कहिए तत्त समांन ॥४७॥
मनवां जोगी काया मढी। पंच तत्त ले कंथा गढी।
षिमा षड़ासण[12] ग्यान अधारी[13]। सुमति पावड़ी डंड विचारी[13] ॥४८॥

योगी गृही (घरबारी, गृहस्थ) नहीं। यदि वह गृही है तो (श्लेष से) ऐसा जो अपने शरीर को पकड़े हुए, वश में किये हुए रहता है। अंतःकरण से माया को त्याग देता है। इतना शीलवान है कि शरीर ही मानो स्वाभाविक शील का बना हुआ है। वह गृही गंगाजल है, शुद्ध है, औरों को भी शुद्ध करने वाला है, देवाधिदेव शिव जी भी उसका आदर करते हैं ॥४५॥

जो (अंतर्लीन) मुनि, सत्-रजस्-तमस्, इस त्रैगुण्य से विवर्जित है, पाप-पुण्य से रहित है, निर्मल है, अमर है, "सोहं हंसः" इस आभ्यंतर शब्द का स्मरण करता है अर्थात् अजपाजाप जपता रहता है, उसे अनन्त परमार्थ सिद्ध हो जाता है ॥४६॥

(योगी पाषंडी नहीं है) यदि है तो वह पाषंडी जो योग की क्रियाओं से काया का प्रक्षालन करता है, उसे निर्मल बनाता है। पवन को उलटकर (प्राणायाम के द्वारा) योगाग्नि को प्रज्वलित करता है, कुण्डलिनी को जगाता है, विंदु को स्वप्न में भी स्खलित नहीं होने देता। ऐसे ही पाषंडी को तत्त्व में समाया हुआ समझना चाहिए ॥४७॥

शरीर रूपी मढ़ी में मन रूपी योगी रहता है जिसने अपने लिए पांच

---

१. (ख) ग्रहै, (क) में गृही, गृहै इत्यादि। २. (ख) चरणा, (ग) चरणौं (घ) चरणां। ३. (क) अमुरा, (ख), (घ) अमर। ४. (ग) सोहूँ। ५. (घ) सुमिरै। ६, (क) शब्द। ७. (ग) तिस, (घ) जिस। ८, (क), (ख) उलट्या। ९. (क) उजालै, (ग), (घ) परजालै। १०. (ख) सुपिनैं इससे पहले है, (घ) विंद। ११. (ख) झरना, (घ) जान। १२. (ग) कड़ासन। १३. (ग) अधारा,···विचार; (घ), अधार···विचार।

चालत[1] चंदवा षिसि षिसि पड़ै[2] । बैठा ब्रह्म अगनि परजलै[2] ।
आड़ै आसणि[3] गोटिका[4] बंध । जावत प्रथिमी[5] तावत कंध ॥४९॥
यहु[5] मन सकती[6] यहु[5] मन सीव । यहु[5] मन पांच तत्त[7] का[8] जीव ।
यहु[9] मन ले जै[10] उन मन रहै । तौ तीनि लोक की बातां[11] कहै[12] ॥५०॥

तत्त्व की कंथा बनाई है । वह क्षमा का खड़ासन, ज्ञान की अधारी, सद्‌बुद्धि की खड़ाऊँ और विचार का डंडा उपयोग में लाता है । काठ के डंडे में लगे हुए पीढ़े को अधारी कहते हैं जिसे योगी, साधु सहारे के लिए रखते हैं । इसी प्रकार का खड़ासन भी होता है जिसके सहारे खड़े खड़े बैठने का सा सुख मिलता है । शरीर का नहीं मन का योग वास्तविक योग है । बाह्य युक्तियों को छोड़कर आभ्यंतर युक्तियों को ग्रहण करना चाहिए ॥४८॥

चंचलता से (चालत) चंद्र स्राव (अमृत) खिसक खिसक कर क्षरित हो जाता है । स्थिरता से (बैठा) ब्रह्माग्नि प्रज्वलित होती है । तिरछी (अर्थात् चल और स्थिर के बीच की) अवस्था में [आदि] के अभ्यास से वह सिद्धि (गोटिका बंध) प्राप्त होती है जिससे योगी इच्छानुसार अदृश्य हो जाता है [कहते हैं कि सिद्ध योगी अभिमंत्रित गोली (गुटिका) मुँह में रखकर अदृश्य हो जाता है] और अमरत्व प्राप्त कर लेता है जिससे जब तक पृथ्वी रहती है तब तक उसका शरीर (स्कंध = कंध) भी रहता है ॥ ४९ ॥

यही मन शिव है, यही मन शक्ति है, यही मन पंच तत्वों से निर्मित जीव है, (मन का अधिष्ठान भी शिवतत्व परब्रह्म ही है । माया (शक्ति) के संयोग से ही ब्रह्म मन के रूप में अभिव्यक्त होता है और मन ही से पंच-भूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है । इस लिए मन का बहुत बड़ा महत्व है ।) मन को लेकर उन्मनावस्था में लीन करने से साधक सर्वज्ञ हो जाता है, तीनों लोकों की बातें कह सकता है ॥ ५० ॥

---

१. (क) जावत (ख) चलता । २. (ग) परै...परजरै । ३. (क) आसन (ग) आसण । ४. (घ) गुटिका । ५. (ख) प्रथमी, (क) पृथी, (घ) प्रिथमी । ६. (ग) यो हु; (ग) यो हूँ । ७. (घ) सक्ती । ८. (क) पँच तत (ग) पँच तत्त । ९. (ग) को, (घ) की । १०. (क), (ग), (घ) जे । ११. (क) बातैं । १२. (ग) कहै ।

अवधू नव घाटी रोकि लै[1] बाट[2] । बाई बणिजै[3] चौसठि[4] हाट ।
काया पलटै अविचल बिध[5] । छाया[6] बिबरजित[7] निपजै सिध ॥५०॥
अवधू दम कौं[8] गहिबा उनमनि[9] रहिबा, ज्यूं[10] बाजवा अनहद तूरं ।
गगन मंडल में तेज[11] चमंके[12], चंद नहीं तहां सूरं ॥५१॥
सास उसास बाइ[13] कौं भषिबा[14], रोकि लेहु[15] नव द्वारं ।
छठै छमासि काया पलटिबा[16], तब उनमँनीं जोग अपारं ॥५२॥
अवधू सहंस्र[17] नाड़ी पवन[18] चलैगा, कोटि झमंकै[19] नादं ।
बहतरि[20] चंदा बाई सोष्या किरणि प्रगटी[21] जब[22] आदं ॥५३॥

हे अवधूत ! शरीर के नवों द्वारों को बन्द करके वायु के आने जाने का मार्ग रोक लो। इससे चौसठों संधियों में वायु का व्यापार होने लगेगा। इससे निश्चय ही कायाकल्प होगा। और साधक सिद्ध हो जायगा जिसकी छाया नहीं पड़ती ॥५०॥

हे अवधूत, दम (प्राण) को पकड़ना चाहिए, प्राणायाम के द्वारा उसे वश में करना चाहिए। इससे उन्मनावस्था सिद्ध होगी। अनाहत नाद रूपी तुरी बज उठेगी और ब्रह्मरंध्र में बिना सूर्य या चंद्रमा के (ब्रह्म) का प्रकाश चमक उठेगा॥५१॥

(केवल कुम्भक द्वारा) श्वासोच्छ्वास का भक्षण करो। नवों द्वारों को रोको। छठे छमासे कायाकल्प के द्वारा काया को नवीन करो। तब उन्मन योग सिद्ध होगा ॥५२॥

हे अवधूत शरीर में फैले हुए सहस्र-नाड़ी-जाल में जब पवन का संचार

---

१. (ख) लेबा। २. (ग) (घ) घाट। ३. (ग) वणजै (घ) विणजै। ४. (ख), (ग) चोसठि; (घ) चौष्ठि। ५. (ख), (ग), (घ) बध। ६. (ख) छाय। ७. (ख), (घ) ब्रिवरजत, (ग) विवरज। ८ (ख), (ग), (घ) दमकूं। ९. (क) उनमन (घ) उनमन्य। १०. (ग), (घ) तब। ११. (ख) जोति। १२. (क) (ख), (ग) चमकै। १३. (ग), (घ) बाय। १४. (क) भछिबा। १५. (ख) लेबा (ग) लै (घ) लेह। १६. (ग) (घ) पलटै। १७. (ख) सहंसर; (क) (घ) सहंश्र; (ग) सहस्र। १८. (ख), (ग), (घ) हंस। १९. (क) झमका। २०. (क) बहतर; (ख) बहोतरि। २१ (ख), (ग), (घ) प्रगटै। २२, (ग), (घ) में नहीं।

अमावस कै घरि झिलिमिलि चंदा, पूनिम[1] कै घरि सूरं।
नाद कै घरि ब्यंद[2] गरजै, बाजंत[3] अनहद तूरं ॥५४॥
उलटंत नादं पलटंत[4] ब्यंद, बाई कै घरि चीन्हसि[5] ब्यंद।
सुंनि मंडल तहाँ नीझर झरिया, चंद सुरजि[6] ले[7] उनमनि धरिया[8] ॥५५॥
अवधू प्रथम[9] नाड़ी नाद झमंकै, तेजंग[10] नाड़ी पवनं।
सीतंग नाड़ी ब्यंद[11] का बासा, कोई जोगी जानत गवनं[12] ॥५६॥

होगा तब करोड़ों नादों के समान अनाहत नाद झमक उठेगा। और जब ब्रह्म का मूल प्रकाश (आदि किरण) प्रकट होगा तब वायु बहत्तरों चन्द्रमाओं को सोख लेगी ॥५३॥

'सहस्रार' में अमृतस्रावक चन्द्रमा स्थित है पर उसके प्रभाव से सामान्यतया जीव वंचित रहता है, क्योंकि अमृत के स्राव को मूलाधार स्थित सूर्य सोख लेता है। चन्द्रमा के प्रभाव से यही वंचित रहना 'अमावस' से अभिप्रेत है। जहाँ पहले अमावस थी, चन्द्रमा का प्रभाव नहीं था, वहाँ अब चन्द्रमा झिलमिल चमकने लगा है, पूर्ण प्रभाववाला हो गया है। यही सूर्य-चंद्र-संयोग योग-साधनों का प्रधान उद्देश्य है। इससे नाद में बिन्दु (शुक्र) समा गया है और अनाहत नाद की तुरी बजने लगी है ॥५४॥

चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मनावस्था आती है तब ब्रह्मरंध्र (शून्य-मंडल) में अमृत का निर्झर झरने लगता है। नाद उलट जाता है। नाद सूक्ष्म शब्द तत्व का क्रियमाण स्वरूप है जो क्रमशः स्थूल रूप में परिणत होता हुआ सृष्टि का कारण होता है। उसका सृष्टि निर्मायक स्थूल स्वरूप अपने मूल स्रोत की ओर मुड़ जाता है। और नीचे उतरता हुआ बिन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाता है और वायु में ही, जिसके ऊपर काल का प्रभाव बहुत दिखाई देता है, अमर तत्व (बिंदा) पहचाना जाता है ॥५५॥

हे अवधूत। आदि सूक्ष्म सुषुम्णा नाड़ी में नाद की झमक होती है,

---

१. (ग) पून्यों, (घ) पून्यूं। २. (घ) बिंद। ३. (ग), (घ) तब बाजै। ४. (क) उलटिति⋯झलंकित। ५. (ख) चीन्हंत; (ग) चीन्हिबा (घ) निरखन। ६. (ख) (घ) सूर, (ग) सूरज। ७. (ख) दोउ ले। ८. (ग), (घ) रहिया। ९. (ग) प्रथमे। १०. (ग), (घ) तेज की। ११. (घ) बिंद। १२. (ग) में अन्तिम दो चरण छूट गये हैं।

उठंत पवनां रवी तपंगा बैठंत पवनां चंदं[1]।
दहूँ निरंतरि जोगी विलंबै[2], बिंद बसै तहाँ ज्यंदं[1] ॥५७॥
केता आवै केता जाई[3], केता मांगै केता खाई,
केता रूप[4] बिरप तलि रहै, गोरष अनभै[5] कासौं[6] कहै ॥५८॥
पढ़ि देखि पंडिता[7] रहि देषि सारं, अपणीं करणीं उतरिबा पारं।
वदंत गोरषनाथ कहि धू सापी, घटि घटि दीपक[8] (वलै) षणि[9] पसू न (पेषे) आंषी[10] ॥५९॥

गरम पिंगला (सूर्य) नाड़ी में पवन का संचार होता है, शीतल (इड़ा अथवा चन्द्र) नाड़ी में वीर्य का निवास है, इनकी गति को कोई विरला ही जोगी जानता है ॥५६॥

सूर्य नाड़ी में चलता हुआ पवन बहुत तीव्र गति से चलता है। जब चन्द्र नाड़ी में उसकी गति होती है तब वह बैठ (थम) सा जाता है। जब श्वास बाहर निकलता है तब सूर्य नाड़ी चलती है, और जब भीतर प्रवेश करता है तब चन्द्र नाड़ी। योगी दोनों से अलग सुषुम्णा नाड़ी की शरण में आश्रय लेता है। क्योंकि जहाँ विन्दु का निवास है वहीं अमर-जीवन तत्व (जिन्दा) का भी ॥५७॥

(साधक बाहरी क्रियाओं को योग समझे हुए हैं। कितने (जंगम) बराबर आते ही जाते रहते हैं। कितनों ने मांगना-खाना ही योग समझ रखा है। कितनों ने बस्ती से अलग पेड़ों के नीचे रहना ही। (सब तो इस प्रकार बाहरी बातों में पड़े हुए हैं) गोरख अभय ज्ञान कहे तो किस से ? ५८ ॥

हे पंडित, जिसको तुमने पढ़कर देखा है, उस सार-ज्ञान को रहकर भी देखो। (केवल पढ़ना ही काफी नहीं है। सीखे को साधना भी चाहिए।) पार उतरना कोरे ज्ञान से नहीं अपनी करनी (कृत्यों) से ही संभव होता है। गोरखनाथ कहते हैं कि मैं किसको साक्षी दूँ कि घट-घट में ब्रह्म की

---

१. (ख) चंद···ब्यंद; (घ) चंद···जिंद। २. (क) बिलंवे, (ख) बिलंब्या। ३. (घ) जाय। ४. (ग) (घ) रूंप। ५. (ख) (ग) (घ) अणभै। ६. (ख) स्यूं, (घ) सूं, (ग) स्यौं। ७. (ख) पडिता। (ग) पठिता। (ख) पाणी, ८. (ख) दीपग। (ग) परि, (घ) पनि। ९. १०. (ख) अंषी।

सुसबदे[1] हीरा वेधिलै[2] अवधू[3] जिभ्या करि[4] टकसाल[9] ।
औगुंन मध्ये गुंन[5] करिलै[6], तौ[7] चेला सकल[8] संसारं[9] ॥ ६० ॥
अभरा था ते सुभर[10] भरिया[11] नीझर झरता रहिया[11] ।
पांडे[12] थैं पुरसाण दुहेला[13], यूं[14] सतगुरि[15] मारग कहिया[11] ॥ ६१ ॥
प्यंडे[16] होइ तौ पद की आसा, बंनि[17] निपजै[18] चौतारं ।
दूध होइ तौ घृत की आसा, करणीं करतव[19] सारं ॥ ६२ ॥

ज्योति जगमगा रही है। इस प्रकाश के अपने ही भीतर बलते होने पर भी पशु तो आँख ही नहीं देखता ॥ ५९ ॥

जिह्वा की टकसाल बनाकर वहाँ अभेद्य परमतत्त्व रूप हीरे को सु-शब्द (सोहं हंसा, अजपामंत्र) के द्वारा वेधो। इस प्रकार अवगुणमय असत् मायिक जगत् में भी अपने लिए गुण (त्रैगुण्य नहीं सद्गुण) का लाभ करलो अर्थात् सत् का अनुभव करो। ऐसा होने पर सारा संसार तुम्हारा चेला हो जायगा ॥ ६० ॥

जो अभरा था (ब्रह्मानुभूति से रहित होने के कारण खाली था) (योग की साधना से) वह भी भर गया (अर्थात् ज्ञान पूर्ण हो गया, उसे ब्रह्मानुभूति हो गयी) उसके लिए निरंतर अमृत का निर्झर झरने लगा। (परन्तु जिस मार्ग से यह संभव होता है) गुरु का बताया हुआ वह मार्ग खड्ग से भी तीक्ष्ण और कठिन है। पुरसाण = क्षुर शाण, शाणित क्षुर, सान में धरा हुआ, तेज छुरा ॥ ६१ ॥

पर ब्रह्म घट घट व्यापी है। इसे लोग स्थूल अर्थ में यों समझते हैं कि शरीर में यह कहीं पर है। परन्तु यदि ऐसा समझें तो परमात्मा के शरीर में

---

१. (ख) सबद। २. (ग) विधि लै। ३. (ख) अवधु; (क) में नहीं। ४. (ग) करिलै। ५. (घ) औगुण मधे गुण; (ग) औगण वंधे गुण। ६. (ख) (ग) रचिलै; (घ) रचीलै। ७. (क) तब। ८. (ग) (घ) सब। ९. (ख) टकसाल...संसार। १०. (ख) सुभर। ११. (ख), (घ) भरीया, रहीया, कहीया। १२. (ख) पांडी थि, (ग) पांडा थे, (घ) पांडा ते। १३. (ख) दुहेली। १४. (ग) ज्यु, (ग) यो। १५. (ख), (ग), (घ) सतगुर। १६. (क) प्यंडे; (ख) पडे, (घ) पिंडि। १७. (ख) बंणि, (ग) विणु (घ) बिणि। १८. (ख) निपजो। १९. करतब, (घ) किरतब।

मन मैं रहिणां[1] भेद[2] न कहिणां[3], बोलिबा अंमृत[4] वांणीं।
आगिला[5]अगनी होइबा[6] अवधू[7], तौ आपण[8] होइबा[6] पांणीं ॥६३॥
उनमनि रहिबा[9] भेद न[10] कहिबा,[9] पीयबा[11] नींझर[12]पांणीं।
लंका छाडि[13] पलंका[14] जाइबा, तब गुरमुष[15] लेबा[16] वांणीं ॥६४॥

किसी स्थान (पद) पर मिलने की आशा होनी चाहिए। लोग परमात्मा की प्राप्ति के लिए बन बन फिरा करते हैं। अगर ब्रह्मानुभूति सचमुच बन ही में उत्पन्न होती है तो उसे चौपायों में भी देखने की आशा करनी चाहिए। (कुछ लोग केवल दूध पर रह कर परमात्मा को प्राप्त करना चाहते हैं) यदि दूध में परमात्मा है तो उसे घी के रूप में देखने की आशा करनी चाहिए। (परन्तु असल में इन बाहरी बातों से परमात्मा नहीं मिलता। इसका सार उपाय करणी- करतब, योग-युक्ति अर्थात् समुचित रहनी है ॥ ६२ ॥

बनप्रांतर आदिकों में रहने के स्थान पर मन में रहना चाहिए अर्थात् बहिर्मुख वृत्तियों को अंतर्मुख कर देना चाहिए। अपने मन का रहस्य किसी से न कहना चाहिए (क्योंकि इस रहस्यमय अनुभूति को कोई समझनेवाला नहीं है) मीठी बाणी बोलनी चाहिए। अगर दूसरा आदमी तुम पर आग बबूला हो जाय तो (तुम्हें) पानी हो जाना चाहिए, क्षमा दिखानी चाहिए ॥ ६३ ॥

उन्मनावस्था में लीन रहना चाहिए। किसी से अपना भेद (रहस्य) न कहना चाहिए। (अमृत के) झरने पर पानी (अमृत) पीना चाहिए। गुरु के मुख से ज्ञानोपदेश सुनने के लिए लंका क्या परलंका (लंका के परे, दूर से भी दूर जाना पड़े तो) जाना चाहिए। अथवा माया (लंका, राक्षसों की मायाविनी नगरी) को छोड़कर उससे परे (परलंका) ही जाना चाहिए। तभी गुरु का दिया ज्ञानोपदेश हृदयंगम हो सकता है ॥ ६४ ॥

---

१. (ख) रहणा; (ग), (घ) रहणां। २. (ख) भेव। ३. (ख) करणां, (घ) कहणां। ४. (ख) अम्रत, (ग) अमृत, (घ) यम्रत। ५. (ख) अगिला। ६. (घ) होयबा। ७. (ग) (घ) में अवधू नहीं है। ८. (ग) (घ) आप। ९. (ख) रहणा, कहणा। भेव ण। १०. (घ) पीबा, (ग) पीवावा। १२, (ख) नीझरना। १३. (ख) छोड़ि। १४. (क) प्रलंका, (ख) पड़लंका (घ) परलंका। १५. (ख) गुरमुषि। १६. (ख) लइबा।

नग्री सोभंत वहु[1] जल मूल[2] त्रिषा[3], सभा सोभंत पंडिता पुरषा[4] ।
राजा सोभंत दल प्रवांणीं[5], यूँ[6] सिधा[7] सोभंत सुधि बुधि[8] की[9] वांणीं॥६५॥
विरला जाणंति[10] भेदांनिभेद[11] विरला जाणंति[12] दोइ पष छेद[13] ।
विरला जाणंति[14] अकथ कहांणीं, विरला जाणंति[14] सुधिबुधि की वांणीं ॥६६॥
उत्तरपंड[15] जाइबा[16] सुंनिफल[17] खाइबा[18], ब्रह्म अगनि पहरिबा[19] चीरं ।
नीझर झरणैं[20] अंमृत[21] पीया[22] यूं[26] मन हूवा थीरं ॥ ६७ ॥

नगर उद्यान तथा तड़ागों से सुशोभित होता है। सभा की शोभा पंडित लोग हैं। राजा की शोभा उसकी विश्वसनीय सेना है। इसी प्रकार सिद्ध की शोभा आध्यात्मिक सत्ता की याद दिलानेवाली अथवा निर्मल शुद्ध बुद्धि युक्ति वाणी है ॥ ६५ ॥ प्रवाणी—प्रमाणी, प्रामाणिक (विश्वसनीय) ।

अभेद के भेद को, अद्वैत के रहस्य को कोई विरले जानते हैं, द्वैत के पक्ष का निरसन किसी विरले को आता है। ब्रह्म की अकथनीय कथा को भी कोई विरले ही जानते हैं। सुधि बुधि की वाणी को कोई विरले जानते हैं। (देखो पिछली सबदी का अर्थ) ॥ ६६ ॥

(बड़े बड़े तपस्वी योग सिद्धि की आशा से गेरुआ धारण कर उत्तराखंड (बदरिकाश्रम आदि स्थानों) में जाकर झरने का जल और जंगलों के कंदमूल फल पर निर्वाह करते हैं।) किन्तु गोरखनाथ जिस उत्तारखंड (ब्रह्मरंध्र) में जाने का उपदेश करते हैं उसमें ब्रह्माग्नि का वस्त्र पहनने को, अमृत-निर्झर में झरने वाला अमृत पीने को और शून्यफल (ब्रह्मरंध्र में मिलने

---

१. (घ) वहौ। २. (ग) में 'मूल' नहीं है। ३. (क) (घ) वृछा। (ख) बृषा। ४. (घ) पंडित पुरषा। ५. (ख) परवांणि। ६. (ख), (ग) युं। ७. (ख) सीधा; (ग) सिद्ध; (घ) सिध। ८. (ख) सिधि बुधि; (घ) सुधबुध। ९. (ग), (घ) में नहीं। १०. (ग) जानंति, (घ) जाणंत। ११. (ग) भेदांनभेद (घ) भेदं। १२. (ग), (घ) जाणंत। १३. (घ) छेदं। १४. (ग) जानति; (घ) जाणंत। १५. (घ) सुधबुध। १६. (ग) उतरिपंडि; (घ) उतरषंड। १७. (ग), (घ) जाइबा। १८. (ग) सून्यफल; (क) (घ) मुनिफल १९. (ग) पहरिबा; (घ) पाइबा। २०. (ग) पै (मैं?) हैरिबा। २१. (ग) (घ) झरणां। २१. (ग) इमृत; (घ) अमीरस। २२. (ग), (घ) पिवणां। २३. (ग) यो।

हिन्दू[1] ध्यावै[2] देहुरा मुसलमान मसीत[3] ।
जोगी ध्यावै[2] परमपद[4] जहाँ[5] देहुरा न मसीत[3] ॥ ६८ ॥
हिंदू आषैं[6] रांम कौं[7] मुसलमान षुदाइ[9] ।
जोगी आषैं[6] अलष कौं[7], तहाँ राम अछै[8] न षुदाइ[9] ॥ ६९ ॥
प्यंडे[10] होइ[11] तौ[12] मरै न कोई, ब्रह्मंडे[13] देषै सब लोई[14] ।
प्यंड ब्रह्मंड[15] निरंतर[16] बास[17], भणंत गोरष मछ्यंद्र[18] का दास[17] ॥७०॥
बैठा अवधू लोह की षूंटी[19], चलता[20] अवधू पवन की मूंठी[19] ।
सोवता[21] अवधू जीवता[22] मूवा, बोलता अवधू प्यंजरै[23] सूवा ॥ ६८ ॥

वाला फल, ब्रह्मानुभूति) खाने को मिलता है । गोरख ने अपने चंचल मन को इसी प्रकार स्थिर किया ॥ ६७ ॥

हिन्दू देवालय में ध्यान करते हैं, मुसलमान मसजिद में किंतु योगी परमपद का ध्यान करते हैं, जहाँ न देवालय है न मसजिद ॥ ६८ ॥

हिंदू कहते हैं (आखैं, आख्यान करते हैं कि हमारा परमेश्वर) राम है, मुसलमान कहते हैं खुदा है । किन्तु योगी जिस अलक्ष्य का आख्यान करते हैं, वहाँ न राम है, न खुदा । (अलक्ष्य ब्रह्म राम और खुदा दोनों से परे है) ॥६९॥

यदि शरीर में परमात्मा होता तो कोई मरता ही नहीं । यदि ब्रह्मांड में होता तो हर कोई उसे देखता । जैसे ब्रह्मांड की और चीजें दिखाई देती हैं वैसे ही वह भी दिखाई देता । मत्स्येन्द्र का सेवक (शिष्य) गोरख कहता है कि वह पिंड और ब्रह्मांड दोनों से परे है ॥ ७० ॥

अवधूत योगी जब (आसन मारे) बैठा रहता है तो वह लोहे की खूंटी के

---

१. (ग), (घ) हींदू । २.(क) ध्यांवैं; (घ) ध्यांवै । ३.(ग) मसीति । ४. (क) प्रम पद । ५. (क),(ख) तहा । ६.(ग) अषै (घ) अषैं;(क) में भी दूसरे 'आषैं' के स्थान पर 'अषै'; (घ) अषैं । ७. (ग), (घ) कूं । ८. (ग), (घ) आछै ९. (ग) षुदाई; (घ) षुदाय । १०. (ग) प्यंडै; (घ) पिंडे । ११. (घ) होय । १२. (ग) तो । १३. (ग), (घ) ब्रह्मडे । इसके आगे (ग) में 'होइ तो' और (घ) में 'होय तो' अधिक है । १४. (ग) (घ) कोई । १५. (ग) प्यंडै ब्रह्मंडे, (घ) पिंडे ब्रह्मंडे । १६. (घ) निरंतरि । १७. (ग) वासा···दासं । (घ) वासा···दासा । १८ (ग) मछंद्र; (घ) मछिंद्र । १९. (ख) षुटी···मुठी । (क) षूंटी...मूठी । २०. (ग) चालतां; (घ) चालता । २१. (ग) सोवतां २२. (ख) जीवता न । (ख) में इन दोनों चरणों का क्रम उलट गया है । २३. (ग) पिंचरे; (घ) पिंजरै ।

गोरष[1] कहै सुणहुरे[2] अवधू जग[3] मैं ऐसैं[4] रहणां—
आंषें[5] देषिबा कानैं[6] सुणिबा मुष थैं[7] कछू[8] न कहणां ॥ ७२ ॥
नाथ कहै तुम आपा राषौ, हठ करि वाद न करणां ।
यहु जुग है कांटे की वाड़ी, देषि देषि पग धरणां[9] ॥ ७३ ॥
गोरष कहै सुणौं[10] रे[11] अवधू सुसूपाल[12] थैं[13] डरिये ।
ले[14] मुदिगर[15] की सिर मैं मेलै[16], तौ[17] विनही पूटी[18] मरिये ॥ ७४ ॥

समान निश्चल होता है और जब चलता है तो पवन की मुट्ठी बांध कर (वायु-वेग से) जो जोगी सोता है वह जीते जी मृतक के समान है। और जो बहुत बोलता फिरता है उसे समझना चाहिए कि अभी बंधन मुक्त नहीं हुआ ॥७१॥

योगियों के लिए गोरखनाथ का उपदेश है कि इस दुनिया में तमाशबीन (साक्षी) की तरह रहना चाहिए। उस में लिप्त न होना चाहिए। देखता-सुनता तो सब कुछ रहे परन्तु स्वयं कुछ बोले नहीं; आप उस प्रपंच में न पड़े ॥ ७२ ॥

नाथ का उपदेश है कि तुम अपने आपा की (आत्मा) रक्षा करो हठ पूर्वक वाद (खंडन-मंडन) में न पड़ो। यह संसार कांटे के खेत की तरह है जिसमें पग पग पर कांटे चुभने का डर रहता है। इसलिए देख देख कर डग रखना चाहिए ॥ ३७ ॥

गोरखनाथ कहते हैं कि हे अवधूत ! शिशुपाल (काल) से डरना चाहिए, अगर वह मुद्गर को सिर पर मारे तो आयु के बिना समाप्त हुए ही (अकाल ही) आदमी मर जाय।

---

१. नाथ। २. (ख) सुणौ रे; (ग), (घ) सुणौ रे। ३. (ख), (ग), (घ) जुग। ४. (ख) अहिबोधि। ५. (ख) आष्या; (ग), (घ) आंष्यां। ६. (ख) काना, (ग), (घ) कानां। ७. (ख) ते, (ग) तै, (घ) सूं। ८. (ख) कछु। ९. केवल (क) में। १०. (ग) सुणां। ११. (ग) रे। १२. (ख) सुसपाल, (ग) सूसपाल, (घ) सूंसपाल। १३ (ख) सुं, (ग) तैं, (घ) थैं। १४. (ख) उठाय करि। १५. (ख) मुदग्र (ग), (घ) मुदगर। १६. (ख) दे। (ख) में इसके पहले 'सिर मैं' नहीं है, (ग) मेल्है, (घ) मेल्है,। १७. (ग) तब। १८. (ख) सांसि जाइ हीं, (ग) बिष ही पूटी, (घ) बिष पूटी ही।

दृष्टि[1] अग्रे दृष्टि[2] लुकाइबा[3] सुरति लुकाइबा कांनं[4] ।
नासिका अग्रे पवन लुकाइबा[5], तब रहि गया[6] पद निरबांनं[4] ॥७५॥
अवधू मनसा हमारी[7] गींद[8] बोलिये[9], सुरति बोलिये[10] चौगानं[11] ।
अनहद[12] ले[13] षेलिबा[14] लागा, तब गगन[15] भया मैदानं[11] ॥७६॥
पंच[16] तत्त[17] ले सिधां[18] मुडाया[19], तब भेटिलै निरंजन निराकारं ।
मन मस्त हस्ती मिलाइ[20] अवधू, तब लूटिलै अषै[21] भंडारं ॥ ७७ ॥

शिशुपाल को काल अथवा शैतान मानना कुछ विरल है। यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि उसके कृष्णविरोधी होने के कारण उसके प्रति यह भावना हो सकती है। षूटी=नष्ट हुई। खुट्ट, टूटा हुआ-देशी, २, ७४ ॥ ७४ ॥

(इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाओ दृष्टि (चक्षुरिंद्रिय के आगे से दृष्टि को (देखने की शक्ति को) छिपाओ, कान के आगे से श्रुति (सुनना), नाक के आगे से वायु को छिपाओ। ऐसा करने से फिर केवल-निर्वाण-पद शेष रह जाता है। इस में प्रत्याहार की आवश्यकता बतायी गयी है) ॥ ७५ ॥

हे अवधूत, मनसा हमारी गेंद है और सुरति (मन की उलटी गति अर्थात् आत्मस्मृति) चौगान। अनहद को लेकर (घोड़ा बना कर) मैं खेलने लगा। इस प्रकार ब्रह्मरंध्र (गगन या शून्य) (मेरे खेलने का) मैदान हो गया ॥ ७६ ॥

जब सिद्धों ने पांच तत्त्वों के लेकर (ग्रहण कर, वश में कर) मुंडा लिया

---

१. (ख) द्रिष्ट, (ग) (घ) दिष्ट। २. (ख) द्रष्ट (ग) (घ) दिस्ट। ३. (घ) लुकायबा; (ग) लुकाईबा। ४. (ख) कांनं...नरबाण; (ग) कानं ..निरवाण (घ) वानां....निरवानां। ५. (ग), (घ) लुकायबा। ६. (ख) रहैगा युहु। ७. (ग) हमारै। ८. (क) (ख), (ग) गीद। ९. (ग), (घ) बोलियै। १०. (क), (ख) देखो ९. (ग) भई। ११. (ग) चौगान...मैदान (घ) चौगांन ..मैदांन। १२. (ख), (ग), (घ) अनहद सबद। १३. (ग) में 'ले' नहीं है। १४. (ख) षेलणै, (ग) षेलनै, (घ) षेलण। १५. (ख) गीगनि; गिगन। १६. (ख). (घ) पांच। १७. (क), (ख), (घ) तत; (ग) तत्व। १८. (ख) सिध; (ग) सिधो। १९. (ख) मडीया। २०. (ख), (ग), (घ) मिलायलै। (ग) में 'मी' दीर्घ और इस शब्द के बाद 'अलै' लिखा गया है, स्पष्ट ही गलती से। २१. (ख) अलष।

अरध-उरध विचि धरी[1] उठाई[2], मांध सुंनि मैं बैठा जाई[2]।
मतवाला[3] की संगति आई, कथंत गोरषनाथ[4] परमगति पाई ॥ ७८ ॥

डंडी सो[5] जे[6] आपा डंडै, आवत जाती[7] मनसा षंडै।
पंचों[8] इंद्री[9] का मरदै मांन, सो डंडी कहिये[10] तत्त[11] समांन ॥७९॥

पाया लो भल पाया लो[12]सबद[13] थांन सहेतां[14] थीति[15]।
रूप सहेता[16] दीसण लागा[16], तब सर्व[17] भई परतीति ॥ ८० ॥

(चेला, अनुगामी बना लिया), तब निरंजन निराकार से भेंट की। हे अवधूत मन रूप मस्त हाथी जब मिल जाय (हाथ लग जाय, अपना हो जाय) तब अक्षय भंडार लूटने को मिल जाता है ॥ ७७ ॥

श्वासा (अथवा शक्ति) को अरध (अधः नीचे, अंदर जाने वाली वायु) और ऊर्ध्व (उच्छ्वास) के बीच में उठा कर रक्खा अर्थात् केवल कुंभक किया और मध्य शून्य (ब्रह्मरंध्र) में जा बैठा। वहाँ मतवाले शिव (ब्रह्म तत्त्व) की संगति मिली। इस प्रकार गोरखनाथ कहते हैं (कि हमें) परम गति प्राप्त हो गयी ॥ ७८ ॥

दंडी वह है जो आपा (अहंकार) को दंडित करता है। और आती-जाती (परिवर्तनशील, चंचल) कामना (मनसा) को खंडित करता है। पांचों इन्द्रियों का मान मर्दित करता है। ऐसा ही दंडी ब्रह्मतत्त्व में लीन होता है ॥ ७९ ॥

मैंने पा लिया! अच्छा पाया, शब्द (के द्वारा) स्थान (ब्रह्म पद) सहित स्थिति की। तब ब्रह्म के रूप सहित (साक्षात्) दर्शन होने लगे और सब प्रकार विश्वास हो गया; बुद्धि में कोई संदेह नहीं रह गया ॥ ८० ॥

---

१. (ग) धरणा। २. (घ) उठाय ·· जाय। ३. (ख), (ग), (घ) मतिवाला। ४. (ग) गोरष कहै। ५. (ग), (घ) सोई। ६. (ख) [illegible]; (ग) जु; (घ) सो। ७. (ग) जावती। ८. (ग) पांचूं। ९. (ख), (घ) इंद्री। १०. (ग), (घ) कहियें। ११. (क), (ख), (ग), (घ) तत। १२. (ग) पाया [illegible] पायाला। १३. (ख) (ग) (घ) सबद। १४. (क) सहेती। १५. (ख), (ग), (घ) थिति; (ग) तिथि। १६. (ग) (घ) सहेती··· लागी। १७. (ग), (ग) [illegible]; (घ) सिद।

अरधंत[1] कवल उरधंत[1] मध्ये[2] प्रांण पुरिस का वासा[3] ।
द्वादस हंसा उलटि चलैगा, तब हीं[4] जोति प्रकासा[3] ॥ ८१ ॥
आसण बैसिबा[5] पवन निरोधिबा, थांन-मांन सब धंधा ।
बदंत गोरखनाथ आतमां विचारंत[6], ज्यूं जल दीसै[7] चंदा ॥ ८२ ॥
गोरष बोलै[8] सुणिरे[9] अवधू पंचौं[10] पसर[11] निवारी ।
अपणीं[12] आत्मां[13] आप बिचारी[14], तब सोवौ[15] पांन पसारी ॥८३॥

जब नीचे के कमल में से उर्ध्व कमल में प्राण पुरुष का वास होने लगे तब प्राण वायु वहिर्गामी होने के बदले उलटकर आभ्यंतरगामी हो जायगी और ज्योति का प्रकाश होगा ॥ ८१ ॥

आसन बाँधकर बैठना, प्राणायाम के द्वारा वायु का निरोध करना कोई पद (यथा गुरु पद) और तत्संबंधी मान सब धंधे हैं। अथवा स्थान विशेष का महत्व कि यहीं बैठकर अभ्यास से योगसिद्धि हो सकती है, सब धंधे हैं। (इनका निरपेक्ष महत्व नहीं है। ये केवल बाहरी साधन मात्र हैं। जो बातें आभ्यंतर ज्ञान को उत्पन्न करती हैं वे ही योग मार्ग में सब कुछ हैं)। गोरखनाथ कहते हैं कि आत्म तत्त्व का विचार करने से (सारा दृश्यमान जगत वैसे ही परब्रह्म का प्रतिबिम्ब जान पड़ने लगता है) जिस प्रकार जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है ॥ ८२ ॥

गोरख कहते हैं कि हे अवधूत, सुनो पंचतत्त्वों अथवा पंचज्ञानेंद्रियों के बहिःप्रसार का निवारण कर अपने आत्मा का स्वयं चिंतन करने से मनुष्य की सब चिंताएँ दूर हो जाती हैं। वह पाँव पसार कर, निश्चिंत हो कर सो सकता है ॥ ८३ ॥

---

१. (ख) अरधत···उरधत। (घ) में 'उरधंत' के बाद भी 'कंवल'। २. (ख) मधे; (घ) मधि। ३. (क) वासं...प्रकासं। (ख) में अंतिम दो चरण नहीं हैं। ४. (ग) (घ) ही, ५. (ख) आसा न वसिवा। ६. (ख) वीचारंत; (ग),(घ) विचारिवा। ७. (ख), मंघ। (ग), (घ) मध्ये। ८. (घ) कहै। ९. (ख) सुणोरे, (ग) सुणरै; (घ) सुणौरे। १०. (ख) पांच; (ग) पौंचौ;. (घ) पांचौं। ११. (ख) पसार; (ग) पसू। १२. (ख) आपणी; १३. (ख), (ग) आतमा। १४. (ग), (घ) बिचारिबा। १५. (क) सोवो; (ख), (ग) सोवै।

प्रसार[1] न्यंद्रा वैरी[2] काल, कैसैं कर[3] रखिबा गुरू का भंडार।
प्रसार तोड़ौ[4], निंद्रा[5] मोड़ौ[4], सिव सकती ले करि[6] जोड़ौ॥ ८४॥
तब जांनिवा[7] अनाहद का बंध, ना पड़ै[8] त्रिभुवन[9] नहीं पड़ै कंध।
रकत[10] की रेत अंग थैं[11] न छूटै, जोगी[12] कहतां[13] हीरा[14] न फूटै[15]॥
सबद एक पूछिबा कहौ[16] गुरु दयालं, विरिधि थैं[17] क्यूं करि होइबा बालं॥
फूल्या फूल कली क्यूं होई, पूछै कहै तो[18] गोरष सोई॥ ८६॥

आहार वैरी है क्योंकि अति आहार से कई खराबियाँ होती हैं जिनमें से नींद का जोर करना एक है। देखो ऊपर ३३ वीं और ३४वीं सबदी) और निद्रा काल है। (ये गुरु के भंडार ब्रह्मतत्त्व की चोरी करते हैं, उसकी अनुभूति नहीं होने देते) गुरु के भंडार की रक्षा कैसे की जाय? भोजन को तो कम करो निद्रा को मोड़ो अर्थात् आने न दो) और शिव (ब्रह्मतत्त्व) और शक्ति (योगिनी, कुंडलिनी तत्त्व) को एक में मिला लो (यही उसका उपाय है॥ ८४॥

अनाहत प्राप्त कर लिया गया है, बाँध लिया गया है, यह तभी समझना चाहिए जब त्रैलोक्य में योगी के लिए बाधा न हो, और उसका शरीर-पात न हो; रक्त का सार रेतस् (शुक्र) शरीर से स्खलित न हो, और जोगी कहता है कि (श्वेत ब्रह्मानुभव का) हीरा नष्ट न हो अर्थात् साक्षात् ब्रह्मानुभव हो जाय॥ ८५॥

हम आपसे एक शब्द पूछते हैं, हे दयालु गुरु, उसका उत्तर दीजिए। वृद्ध

---

१. (घ) अहार वैरी निंद्रा काल। २. (ग) वेरी। ३. (ख) कसि करि, (ग) कैसें, (घ) कैसें। ४. (ख) तोड़ो, मोड़ो, जोड़ो (ग) तोड़ौं, मोड़ौ, जोड़ौ। ५. (ख), (घ) न्यद्रा। ६. (ख) दिढ़ि करि; (ग), (घ) उनमनि। ७. (घ), (ग) जांनिबा; (क) जानबा; (ग) में इसके पहले और (घ) में आगे 'अवधू है'। ८. (ख) पहला 'न पड़े' नहीं है दूसरे 'नहीं' के स्थान पर केवल 'न' है। (घ)—पड़ै न पड़ै, (ग) नहीं पड़ै नहीं परै। ९. (ख) त्रिभवण; (घ) त्रिभवन १०. (ख) रकत (ग) रक्त। ११ (ग) परे। (ग) अंग थैं; (ख) अंग थै; (घ) अंग तैं। १२. (घ) सो जोगी। १३. (ख) कहत, (घ) कहतां। १४. (ख) हीरा। (ग), (घ) हीरा। १५. (ख) फूटै। १६. (क) गुरु कहौ। १७. (क) वृध थै; (ख), (ग) बिध ते (पै—ग); (घ) वृध तैं। १८. (ख) तो; (ग), (घ) तो।

सुणौं हो[1] देवल तजौ जंजालं, अमिय[2] पीवत तब[3] होइबा बालं।
ब्रह्म अगनि सींचत[4] मूलं, फूल्या फूल कली फिरि[5] फूलं ॥८७॥
उलट्या[6] पवनां[7] गगन[8] समोइ[9] तब बाल रूप परतषि[10] होई[11]।
उदै[12] ग्रहि अस्त हेम[12] ग्रहि पवन मेला, बंधिलै[13] हस्तिया[14] निज साल[15] भेला।
बारा[16] कला सोषै सोला[17] कला पोषै, चारि कला साधै अनंत कला जीवै[18]।
ऊरम धूरम जोती ज्वाला[19]सीधि[20] साधंत[21] चारि[22]कला पीवै ॥८९॥

से बालक कैसे हो सकते हैं। जो फूल खिल चुका है वह फिर कली कैसे हो सकता है। पूछे जाने पर इसका उत्तर जो दे वही गोरखनाथ है ॥८६॥

हे देवल (नाथ !) जगत के जंजाल को छोड़ो। (योग की युक्ति से) अमृत का पान करो तो बालक हो सकते हो। ब्रह्माग्नि से मूल को सींचने से जो फूल खिल चुका है वह फूल भी कली हो जाता है ॥८७॥

पवन को उलटकर ब्रह्मरंध्र में समावे। तब बालक रूप प्रत्यक्ष होता है। उदय के घर में अस्त जाने से (अर्थात् मूलाधार स्थित सूर्य को अस्त करने से और चंद्र हेम (हिम) के घर ब्रह्मरंध्र में पवन का सम्मिलन करने से बँधा हुआ (बँधकर) हाथी (मन) अपनी शाला में (जहाँ उसे योग सिद्ध के लिए रहना चाहिये अर्थात् आत्मा की अज्ञानता में) आ जाता है ॥८८॥

बारह कला (मूलाधारस्थ सूर्य) को सोखे (जिससे वह सूर्य अमृत के निर्झर को स्वयं सोखने में समर्थ न हो और इस प्रकार) सोलह कला (सहस्रारस्थ अमृतस्रावक चन्द्रमा) का पोषण करे। इस प्रकार चार कलाएँ

१. (ख) सुणो हो, (ग) सुणि है। (घ) सुणि हो। २. (ख) अपाव,(घ) अपीव, (ग) अमी। (ख) पीवता; (ग) पीवतां; (घ) पीवतं। ३. (ग), (घ) सींचिवा। ४. (ग) फिर। ५. (घ) उलटा। ६. (ख), (ग), (घ) पवन। ७. (ख) गिगनि। ८. (ख) समाइ; (घ) समोय। ९. (क) प्रतच्चि; (ग) रूप प्रतीग। १०. (ख), (ग) जोइ, (घ) होय। ११. (क) ग्रह···ग्रह्य; (ख) ग्रहि (पहि ?)··· ग्रहि। १२. (ग) ग्रिहे···ग्रीहे। (ग) में 'अस्ति' के आगे भी ग्रिहे'। १३. (ग), (घ) पवनां। १४. (ग) बंधिले। १५. (ख) हसतिया; (ग) हस्तिये; (घ) में साल नहीं है। १६. (ख) बारै; (ग) बाराह; (क), (घ) बारह। १७. (ख), (ग) सालै; (घ) सोलह। १८. (ग) जोवै। १९. (ख) बुजाला। २०. (क) सीधे; (ख), (ग) सिधे। २१. साधत। २२. (घ) च्यारि।

असाध[1] साधंत गगन[2] गाजंत[3], उनमनी लागंत ताली।
उलटंत पवनं पलटंत बांणीं, अपीव[4] पीवत[5] जे[6] ब्रह्मग्यांनीं ॥९०॥
अलेष लेषंत अदेष देषंत, अरस[7] परस ते[8] दरस जांणीं।
सुंनि[9] गरजंत बाजंत नाद अलेष लेषंत ते निज प्रवांणीं[10] ॥९१॥
निहचल[11] घरि बैसिबा पवन[12] निरोधिबा[13] कदे न होइगा रोगी।
बरस दिन मैं तीनि बार काया पलटिबा[14],नाग बंग बनासपती जोगी ॥९२॥

(सूर्य के ऊपर चन्द्रमा की विशेषता अर्थात् अमृत) सिद्ध होगी। इससे अनन्त कला पूर्ण अर्थात् ब्रह्मानुभवमय जीवन प्राप्त होगा। विशाल प्रकाशमय ज्योति के दर्शन होंगे, सिद्धि साधते हुए चार कला (अमृत) का पान करेगा ॥८९॥

जो असाध्य अथवा असाधु (मन) को साधते हैं (वश करते हैं), गगन को (अनाहत नाद से) गर्जित करते हैं, उन्मनी समाधि लगाते हैं, पवन को उलटते और सुषुम्णा (सरस्वती, वाणी) के मार्ग में पलट कर लगा देते हैं, और अमृत पान करते हैं (वे) ब्रह्मज्ञानी हैं ॥९०॥

जो लिखा नहीं जा सकता उसका लेखा (देखकर वर्णन) करने वाले, जो देखा नहीं जा सकता, उसे देखनेवाले, ब्रह्म का छू छू कर (अरस-परस) अर्थात् स्वयं साक्षात् दर्शन करने वाले, ब्रह्मरंध्र को अनाहत-नाद से गर्जित करने वाले निज प्रमाण से, स्वयं अपने अनुभव से ब्रह्म को जानते हैं ॥९१॥

निश्चल रूप से अपने घर बैठना चाहिए, आत्मस्थ होना चाहिए, (ऐसा करने से साधक) कभी रोगी न होगा। (परन्तु साथ ही) नाग (सीसे का भस्म), बंग (टिन [illegible]) और बनस्पति के प्रयोग से वर्ष भर में तीन बार काया कल्प करन[illegible] चाहिए ॥९२॥

१. (क) साध। [illegible] । ३. (ख) गरजांत,
(ग) प्रजंत; (घ) गर [illegible] ५. (ख), (घ) पींवंत,
(ग) पीवंति। ६. ([illegible] [illegible] (ग), (घ) दरस।
८. (ख) तां। ९. [illegible] ग), (घ)
प्राणी। (ख) में इर [illegible] लखीत
अदेप देखाता, दरस [illegible] घ)
निहिचल। १२. (ग) [illegible]
(घ) परमोघिवा। १५. ([illegible]

षोडस[1] नाड़ी चंद्र प्रकास्या[2] द्वादस नाड़ी मांनं[3] ।
सहंस्र[4] नाड़ी[5] प्रांण का मेला, जहां असंष[6] कला सिव थांनं ॥६३॥
अवधू ईड़ा[7] मारग[8] चंद्र भणीजै, प्यंगुला[9] मारग भांमं ।
सुषमनां[10] मारग[11] बांणीं वोलिये त्रिय[11] मूल अस्थांनं[12] ॥६४॥
अवधू काया हमारी[13] नालि बोलिये[14] दारू बोलिये[14] पवनं ।[15]
अगनि पलीता अनहद गरजै व्यंद[16] गोला उड़ि[17] गगनं[15] ॥६५॥
काजी मुलां कुरांण लगाया, ब्रह्म[18] लगाया वेदं ।
कापड़ी संन्यासी[19] तीरथ[20] भ्रमाया न पाया नृबांण पद[21] का भेवं ६६

षोडश कला वाली नाड़ी (इला) में चंद्रमा का प्रकाश है, द्वादश वाली (पिंगला) में भानु का सहस्र नाड़ी (सुषुम्ना अथवा) सहस्रार में प्राण का मूल निवास है, वहाँ असंख्य कलावाले शिव (ब्रह्मतत्व) का स्थान है ॥ ६३ ॥

ईड़ा नाड़ी को चन्द्र कहते हैं, पिंगला को भानु और सुषुम्णा को सरस्वती (वाणी) ये ही तीनों मूलस्थान (ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाते हैं) ॥ ६४ ॥

हे अवधूत ! यह शरीर नाली (बंदूक) है, पवन बारूद है, अनहद रूप आग देने से धड़ाका होता है और बिंदु रूप गोला ब्रह्मरंध्र में चला जाता है अर्थात् साधक ऊर्ध्वरेता हो जाता है ॥ ६५ ॥

काजी मुल्लाओं ने कुरान पढ़ा, ब्राह्मणों ने वेद, कापड़ी (गंगोत्तरी से

---

१. (क), (ख) में 'षोड़स' के पहले 'अवधू' । २. (ख) प्रकासा । ३. (ख) भांण, (ग) भाण (भीणं ?) (घ) भांणं । ४. (ख) सहंसर; (ग) सहस्र । ५. (ग), (घ) 'प्रांण' के पहले 'जहाँ' । ६. (ग) असादि । ७. (ख) इड़ी; (ग) इला, (घ) यला । ८. (क) मारग । ९. (घ) पिंगुला । १०. (ख) सुषमण । १४. (घ) मारगि । ११. (क) तृय ; (ख) त्रिया; (ग) त्रियं, (घ) त्रियो १२. (ख) सुथान, (ग) सथानं । १३. (क), (ख) हमारै । १४. (घ) वोलीयै, (ग) में पहला 'वोलियं' दूसरा 'वोलीयं' । १५, (ख) पवन···गीगन, (घ) पवना···गागनं (घ) पवनां···गगनां । १६. (घ) विंद । १७. (ख), (ग), (घ) उड़िया । १८. (ख) ब्रह्मन, (ग) ब्राह्मण । (घ) ब्राह्मण । १९. सन्यासी (ख) सिन्यासी । (घ) सन्यासी । २०. (ग) तीरथा; (घ) तीरथां; (क), (ख), (घ) भ्रमाया । २१. (ग), (घ) तत ।

देवल जात्रा[1] सुंनि[2] जात्रा[1], तीरथ जात्रा[1] पांणीं[4]।
अतीत[5] जात्रा सुफल जात्रा बोलै अंमृत[6] वांणीं ॥ ९७ ॥
अधरा धरे बिचारिया, धर या हीं मैं सोई।
धर अधर[7] परचा हूवा, तब उती नाहीं कोई ॥ ९८ ॥
ऊभा मारूं बैठा मारूं, मारूं जागत सूता।
तीनि[8] लोक भग जाल पसारया[9] कहां जाइगौ[10] पूता ॥९९॥

गंगाजल लाने वाले) और सन्यासियों को तीर्थों ने भ्रम में डाल रक्खा है इन में से किसी ने निर्वाण पद का भेद नहीं पाया ॥ ९६ ॥

देवालय की यात्रा शून्य यात्रा है, उससे कोई फल नहीं मिलता। तीर्थ की यात्रा (:से तो फल ही क्या मिल सकता है, वह) तो पानी की ही यात्रा ठहरी। सुफल यात्रा अतीत-यात्रा है, साधु-सन्तों के दर्शनों के लिए की जाने वाली यात्रा है, जो अमृतवाणी बोलते हैं। (उनके सत्संग और उपदेश श्रवण से जो लाभ होता है वह किसी यात्रा से संभव नहीं) ॥ ९७ ॥

अधर (शून्य ब्रह्मरंध्र) में हमने ब्रह्मतत्त्व का विचार किया। (अधर में तो वह है ही); इस धरा में भी वही है। (मूलाधार से लेकर ब्रह्मरंध्र तक सर्वत्र उसकी स्थिति है। कहीं वह स्थूल रूप से है, कहीं सूक्ष्म रूप से।) जब धर अधर का परिचय हो जाता है, जब मूलस्थ कुंडलिनी शक्ति का सहस्रारस्थ शिव से परिचय हो जाता है तब साधक के लिए उधर अर्थात् अपने अनुभव ज्ञान से बाहर कुछ नहीं रह जाता ॥ ९८ ॥

(काल की ललकार है कि मुझ से तुम बच नहीं सकते)। खड़े, बैठे, जागते, सोते चाहे जिस दशा में रहो उसी दशा में मैं तुम्हें मार सकता हूँ (तुम्हें पकड़ने के लिए) मैंने तीनों लोकों में योनि रूप जाल पसार रक्खा है। उससे बच कर तुम कहाँ जाओगे ! ॥ ९९ ॥

---

१. (क), (ग) यात्रा। २, (ग) सूनि; (ख) (घ) सुनि। ३. (ख) तीरथी। ४. (ख) पांनि। ५. (ख) साधु। ६. (ख) अम्रत; (घ) यंम्रत। ७. (क) अरध। ८. (ग), (घ) तीन। ९. (ग) पसार्‌यौ। १०. (ख) जाइगे; (ग) जायगो; (घ) जायगा।

ऊभा षंडौं[1] बैठा षंडौं[1] षंडौं[1] जागत सूता।
तिहू[2] लोक तैं[3] रहूँ निरंतरि[4] तौ[5] गोरख अवधूता ॥१००॥
न्यंद्रा[6] कहै मैं अलिया[7] बलिया, ब्रह्मां विष्न महादेव छलिया।
न्यंद्रा[6] कहै हूं षरी बिगूती, जागै गोरष हूँ पड़ि[8] सूती ॥१०१॥
जोगी सो जे[9] मन जोगवै, बिन[10] बिलाइत राज भोगवै।
कनक कांमनीं[11] त्यागै दोइ, सो जोगेस्वर[12] निरभै होइ ॥१०२॥

(काल को सिद्ध योगी का यह उत्तर है—) मैं खड़ा, बैठा, सोता चाहे जिस अवस्था में होऊँ मेरा नाम अवधूत गोरख तब है, जब मैं उसी अवस्था में तुम्हें (काल को खंडित कर तीनों लोकों से बाहर हो जाऊँ। यदि 'षंडौं' के स्थान पर 'सुमरूं' आदि पाठ माने जायँ तो अर्थ होगा कि मैं सुमिरन के प्रभाव से तीनों लोकों से अलग होकर तुम्हारे (काल के) प्रभाव से बाहर हो जाऊँगा ॥१००॥

निद्रा कहती है कि मैं आल-जाल वाली (अलिया, प्रपंच कारिणी) हूँ और बलवती हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव तक को मैंने छला है। किन्तु गोरखनाथ ने मेरा खूब (बहुत) बुरा हाल कर दिया। वह जागता है और मैं पड़ी सो रही हूँ। बिगूती-विकृत, विकुत, विगूता (स्त्री)। ॥ १०१ ॥

जोगी वह, जो मन की रक्षा करे। और परम शून्य अर्थात् ब्रह्मरंध्र में देश के बिना ब्रह्मानुभूतिमय बड़े राज्य का उपभोग करे। जो योगेश्वर कनक और कामिनी का त्याग कर देता है, वह निर्भय हो जाता है ॥१०२॥

बिलाइत-विदेश। प्राचीन काल में जब लोगों को बाहर का ज्ञान कम

१, (ख) सिमरूं; (ग) सुमिरूं; (घ) सुमरूं। २. (ख), (ग), (घ) तीन। ३. (ख) स्यौ; (ग) थें। ४. (क), (ग) निरंतर; (ख) निराला (मीराला ?) ५. (ख) तो। ६. (घ) निंद्रा। ७. (ग) (घ) अवला। 'अलिया बलिया' के स्थान पर अलिया छलिया भी संभव है। राजस्थान के लिपिकारों की 'छ' और 'व' में बहुत कम अंतर रहता है। ८. (ग) मैं फरि, (घ) फिरि। ९. (ख), (ग), (घ) जो। १०. (क) परम सुंनि बिन बिलाइत; (ख) बीणि बिलाइति (ग) विण बिलाति वड, (घ) बिन बिलात बड। ११. (ख), (घ) कांमणी। १२. (ख) जोगेसर; (ग) जोगेस्वुर।

संन्यासी सोई[1] करै[2] सर्ब[3] नास, गगन[4] मंडल महि[5] मांडै आस ।
अनहद सूं[6] मन उनमन[7] रहै, सो[8] संन्यासी[9] अगम की कहै ॥१०३॥
लाल बोलंती अम्हे[10] पारि[11] उतरिया, मूंढ रहै[12] उर वारं ।
थिति बिहूंणां झूठा जोगी[13] ना तस[14] वार न[15] पारं* ॥१०४॥
उलटिया[16] पवन षट चक्र बेधिया[17], तातै[18] लोहै सोषिया[19] पांणीं ।
चंद सूर दोऊ[20] निज घरि राष्या[21], ऐसा अलष बिनांणीं ॥१०५॥

था तब वे अपने राज्य को छोटा समझते थे और बाहर के राज्यों को बड़ा । इसी से प्रत्येक देश में विदेशियों का बड़ा आदर होता था ॥१०२॥

सन्यासी वह है, जो अपने सर्वस्व का न्यास (त्याग) कर देता है । केवल शून्य मंडल में (मिलने वाली ब्रह्मानुभूति की) आशा लिये रहता है । अनाहत (को सुनकर) मन को उन्मनावस्था में लीन किये रहता है । वह संन्यासी (स्वानुभव से) अगम परब्रह्म का कथन करता है ॥१०३॥

लाल (संभवतः लालनाथ) कहते हैं कि (हम भव सागर से) पार उतर गये । किंतु मूढ़ (संसारी) लोग (उसे पार नहीं कर सके,) इसी किनारे रह गये । परन्तु जो स्थिति (स्थिरता) के बिना होने के कारण (अभी चंचल) झूठा जोगी है (वह मझधार ही में डूब जाता है) उसे न वह किनारा मिलता है न यह, न वह वार होता है न पार, उसका यह लोक भी नष्ट हो जाता है और उसे मोक्ष भी नहीं प्राप्त होता ॥१०४॥

प्राण वायु को उलट कर छहों चक्रों को बेध लिया । उस से तप्त

---

१. (ख) सो; (घ) सोई । २. (ग) (घ) में 'करै' नहीं है । ३. (क) श्रव; (ख) सरव का; (ग),(घ) सरव (क्रम-ग) करम का । ४. (ख) गीगनि; (घ) गिगनि । ५. (ख), (ग), (घ) मैं । ६. (ख) स्यु (ग) स्यौं, (घ) स्यूं । ७. (ग), (घ) उनमनि । ८. (क) सोई; (ख) सो । ९. (क) सिन्यासी; (ख), (ग), (घ) सन्यासा । १०. (ख) बोलै,अमें, (ग), (घ) कहै हम । ११. (क), (ग) पार । १२. (क) (ग), (घ) रह्या । १३. (ग), (घ) झूठा जोगी तिथि बिहूँणा । १४. (क) तिस । १५. (ग) णा । १६. (ख) उलटि, (ग), (घ) उलट्या । १७. (ग) (घ) बेध्या । १८. (ख) ततै; (घ) तातैं । १९. (ख) सोष्य (ग), (घ) सोष्या । २०. (ग) २१. (ग), (घ) दोऊं । २१. (क) राषौं ।

---

*यह 'सबदी' किसी लालनाथ योगी की जान पड़ती है ।

नाद हमारै बावै[1] कवन[2], नाद बजाया[3] तूटै पवन[4]।
अनहद सबद बाजता रहै, सिध संकेत श्री गोरष[5] कहै ॥ १०६ ॥
सुणि गुणवंता[6] सुणि बुधिवंता, अनंत सिधां की बांणीं।
सीस नवावत[7] सत गुर मिलिया[8], जागत[9] रैंणि बिहांणीं ॥ १०७ ॥
भिष्या[10] हमारी[11] कामधेनि[12] बोलिये, संसार हमारी[13] बाड़ी।
गुर परसादै[14] भिष्या पाइबा[15], अंतिकालि[16] न होइगी[17] भारी १०८

औह (ब्रह्मरंध्र) ने पानी (रेतस्) को सोख लिया। चन्द्रमा (इड़ा नाड़ी और सूर्य (पिंगला) दोनों को अपने घर (सुषुम्णा) में रक्खा, निमज्जित कर दिया। ऐसा (जो जोगी करे) वह स्वयं अलक्ष्य और विज्ञानी (ब्रह्म) हो जाता है। बिनांणीं-विज्ञानी ॥ १०५ ॥

कौन हमारे शृंगीनाद बजावै। शृंगी नाद बजाने से तो श्वास टूटने लगता है। (और इसकी आवश्यकता भी क्या है जब हमारे आभ्यंतर में अनाहत नाद निरंतर बजता रहता है) शृंगीनाद बजे न बजे, अनाहत नाद बजता रहे। श्री गोरखनाथ ऐसा सिद्ध संकेत कहते हैं ॥ १०६ ॥

गुणवानो ! सुनो, बुद्धिमानो ! सुनो, अनंत सिद्धों की वाणी सुनो। सद्गुरु के मिलने और उन्हें सिर झुकाने से ('आदेश' करने से) यह जगत-रात्रि जागते जागते (ज्ञानमय अवस्था में) बीत जाती है। जीव अज्ञान की नींद नहीं सोता ॥ १०७ ॥

भिक्षा हमारी कामधेनु है, उसी से हमारी पूर्ण तृप्ति हो जाती है। और संसार भर हमारी खेती है, हम किसी एक जगह से बंधे नहीं रहते। (किंतु भिक्षा भी स्वयं अपने निमित्त नहीं मांगी जाती, अन्यथा योग भी माँगने-

---

१. (ग), (घ) बाहै। २. (ख) कुण; (ग) कोण; (घ) कौण ३. (क) बजाये। ४. (ग) पवनां; (घ) पौण। ५. (घ) श्री गोषरनाथ। ६. (क) गुंणवंता। ७ (ख) नीवावत। ८. (ख) मीलीया; (ग), (घ) मिलीया। ९. (ग) जागति। १०. (क) भिक्ष्या। ११. (ग), (घ) हमारै। १२. (ख), (ग) कामधेन। १३. (ख) हमारै। १४. (ख) गुर परसादी; (ग), (घ) गुर कै परचै। १५. (ग), (घ) षायगा। १६. (क) अंतकाल; (ख), (ग) अंतिकाल कवहु; (घ) अंतिकालि कबहू। १७. (घ) होयगी।

बड़े बड़े[1] कूले[2] मोटे मोटे पेट, नहीं रे पूता गुरू सौं[3] भेट।
षड़ षड़ काया निरमल नेत[4], भई[5] रे पूता गुरू सौं[3] भेट ॥ १०९ ॥
निरति न सुरति[6] जोगं न भोगं[7], जुरा मरण नहीं तहाँ रोगं[7]।
गोरष बोलैं एकंकार, नहि तहँ बाचा ओअंकार[8] ॥ ११० ॥

खाने के पाखंडों में से एक हो जाय। भिक्षा में जो कुछ प्राप्त होता है वह भी गुरु का है और उन्हीं के अर्पण होता है।) गुरु के प्रसाद स्वरूप भिक्षा-भोजन करने से अंतकाल में कर्मों का बोझ नहीं सतावेगा ॥ १०८ ॥

जिनके बड़े बड़े कूल्हे और मोटी तोंद होती है (उन्हें योग की युक्ति नहीं आती। समझना चाहिए कि उन्हें) गुरू से भेंट नहीं हुई है। (या तो उन्हें अच्छा योगी गुरु मिला ही नहीं है अथवा गुरु के शरीर के दर्शन होने पर भी उसकी वास्तविकता को उन्होंने नहीं पहचाना है, उनकी शिक्षा से लाभ नहीं उठा सकता या उसके अधिकारी ही नहीं हुए हैं) (यदि साधक का) शरीर खड़ खड़ (चरबी के बोझ से मुक्त है और उसके नेत (नासा रंध्र) निर्मल अथवा उसकी आँखें (नेत्र) निर्मल, कांतिमय हैं तो (समझना चाहिए कि उसकी) गुरु से भेंट हो गयी है; नेत=(१) मंथन की डोरी। इसी से नेती क्रिया का नाम बना है। इस क्रिया में नासारंध्रों में डोरी (नेत) का उपयोग होता है, इस लिए साहचर्य से नासारंध्र अर्थ भी सिद्ध होता है। (२) नेत्र, आँख ॥ १०६ ॥

(परमानुभव पद में) न निरति है, न सुरति है; न योग है, न भोग

---

१. (ग) वड़ै बड़ै। २. (ख), (ग), (घ) कूला। यह सबदी; (ग), (घ) में कुछ अंतर के साथ है; (ग) में इस प्रकार है—

वड़ै वड़ै कूला असथूल, जोग जुगति का न जाणै मूल।
खाया भात फुल्या या पेट, नहीं रे पूता गुर स्यौं भेट ॥

(घ) में यह भी है और इसके अतिक्ति—'पड़ षड़ काया' आदि दो चरण भी इसी सबदी के साथ दिये हैं जिससे उसके ६ चरण हो गये हैं। ३. (ख) स्यूं; (ग) स्यौं; (घ) सूं। ४. (ख) नेत्र। ५. (ख) होइ रै; (घ) हुई रे। ६. (क) नृती न सुरती; (ख) वक्ता न सुरता निरति न सुरति; (घ) निरति सुरत्य। ७. (ग), (घ) जोग नहीं भोग...रोग। ८. (क), (ग), (घ) ऊंकार; (ख) नहीं तहां आचार विचार ओउंकार।

उदै न अस्त[1] राति न[2] दिन, सरबे[3] सचराचर भाव न भिन[4]।
सोई[5] निरंजन डाल न मूल, सर्बे[6] व्यापीक सुषम[7] न अस्थूल[8] ॥१११॥
ब्रह्मांड[9] फूटिवा नगर सब लूटिवा, कोई न जांणबा[10] भेवं।
बदंत गोरषनाथ प्यंड दर[11] जब घेरिबा[12], तब[13] पकड़िबा[14] पंच देवं ॥ ११२ ॥
अहंकार तुटिबा[15] निराकार फूटिबा[16], सोषीला[17] गंग जमन[18] का पांनीं।
चंद सूरज[19] दोऊ सनमुषि[20] राषीला[21], कहो हो[22] अवधू तहां[23] की सहिनांणी[24] ॥

न वहाँ जरा (बुढ़ापा), न मृत्यु है और न रोग; न वहाँ वाणी है न ऊँकार। गोरख कहते हैं कि वहाँ तो केवल एकाकार (कैवल्य) अवस्था है, (किसी प्रकार का भेदभाव नहीं।) ॥ ११० ॥

(यहाँ) न उदय है न अस्त, न रात न दिन, सारी चराचरमयी सृष्टि में कोई भिन्नता का भाव नहीं अथवा (पदच्छेद-भेद से सर्वेस चराचर) सर्वेश और (उनकी) चर और अचर सृष्टि में कोई भेद भाव नहीं है। वही शुद्ध निरंजन ब्रह्म रह जाता है, मूल और शाखा, (अधिष्ठान और नामरूपोपाधि का) भेद नहीं रह जाता। वही सर्वव्यापी रह जाता है जो न सूक्ष्म है न स्थूल ॥ १११ ॥

(ब्रह्मरंध्र में कुंडलिनी प्रवेश से) ब्रह्मांड फोड़ना चाहिए और शून्य रूप नगर को लूटना चाहिए, जिसका भेद कोई नहीं जानेगा। गोरषनाथ कहते हैं कि जब शरीर रूपी घर घेर लिया जाता है तभी पंच देव (पंचेंद्रिय अथवा उनका स्वामी मन) पकड़ा जा सकता है ॥ ११२ ॥

अहंकार तोड़ना चाहिए, निराकार आत्मा को प्रस्फुटित करना चाहिए।

---

१. (ख) असत। २. (ग), (घ) नहीं। ३. (ख) (ग), (घ) सरब। ४. (क) भ्यंन्य; (ख), (घ) भिनि; (ग) भ्यंनि। ५. (ख) सो। ६. (घ) सकल। ७. (क) काया न; (ख) काया सुषम; (ग), (घ) सुषमना। ८. (ख) सथूल। ९. (क) ब्रह्मांड सब; (घ) ब्रह्मंड। १०. (ग) जाणवा। ११. (क) पंड दर; (ग), (घ) पर दल; (ख) जब प्यंड दरि। १२. (ख) भेटिवा; (ग) घेरिब; (घ) घेरिबा। १३. (क), (ग) तहाँ; (घ) में 'तहाँ' 'तब' कुछ नहीं है। १४. (घ) पड़िबा। १५. (ख) टूटिवा। १६. (ग), (घ) लूटिवा। १७. (ख) सोषिया। १८. (ग) जमुन। १९. (ग) सूरज। २०. (घ) समिकरि; (क), (ग) सनमुष। २१. (ख), (ग), (घ) रषिवा। २२. (घ) कहौ हौ; (ग) कहे हौ। २३. (घ) कहाँ। २४. (क) नीसाणीं; (ग), (घ) सहनांणीं।

चेता रे[1] चेतिबा आपा न रेतिबा, पंच की मेटिबा आसा।
बदंत गोरष[2] सति ते सूरिवां[3] उनमनि[4] मन मैं बासा ॥११४॥
सिध क[5] संकेत बूझिलै सूरा, गगन[6] अरथांनि[7] बाइलै[8] तूरा।
मींभ[9] के मारग रोपीलै[10] भांणं, उलट्यां फूल कली[11] मैं आंणं ॥११५॥

(जैसे भू-पृष्ठ को तोड़ कर अंकुर बाहर निकलता है उसी प्रकार अहंकार को तोड़कर आत्मा प्रस्फुटित होती है।) जहाँ गंगा (ईड़ा)-जमुना (पिंगला) का पानी सोख लिया गया (अर्थात् दोनों का प्रभाव मिटा कर सुषुम्ना में मिला लिया गया) तथा (सहस्रारस्थ) चन्द्रमा और (मूलाधारस्थ) सूर्य दोनों का विरोधी स्वभाव मिटा कर सम्मुख कर दिया गया (जिससे अमृत का स्राव नष्ट नहीं होने पाया), हे अवधूत वहाँ की पहचान अथवा लक्षण बताओ। सहनांणीं-संधान, खोज, पहचान ॥ ११३ ॥

हे चेतन (जीव)! सचेत रहना चाहिए। आत्मा को रेतना नहीं चाहिए दुःख नहीं देना चाहिए। पंचेंद्रियों से मिलने वाले झूठे सुख की आशा मिटा देनी चाहिए। गोरखनाथ कहते हैं कि वे ही सच्चे शूरवीर हैं, जो उन्मनावस्था में लीन मन में निवास करते हैं ॥ ११४ ॥

हे शूर (साधक)! सिद्ध के संकेत (सांकेतिक उपदेश) को समझो। शून्य-स्थान में तुरी (अनाहत नाद) बजाओ। चन्द्र के विरोधी भानु को मीन के मार्ग पर लगाओ अर्थात् योग युक्ति से चन्द्रमा के सम्मुख करो जिससे अमृत का रसास्वादन हो सके। (मछली नदी की धारा के विरुद्ध चल लेती है, किन्तु मछली किस मार्ग से गयी है, पानी के नीचे इस बात का पता कोई नहीं लगा सकता। योग का मार्ग भी इसी प्रकार गुप्त रहता है। इसीलिये वह 'मीन का मार्ग' कहाता है।) इससे फूल उलट कर फिर कली में बदल जायगा, वृद्ध को बाल स्वरूप प्राप्त हो जायगा ॥ ११५ ॥

---

१. (घ) चेति रे; (ख) चितरा; (ग) चंता रे। २. (ख), (ग), (घ) गोरपनाथ। ३. (क) सूरिमां। ४. (क) उनमन। ५. (ख) सिधि, (ग) संघ (घ १)। ६. (ख) गगनि; (ग), (घ) गगन। ७. (क) अरस्थानें; ८. (ग) वजाइल। (घ) वजायलें। ९. (क), (ग) मारग। १० (क) रोपीला। ११. (ख) कवल।

बास बासंत[1] तहां प्रगट्या षेलं। द्वादस अंगुल[2] गगन[3] घरि मेलं[4]।
बदंत गोरख[5] पूतां होइबा[6] चिराई। न पडंत[7] काया न जंम घरि जाई॥११६
अंन[8] का मास[9] अनिल[10] का हाड तत[11] का बन्द भषिबा बाई[12]
बदंत गोरषनाथ पूता होइबा चिराई[13] न पड़ै[14] घट न जंमघरि जाई॥११७
ॐ[15] लोहा पीर। तांबा[16] तकबीर।
रूपा महंमद सोना षुदाई[17]। दुहूँ[18] बिचि दुनियां[19] गोता पाई[20]।
हम तो निरालंभ बैठे देखत रहैं ऐसा एक सुपन बाबा रतनहाजी कहै॥११८

जहाँ (जो) ब्रह्म की सुबास से सुबासित रहता है अर्थात् ब्रह्म की व्यापकता जिसे अनुभव हो जाती है, वहाँ (उसके लिए) ज्योति दर्शन का खेल प्रकट हो जाता है। द्वादश अंगुल (अर्थात् प्राण वायु, योगियों का यह कथन है कि प्राण वायु का निवास नासिका के बाहर भी बारह अंगुल तक है। इसी से द्वादश अंगुल से प्राण-वायु का अर्थ लिया जाता है) को शून्य में प्रविष्ठ करने से चिरायु प्राप्त होती है, शरीरपात नहीं होता और यम के प्रभाव में व्यक्ति नहीं जाता अर्थात् मरण नहीं होता॥११६॥

अन्न से बने मांस को वायु से बनी हड्डी पर-तत्त्व (ज्ञान और अमृतपान) का बंध देकर वायु को भक्षण करना चाहिए, गोरखनाथ कहते हैं कि हे पुत्र! (शिष्य!) इससे शरीर-पात नहीं होगा, यम का प्रभाव नहीं रहेगा॥११७॥

गुरु लोहे के समान है, उसकी बताई हुई योग-युक्ति (तद्बीर) ताँबे के समान, 'मुहम्मद' चाँदी के समान और 'खुदा' सोने के समान। लोहे

---

१. (ख) बसंता; (ग), (घ) बसंत। २. (ख) दुआदस आगुल। ३. (ख) गगनि। ४. (ख) मेलि; (ग) (षेल) मेला; (घ) (पेल) मेल। ५. (ख), (ग), (घ) गोरखनाथ। ६. (घ) होयबा। ७. (ख), (ग), (घ) पड़ै। ८. (ख) आन। ९. (क) रूड़। १०. (क), (ग), (घ) अनील। ११. (ग), (घ) तन। १२. 'बाई' के पहले (ख), (ग), (घ) में 'अन फेरिवा' अधिक है। १३. (ग) चिरायु। १४. (ख) न प्यंडै, (क) पड़ै; (ग), (घ) पुरि। १५. (ख), (ग), (घ) में 'ॐ' नहीं है। १६. (ख) पीता तबा। १७. (ग) षुदा;(घ) षुदाय। १८. (ख), (ग) दहूँ; (घ) दहूँ। १९. (ख) दुनिया; (ग), (घ) दुनीयां। २०. (ख), (ग), (घ) में अंतिम दो चरण इस प्रकार हैं—

कहणि[1] सुहेली रहणि दुहेली कहणि[2] रहणि बिन[3] थोथी[4] ।
पढ्या गुंण्या सूवा बिलाई[5] षाया[6] पंडित के हाथि रह गई पोथी[7]॥११६॥
कहणि[8] सुहेली रहणि[8] दुहेली[9] बिन[10] षायां[11] गुड़ मींठा ।
खाई[12] हींग[13] कपूर बषांणै गोरष[14] कहै सब[15] झूठा ॥१२०॥

और ताँबे से सब का काम चलता है किंतु सोना और चाँदी केवल अलंकार की वस्तुएँ हैं, नित्य के व्यवहार में उनकी आवश्यकता नहीं। वैसे ही मुहम्मद और खुदा अर्थात् ईश्वर और अवतार भी हैं। इन दोनों अर्थात् मुहम्मद और खुदा, (ईश्वर और अवतार) के बीच दुनिया गोता खा रही है। किन्तु हम (जोगी) निराले या निराधार, बिना किसी का आसरा लिये हुए बैठे देखते रहते हैं। ऐसी एक उक्ति (सखुन) बाबा रतननाथ हाजी ने कही है ॥११८॥

कहना आसान होता है किन्तु उस कहने के अनुसार रहना, कठिन, और बिना रहनी के कहना किसी काम का नहीं, खोखला या छूछा है। तोता पढ़-गुन कर कुछ शब्दों को दुहराना भर सीख सकता है, उनके अनुसार काम नहीं कर सकता, उनका अर्थ नहीं समझता। ऐसे ही अनुभवहीन पढ़े गुने पंडित के हाथ में भी केवल पोथी रह जाती है, सार वस्तु उसके हाथ नहीं आती और परिणामतः वह काल का ग्रास हो जाता है, सुहेली, सुलभ, सुलह सुहेली। दुहेली, दुर्लभ, दुलह, दुहेली ॥११९॥

कहना आसान है और रहना दुर्लभ, बिना गुड़ खाये मुंह से 'मीठा'

बाबा रतन हाजी ऐसी (सै) कहै। हम तौ इ (य) न तैं न्यारा रहै ॥

यह सबदी प्रायः सब प्रतियों में मिलती है परन्तु यह स्पष्ट ही बाबा रतननाथ की है गोरख की नहीं।

१. (ग) कहिणि; (घ) कहिण। २. (क) कहण; (ग) रहण। (घ) बिण; (ख) वीणि। ४. (ख), (ग), (घ) में 'गुण्यां' नहीं। ५. (ग) बिरलाउ। ६. (ख) सुवेटा मीनी ले गई। ७. (क) थोथा···रह गया पोथा। ८. (ख) कथणी···करणी; (ग) कहिणी···रहिणी। ९. (घ) दुहेला। १०. (ख), (ग) (घ) बिण। ११ (क) पायें। १२. (ख) पावैं। १३. (ख) में कपूर के पहले 'अर' है। १४. (ग), (घ) नाथ। १५. (ख), (ग), (घ) ते।

मूरिष सभा न बैसिबा[1] अवधू[2] पंडित सौं[3] न करिबा[4] बादं ।
राजा संग्रांमे[5] झूझ न करबा हेलै[6] न षोइबा[7] नादं ॥ १२१ ॥
हिरदा का भाव हाथ मैं[8] जाणिये[9] यहु[10] कलि आई षोटी ।
बदंत गोरष[11] सुणौ रे अवधू करवै होइ[12] सु[13] निकसै टोटी[14] ॥ १२० ॥
जल कै संजमि[15] अटल अकास[16] अन कै संजमि[15] जोति प्रकास ।
पवनां[17] संजमि[15] लागै बंद[18] ब्यंद[19] कै संजमि[15] थिरह्वै[20] कंद[18] ॥१२३॥

शब्द का उच्चारण मात्र कर देने से मीठे स्वाद का अनुभव नहीं प्राप्त हो सकता, ऐसा अनुभवहीन व्यक्ति धोखे में पड़ा रह जाता है। उसको वास्तविकता की पहचान नहीं होती। खाता तो वह हींग है किन्तु कहता है कपूर। गोरख कहता है कि यह सब झूठा अनुभव है॥ १२० ॥

हे अवधूत, मूर्खों की सभा में नहीं बैठना चाहिए, पंडित से शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिये (उसका ज्ञानगर्व दूसरे प्रकार की मूर्खता है, वास्तविक ज्ञान उसे नहीं होता। अतएव शास्त्रार्थ में पड़ना व्यर्थ समय को नष्ट करना है।) राजा से लड़ाई नहीं लड़नी चाहिए। (राजा उस क्षेत्र में शूर नहीं है जिस क्षेत्र में साधक को शूर होना चाहिए। राजा के पास बाहुबल है किन्तु साधक के पास आत्मबल होना चाहिए। इसलिए दोनों में स्पर्धा का भाव हो नहीं सकता।) लापरवाही से नाद को खोना नहीं चाहिए॥ १२१ ॥

यह कलि बुरा युग है। (इसमें लोगों के भाव अच्छे नहीं हैं, यह उनके कर्मों से पता चलता है। क्योंकि) हृदय में जैसे भाव होते हैं हाथ से वैसे ही काम भी होते हैं। गोरखनाथ कहते हैं कि हे अवधूत जो कुछ गडुवे में होगा, वही तो टोंटी से बाहर निकलेगा। करवै, करके (सं०), गडुवे में ॥१२२॥

जल के संयम से आकाश अटल होता है; ब्रह्मरंध्र में दृढ़ स्थिति होती है।

---

१. (ख) बैसावा (? बैसीबा)। २. 'अवधू के पहले (ग) में 'र' और (घ) में 'रे' है। ३. (ख). स्यूं; (ग) स्यौं; (घ) सूं। ४. (क) करवा। ५. (ग), (घ) सेती। ६. (ख) हलै। ७. (घ) षोयबा। ८. (ग), (घ) हाथां। ९. (ग), (घ) परषीयै। १०. (ग), (घ) या। ११. (ग), (घ) गोरषनाथ। १२. (घ) होय। १३. (ग), (घ) स। १४. (ग), टूटी (?) १५. (ग), (घ) संजम। १६. (ख) आकास। १७. (ख), (ग), (घ) पवन कै। १८.(क), (ख), (ग) बंध ‥ कंध। १९. (घ) विंद। २०. (ख) थीरि होयं; (ग) थिर होई।

सवद बिंदौ[1] रे[2] अवधू सबद बिंदौ[1] थांन मांन सब धंधा[3] ।
आतमां मधे[4] प्रमातमां[5] दीसै[6] ज्यौं[7] जल मधे[4] चंदा ॥ १२४ ॥
आसण[8] दिढ[9] अहार[10] दिढ[9] जे न्यंद्रा[11] दिढ[9] होई ।
गोरष[12] कहै सुणौं रे पूता मरै न वूढा होई ॥ १२५ ॥
कोई न्यंदै[13] कोई ब्यंदै[13] कोई करै हमारा आसा ।
गोरप कहै सुणौं[14] रे अवधू[15] यहु[16] पंथ षरा[17] उदासा ॥१२६॥

अन्न के संयम से ज्योति प्रकाशमान होती है, पवन के संयम से बंद लगता है अर्थात् नवद्वारे बंद हो जाते हैं और विंदु (शुक्र) के संयम से शरीर स्थिर हो जाता है। कंद, स्कंक। कंद के माने शिव-लिंग के समान वह अंश भी हो सकता है जिसके चारों ओर कुंडलिनी लिपटी बतायी जाती है ॥ १२३ ॥

हे अवधूत ? शब्द को प्राप्त करो, शब्द को प्राप्त करो। स्थान (पद अथवा तीर्थ) को मान देना आदि क्रियाएँ सब धंधा हैं। (शब्द की प्राप्ति से तुम जानोगे कि) आत्मा में परमात्मा वैसे ही दिखाई देता है जैसे जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब ॥१२४॥

गोरख का वचन है कि हे शिष्यो ! आसन, भोजन और निद्रा के नियमों में दृढ़ होने से योगी अजर-अमर हो जाता है (योगी का आसन अविचल, आहार अल्प और निद्रा सर्वथा क्षीण होनी चाहिए।) ॥ १२५ ॥

कोई हमारी निन्दा करता है, कोई वंदना करता है, कोई हम से (वरदान इत्यादि प्राप्त करने की) आशा करता है। किन्तु गोरख कहते हैं कि हे अवधूत यह मार्ग (जिस पर हम चल रहे हैं) पूर्ण विरक्ति का है, हम निन्दा प्रशंसा सब से उदासीन रहते हैं, किसी से सम्पर्क नहीं रखते ॥ १२६ ॥

---

१. (ख), (ग), (घ) वंदौ; (ख) वंदौ ·· व्यंदो ; २. (क) में 'रे' नहीं है। ३. (ख) धंग्धा। ४. (ख) मधे···मधे; (ग) मंधे मंधे। ५. (घ) प्रमातमा। ६. (ख) देषौ। ७. (ख), (घ) ज्यूं। ८. (ग) आसणि। ९. (ख) दिढि। १०. (ख) आहर। ११. (क) नींद्रा; (ख) नीद्रा। १२. तीसरा चरण 'ख' में यों है, 'गोरख कहै बालका' और (ग), (घ) में यों 'नाथ कहै रे वालका'। १३. (ख) न्यंदे···व्यंदे; (ग) नींदे···विंदे; (घ) निंदे···विंदे। १४. (घ) सुणी; (ग) सुणां। १५. (ख) पूता। १६. (ख) यौह (ग) येहूं। १७. (ख) परो।

इक[1] लष सींगणि नव[2] लष बांन[3] । वेध्या मींन[4] गगन अस्थांन ।
वेध्या मींन गगन कै साथ । सति सति[5] भाषंत श्रीगोरषनाथ ॥१२७॥
तूटी[6] डोरी रस कस बहै । उनमनि[7] लागा[8] अस्थिर रहै ।
उनमनि[7] लागा होइ अनंद । तूटी डोरीं बिनसै[9] कंद ॥१२८॥
सबद बिन्दौ[10] अवधू सबद बिन्दौ[10] सबदे[11] सीझंत[12] काया ।
निनांणवै कोड़ि[13] राजा मस्तक मुडाइले[14] परजा का अंत न पाया ॥१२९॥
षरतर पवनां रहै निरंतरि[15] । महारस सीझै काया अभिअंतरि[15] ।
गोरख कहै अम्हे[16] चंचल ग्रहिया । सिव सक्ती[17] ले निज घरि रहिया ॥

(योग की साधना) एक लाख शिंजिनियों (प्रत्यंचाओं) अर्थात् धनुषों (से) नौ लाख बाण छूटने के समान है, उससे ब्रह्मरंध्रस्थ मीन (मछली, लक्ष्य तत्त्व) निश्चय बिंध गया। गोरखनाथ सत्य वचन कहते हैं कि तत्त्व ज्ञान के साथ ब्रह्मरंध्र भी बेध दिया गया है अर्थात् थोड़े समय के लिए ज्ञान ही नहीं हो गया, उसमें स्थिरता भी आ गई है। सींगणि, शिंजिनी, प्रत्यंचा ॥ १२७ ॥

डोरी (समाधि अथवा लीनावस्था) के टूट जाने से सार वस्तु बह जाती है, नष्ट हो जाती है। किन्तु उन्मनी समाधि के लगने से स्थिरता आती है और आनन्द होता है, किन्तु समाधि के टूटने से शरीर नष्ट हो जाता है ॥ १२८ ॥

हे अवधूत, शब्द को प्राप्त करो, शब्द को प्राप्त करो। शब्द से शरीर सिद्ध होता है, (इसी शब्द को प्राप्त करने के लिए) निनाणवे करोड़ राजा चेले हो गये और प्रजा में से कितने हुए इसका तो अंत ही नहीं मिलता ॥ १२९ ॥

(जब) तीक्ष्ण पवन निरन्तर रहता है, (उसकी चंचलता छूट जाती है),

---

१. (ग) येक; (घ) एक। २. (घ) नौ। ३. भांन। ४. (ग) गगनि। ५. (क) सत्य सत्य। ६. (क) टूटी। ७. (क) उनमन। ८. (क) लागी। ९. (ग) विणसै। १०. (क) विंदौ⋯ब्यंदौ; (ख) बदौरे⋯वंदौ; (ग), (घ) बंदौ रे⋯वदौ। ११, (ख), (ग) सबद। १२. (ख) सीझत। १३. (ग) कौडि। १४. (ख) में 'मस्तक मुडाइले' के स्थान पर 'राज तजेवा' और (ग), (घ) में 'सीधा'। १५. (क) निरन्तर⋯अभिअन्तर। १६. (क) हमे; (ग) अमै। १७. (ग), (घ) सक्ति।

पेट कि अगनि बिवरजित[1] दिष्टि[2] की अगनि[3] षाया।
ग्यांन गुरू का आगैं ही[4] होता पणि[5] बिरलै[6] अवधू पाया ॥१३१॥
अगम[7] अगोचर रहै[8] निहकांम। भंवर[9] गुफा नांहीं[10] बिसराम[11]।
जुगति[12] न जांणैं[13] जागैं राति। मन काहू कै न आवै हाथि ॥१३२॥
नव[14] नाड़ी बहोतरि[15] कोठा। ए[16] अष्टांग[17] सब झूठा।
कूंची[18] ताली[19] सुषमन करै। उलटि जिभ्या[20] लै तालू[21] धरै ॥१३३॥

तब शरीर के भीतर महारस सिद्ध होता है। गोरख कहते हैं कि हमने चंचल (मन) को पकड़ लिया है और शिव-शक्ति का मेल करके अपने घर में रहने लगे अर्थात् निज स्वरूप में पहुँच गये ॥ १३० ॥

(मैंने) पेट की अग्नि (जठराग्नि) से खाना वर्जित कर आँख की अग्नि से खाया, (ज्ञान दृष्टि से माया का भक्षण किया) यह गुरु का ज्ञान पहले ही से था (होता), किन्तु किसी विरले ही अवधूत ने उसे प्राप्त किया ॥ १३१ ॥

अगम अगोचर (परमब्रह्म को प्राप्त करने के लिए) निष्काम रहना चाहिए। (किन्तु लोग) अमर गुफा (ब्रह्मरंध्र) में तो निवास करते नहीं, योग की युक्ति तो जानते नहीं, केवल रात में जागते रहते हैं। (इसीलिए) मन किसी के हाथ नहीं आता, वश में नहीं होता ॥ १३२ ॥

शरीर में इतनी नाड़ियाँ, इतने कोठे हैं, आदि-आदि अष्टांग योग का सब वाह्य ज्ञान झूठा है। (वास्तविक केवल आभ्यंतर अनुभूति है।) सुषुम्ना के द्वारा ताली पर कुंजी करे अर्थात् ब्रह्मरंध्र का वेधन करे और जिह्वा को उलट कर तालु-मूल में रक्खे (जिससे सहस्रारस्थित चंद्र से स्रवित होने वाले अमृत का आस्वादन होगा) ॥ १३३ ॥

---

१. (ग) विरजित। २. (क) दृष्टि। ३. (ग) अगनि जु; (घ) अगनी जुग। ४. (ग), (घ) आगे। ५. (क) पनि (ग), (घ) में 'पणि' नहीं है, क्रमशः 'कोई', 'कोऊ' है। ६, (ग) विरला। ७. (क) अगम। ८. (ग), (घ) है। ९. भ्रम। १०. (ख) नहीं। ११. (क) विश्राम। १२. (ख) जोग जुगति। १३. (ग) जाने। १४. (ग), (घ) नौ। १५. (क) वहतर; (ख), (घ) वहोतरि। १६. (ग), ये। १७. (ग) अष्टांग योग; (ख) अष्ठग योग; (घ) अष्टांग जोग। १८. (ख), (ग), (घ) ताला। १९. (ख) सुषमण। २० (क) जिहा; (ख), (उलटी) जीहा। २१. (ख) तालवै।

पंडित ग्यांन मरौ क्या झूझि। औरै[1] लेहु[2] परमपद बूझि।
आसण[3] पवन उपद्रह[4] करैं। निसिदिन आरम्भ पचि-पचि मरैं ॥१३४॥
उनमन जोगी[5] दसवैं द्वार[6]। नाद व्यंद[7] ले धूंधूंकार।
दसवें द्वारे देइ कपाट। गोरख षोजी औरै बाट ॥१३५॥
आरम्भ[9] जोगी कथीला[10] एकसार[11]। षिण षिण[12] जोगी करै सरीर[13] विचार
तलवल[14] व्यंद धरिबा[15] एक तोल[16]। तब जांणिबा जोगीआरंभकाबोल१३६

हे खंडित ज्ञानियो ! तुम बाहरी बातों से युद्ध करते हुए क्यों पच मरते हो। (इन से तब तक कुछ लाभ नहीं होगा जब तक तुम वास्तविक आभ्यन्तर ज्ञान अर्थात् परमपद की ओर न जाओगे) वह परमपद इन से भिन्न है, (इस सूक्ष्म ज्ञान के बिना) आसन और प्राणायाम (पवन का साधन) उपद्रव किया करते हैं। रात दिन पच मरने पर भी इनके द्वारा आरंम्भ अवस्था से आगे बढ़ा नहीं जा सकता ॥ १३४ ॥

योगी दशमद्वार (ब्रह्मरंध्र) में समाधिस्थ होता है और नाद तथा बिंदु के मेल से धूधूकार अर्थात् महाशब्द अनाहतनाद को सुनता है किन्तु गोरखनाथ ने दशमद्वार को भी बन्द कर और ही बाट से परब्रह्म की खोज की है। (केवल बाह्य बातों में न पड़ सूक्ष्म विचार की—चिंतन की आवश्यकता की ओर संकेत किया है) ॥ १३५ ॥

आरम्भ योगी वह कहलाता है, जो एकसार अर्थात् निश्चल एक रस रहे और क्षण क्षण शरीर पर विचार करता रहे और शरीर में पूरे (सिरे तक) भरे हुए शुक्र की समत्व (एक तोल) रूप से रक्षा करे। तब समझना चाहिए कि योगी पर घट अवस्था के लिए कहे गये वचन अर्थात् लक्षण घट जाते हैं ॥ १३६ ॥

---

१. (ग), (घ) अजहूँ। २. (ग) लेहूँ; (घ) लेह। ३. (ग) आसन। ४. (ग) उपद्रहि। ५. (ग) उनमनि योगी। ६. (ग) द्वारि। ७. (घ) बिन्द। ८. (क) दसैं। ६. (ग) अरंभी; (घ) आरंभी। १०. (ग) कथिलौ। ११. (ग) बेकसार; (घ) यकसार। १२. (ग) षिणि षिण। १३. (ग), (घ) सरीर का। १४. (ग) तलतल। १५. (ग) धरिबाई। १६ (क) तोलै बोलै।

घट हीं रहिबा मन न जाई[1] दूर । अह निस पीवै जोगी वारुणीं[2] सूर ।
स्वाद बिस्वाद बाई[3] काल छींन[4] । तब जांनिबा जोगी घट का लछींन १३७
परचय[5] जोगी उनमन षेला[6] । अहनिसि[7] इंछया[8] करै देवता स्यूं[9] मेला ।
षिन षिन[10] जोगी नांनां रूप । तब जांनिबा[11] जोगी परचय[5] सरूप ॥१३८॥
निसपती जोगी जांनिबा[11] कैसा । अगनी पांणीं लोहा मांनैं[12] जैसा ।
राजा परजा सांम करि देष । तब जांनिबा[11] जोगी निसपतिका भेष ॥१३९॥

(जब योगी) अपने ही शरीर में रहता हो, मन दूर न जाता हो, तब वह शूर (योगी) रात दिन (अमर) वारुणी का पान करता है; सुख (स्वाद), दुःख (विस्वाद) तथा काल, (केवल कुम्भक के सिद्ध होने से) वायु के द्वारा क्षीण हो गये हों, तब जानना चाहिए कि जोगी में 'घट' दशा के लक्षण आ गये हैं ॥ १३७ ॥

परिचय-जोगी वह है जो उन्मन समाधि में क्रीड़ा करता है, लीन रहता है। रात दिन इच्छानुसार देवता (परब्रह्म) का समागम करता रहता है और क्षण क्षण में (अणिमादि सिद्धियों के द्वारा इच्छानुसार) नानारूप धारण कर सकता है, तब जानना चाहिए कि योगी को स्वरूप का परिचय हो गया है ॥ १३८ ॥

निष्पत्ति-प्राप्त योगी की क्या पहचान है ? अग्नि और पानी में जैसे लोहा शुद्ध होता है उसी प्रकार जब नाना कठोर साधनाओं के द्वारा योगी शुद्ध हो जाय, (लोहा शुद्ध करने के लिए कई बार आग में गरम करके ठंडे पानी में बुझाया जाता है) तथा राजा प्रजा में जब योगी की समदृष्टि हो जाय, तब समझना चाहिए कि उसे निष्पत्ति का वेश प्राप्त हुआ है ॥ १३९ ॥

---

१. (घ) जायबा । २. (घ) वारुणी । ३. (घ) वाय । ४. (घ) लषिण; (ग) में पिछली सबदी का अंतिम एक और इस सबदी के प्रथम तीन चरण नहीं हैं । ५. (ग), (घ) परचै । ६. (ग), (घ) कला । ७. (घ) यह निस; (क) अहनिस । ८. (घ) यंछया । ९. (ग) स्यौं; (घ) सूं । १०. (ग), (घ) षिण षिण । ११. (ग), (घ) जांणिबा । १२. (ग), (घ) न मानें ।

378

अवधू[1] षारै षिरै[2] षाटै झरै[2] मीठै उपजै[2] रोगं[5] ।
गोरष कहै सुणौ[3] रे अवधू अंनैं[4] पांणीं जोगं[5] ॥१४०॥
बजरी करतां[6] अमरी राषै अमरि करतां बाई ।
भोग करतां[6] जे[7] व्यंद[8] राषै ते गोरष का गुरभाई ॥१४१॥
भग मुषि व्यंद अगनि मुषिपारा । जो राषै सो गुरू हमारा ॥१४२॥
जिभ्या स्वाद[9] तत तन षोजै[10] हेला करै गुरू[11] बाचा ।
अगनि बिहूँणां बंध न लागै[12] ढलकि जाइ[13] रस काचा ॥१४३॥

नमकीन से शुक्र नष्ट होता है, खट्टे से झरता है । मीठे से रोग पैदा होता है । इसलिये गोरख कहते हैं कि हे अवधूत ! सुनो, योग केवल अन्न-पानी ही के व्यवहार से सिद्ध होता है । (खट्टे मीठे आदि स्वादों के पीछे योगी को नहीं जाना चाहिए ।) ॥ १४० ॥

वज्रोली करते हुए जो अमरोली की रक्षा करे, अमरोली करते हुए वायु की रक्षा करे, और भोग करते हुए बिंदु (रेतस्) की रक्षा करे, वह गोरख का भाई, अर्थात् गोरख के समकक्ष सिद्धिवाला है ॥ १४१ ॥

वज्रोली विधि के लिए देखिए—गोरक्ष पद्धति पृ० ४८-४९ ।

अमरोली के लिए—गोरक्ष पद्धति पृ० ५१ ।

योनि मुख में जो बिंदु की रक्षा करे तथा अग्नि के ऊपर पारे की रक्षा रे वह हमारा गुरु है । (जिस प्रकार अग्नि के ताप में पारद की रक्षा करना ठिन है, उसी प्रकार योनि-मुख में शुक्र की भी ।) योगी की यह कठिन रीक्षा है ॥ १४२ ॥

जो शरीर में जिह्वा स्वाद के रूप में तत्त्व की खोज करता है और इस

---

१. (ग), (घ) में 'अवधू' नहीं है । २. (क) षिरंत···झरंत···उपजंत । ३.) सुनो; (ग) सुणो ४. (ग), (घ) में यह चरण इस प्रकार है—अनपांणी ाधा (धौ) जोग । (ख) में अनर पानी सीझै जोग । ५. (ख), (ग), (घ) ···जोग । ६. (ख) करता । ७. (ख) जो । ८. (घ) बिंद । ९. (क) जिह्वा, ; (ग) जिभ्या स्वादी । १०. 'तन षोजै' के स्थान पर (ग) में 'नहीं दरसै; में 'न दरसै' । ११. (ग), (घ) गुर । १२. (ग) जागै । १३. (घ) जाय; जाई ।

अवधू ईश्वर[1] हमारै चेला भणींजै[2] मछींद्र बोलिये नाती।
निगुरी पिरथी परलै[3] जाती तार्थैं[4] हम[5] उलटी थापनां[6] थापी१४४
भरि भरि षाइ[7] ढरि ढरि[8] जाइ। जोग नहीं पूता[9] बड़ी बलाइ।
संजम होइ बाइ संग्रहौ। इस बिधि अकल पुरिस कौं गहौ[10]॥१४५॥

प्रकार गुरु-वचन की अवहेलना करता है उसके शरीर का रस योगाग्नि के अभाव के कारण बँधता नहीं है और कच्चा रह जाने के कारण ढलक (स्खलित हो) जाता है॥ १४३ ॥

हे अवधूत, (गोरख कहते हैं कि) शिव हमारे चेला हैं, मत्स्येंद्रनाथ नाती-चेला अर्थात् चेले का चेला। (हमें स्वयं गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि हम साक्षात् परमात्मा हैं। किंतु इस डर से कि हमारा अनुकरण कर अज्ञानी लोग बिना गुरु के ही योगी होने का दम न भरने लगें हमें मत्स्येन्द्रनाथ को गुरु बनाना पड़ा) जो वस्तुतः उलटी स्थापना अथवा क्रम है। यदि हम ऐसा न करते तो गुरुहीन पृथ्वी प्रलय में चली जाती अर्थात् नष्ट हो जाती॥१४४॥

पेट भर भर कर खाने से बिंदु क्षरित होता है। उस दशा में योग संभव नहीं होता बल्कि योग बला हो जाता है। संयम धारण कर वायु का संग्रह करना चाहिए उसे नष्ट होने से बचाना चाहिए और इस प्रकार कला रहित अर्थात् परिवर्तन विहीन परमात्मा (पुरुष) को ग्रहण (प्राप्त) करना चाहिए॥ १४५ ॥

---

१. (ग) ईश्वर; (ख) स्वौ (?) २. (ग) पुता बोलीयैं; (घ) पुत्र बोलीए। ३. (क) पृथ्वी प्रलै; (ग), (घ) पृथमी मरि मरि; (ख) परथमी मरि मरि। ४. (ख) ताते। ५. (ख) 'हम' नहीं है। ६. (क) उलटि सृष्टि करि। ७. (ख) खावै। ८. (ख), (ग), (घ) ढलि ढलि। ९. (ख) यौ; (ग), (घ) रे पूता। १०. (ग) (घ) में अंतिम दो चरण इस प्रकार हैं—ऊपरि भरै नीचैं भरै। ताको गोरष कांई करै। (ख) में इसके स्थान पर आगे वाली सबदी के पहले दो चरण हैं। इस प्रकार दो सबदियों के पहले दो दो चरणों के मेल से यह सबदी बनी है।

षांयें भी मरिये[1] अणषांयें[2] भी मरिये। गोरष कहै पूता[3] संजमि[4] हीं तरिये[5]
मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ सास[6] ॥१४६॥
पवन हीं जोग पवन हीं भोग। पवन हीं हरै छतीसौं[7] रोग।
या पवन कोई[8] जांणैं[9] भेव। सो आपैं[10] करता आपैं देव ॥१४७॥
व्यंद[11] हीं जोग व्यंद[11] हीं भोग। व्यंद[11] हीं हरै चौसठि रोग।
या विंद का कोई[8] जांणैं[12] भेव[13]। सो आपैं करता आपैं देव ॥१४८॥
साच[14] का सबद सोना[15] का रेख निगुरां कौं[16] चाणक[17] सगुरां[18] कौं उपदेश[19]
गुर[19] का मुंड्या गुंण मैं रहै। निगुरा भ्रमै औगुण गहै ॥ १४९ ॥

अघाकर खाना भी मौत है, बिल्कुल न खाना भी मौत है। गोरख कहते हैं कि हे पुत्र! (इन दोनों में संयम करने से ही मुक्ति हो सकती है, इसलिए मध्यम रहनी ही से रहना चाहिए जिससे मन निश्चल हो और श्वास स्थिर ॥ १४६ ॥

पवन ही योग है, पवन ही भोग है, पवन ही छत्तीसों (सभी) रोगों का हरण करता है। इस पवन का भेद विरले ही जानते हैं। जो बिरला जानता है) वह आप ही ब्रह्मा है, आप ही ब्रह्म ॥ १४७ ॥

बिंदु ही योग है, बिंदु ही भोग है, बिंदु ही चौंसठों रोगों का हरण करता है। इस बिंदु का भेद कोई विरला ही जानता है। (जो जानता है) वह आप ही ब्रह्मा है, आप ही ब्रह्म ॥ १४८ ॥

सत्य का शब्द सोने की रेखा के समान है, जो सब कसौटियों पर सच्चा

१. (ख) में 'भी मरिये' नहीं है; (ग), (घ) में 'भी' के स्थान पर 'ही' है; (ख) में भी दूसरे 'भी' के स्थान पर 'ही' है; (क) में दूसरे 'मरिये' के स्थान पर 'मरियें' है। २. (ग), (घ) बिण षाये। ३. (ख) सुणौ रे पूता; (ग) (घ) रे पूता। ४. (ख), (घ) संजम। ५. (घ) तिरीए। ६. (ख), (ग), (घ) में अंतिम दो चरण नहीं हैं; देखो पिछले पृष्ठ की टिप्पणी १०.। ७. (ख), (ग), (घ) चौंसठि। ८. (ग), (घ) में 'कोई' नहीं है। ९. (ख) जाणै; (ग), (घ) जावै। १०. (ख) आपै (ग), (घ) आप ही। ११. (घ) विंद। १२ (ग) जानैं १३. (ग) मैव; (ख) भेष। १४. (ग), (घ) सति; (ख) में यह सबदी नहीं है। १५. (क) सोनें। १६. (ग), (घ) कूं। १७. (ग) चोणिक; (घ) चाणिक। १८. (ग) सुंगरा; (घ) सुगरा। १९ अंतिम दो चरण (ग), (घ) में नहीं हैं।

अवधू बूझना[1] ते भूलना[1] नहीं[2] अनबूझ मग हारै।
सूंने जंगल भटकत फिरहीं, मारि लिहीं बटमारै ॥१५०॥
गुरु की बाचा षोजैं नांहीं, अहंकारी अहंकार करै।
षोजी जीवैं षोजि गुरू कौं, अहंकारी का प्यंड परै ॥१५१॥
[3]यंद्री का लड़[4]बड़ा जिभ्या का[5] फूहड़ा। गोरष[6] कहै ते पर्तषि[7] चूहड़ा।
काछ का जती मुष का सती। सो सत पुरुष उतमो कथी[8] ॥१५२॥

उतरता है, किन्तु इस सत्य शब्द का उपदेश उन्हीं को होता है जिन्होंने योग्य योगी को गुरु धारण किया है। गुरुहीनों को तो चालबाजी ही मिलती है, (क्योंकि उसे बिना गुरु के कुछ आ तो सकता नहीं है। इसलिए वह धोखा देकर अपने को सिद्ध प्रसिद्ध करना चाहता है) जिसे गुरु ने मूंड कर चेला बनाया है वह गुण ग्रहण करता है। जिसने गुरु की शरण नहीं ली वह भ्रम में पड़ जाता है और अवगुण धारण कर लेता है ॥ १४९ ॥

हे अवधूत! जिसने समझ लिया वह भूलता नहीं है। किन्तु जो समझते नहीं हैं, वे मार्ग भूल जाते हैं और सुने जंगल में भटकते फिरते हैं जहाँ उन्हें ठग मार डालते हैं ॥१५०॥

अहंकारी अहंकार से भरा हुआ गुरु मंत्र लेने की इच्छा से गुरु की खोज नहीं करता। गुरु को खोज करने वाला गुरु को खोज कर जीवन प्राप्त करता है, अमर हो जाता है और अहंकारी का शरीरपात हो जाता है ॥१५१॥

जो जननेन्द्रिय के सम्बन्ध में असंयत ढीले-ढाले हैं, जिह्वा से फूहड़ बातें करते हैं, गोरखनाथ कहते हैं कि वे प्रत्यक्ष भंगी हैं। लंगोट का पक्का (संयम रखने वाला) मुख का सच्चा अर्थात् मुख से सत्य वचन कहने वाला सत्पुरुष ही उत्तम कहा जाता है ॥१५२॥

---

१. (घ) बूझणां…भूलणां। २. अंतिम तीन चरण (ख), (ग), (घ) में थोड़े पाठ भेद से इस प्रकार हैं—न खोजे ते अग्यांनी सही, षोजी जीवै, वादी मरै उपाधि का पिंड पड़ै। ३. (घ) इन्द्री; (ख) यंद्रा; (क) में आरंभ में "ग्यांन क छोटा काछ क लोहड़ा" इतना और है; (ग) में इसके स्थान पर "हाथ का जती मुष का सती" है। ४. (ग) लटपटा; (घ) लड़पड़ा; (ख) लड़बड़ा। ५, (ग), (घ) मुष। ६. (ख) नाथ। ७. (ग) आंधू प्रतिकि, (क), (घ) प्रत्यषि। ८. (क), (ख) में अंतिम दो चरण नहीं हैं।

अवधू[1] मन चंगा तौ कठौती ही[2] गंगा। बांध्या[3] मेल्हा[4] तौ जगत्र[5] चेला।
बदंत[6] गोरष सति सरूप। तत बिचारैं ते[7] रेष न रूप ॥१५३॥
सीषि साषि बिसाह्या बुरा[8]। सुपिनैं मैं धन पाया पड़ा।
परषि परषि ले आगैं धरा। नाथ कहै पूता पोटा न षरा[9] ॥१५४॥
आओ[10] देवी बैसो। द्वादिस[11] अंगुल[12] पैसो।
पैसत पैसत होइ[13] सुष। तव जनम मरन[14] का जाइ[15] दुष १५५॥

हे अवधूत, अगर मन चंगा (शुद्ध) है तो कठौती में ही गंगा है अर्थात् जहाँ चाहो वहाँ गंगा विद्यमान है। क्योंकि गंगा-सेवन से जो फल बताये गये हैं वे मन की शुद्धता से स्वयं प्राप्त हो जाते हैं। यदि माया के बंधन में पड़े हुए मन को (अथवा जीव को) मुक्त कर दिया तो सारा जगत चेला हो जायगा। गोरख सत्य स्वरूप का वर्णन करता है—जो उस तत्व का विचार करेंगे, (वे स्वयं) रूप और रेखा से रहित हो जायँगे॥ १५३॥

(खाली पढ़ने-सीखने से कुछ नहीं होता।) सीख साख कर बुराई पाकर स्वप्न देखने वाले ने परख-परख कर अपने पास बटोर लिया, परन्तु नाथ कहते हैं कि हे पूत! वस्तुतः वह धन न खोटा है, न खरा। (क्योंकि असल में तो वह धन ही नहीं है)॥ १५४॥

हे देवी (कुंडलिनी शक्ति!) आओ बैठो, द्वादशांगुल प्राणवायु अर्थात् उसको वहन करनेवाली प्रमुख सुषुम्ना में प्रविष्ट होओ। प्रविष्ट होते होते सुख प्राप्त होगा और जन्म-मरण का भय भाग जायगा॥ १५५॥

---

१. (ख) में 'अवधू' नहीं। २. (ख), (ग), (घ) में 'हीं' नहीं। ३. (ख) वाध्या; (ग) व्यंध्या। ४. (क) पेल्हा; (ख), (घ) पेला। ५. (ख) सब जगत्र। ६. (ख) में अंतिम दो चरणों के स्थान पर ये हैं—राष्या रहै गमाया जाय। सति सति भाषंत श्री गोरष राय। ७. (ग) विचारिबा लै; (घ) विचारै लै। ८. (क), (ग), (घ) वरा। ९. यह सबदी (ख), (ग), (घ) में कुछ पाठ भेद से इस प्रकार है—सीषी साषी बिसाया बुरा। नाथ कहै रे पूता षोटा न षरा।
सीषिबा सबद बिसायबा वरा। डारिबा षोटा लेबा परा।
१०. (ग) अवो (? आवो) ११. (ग), (घ) द्वादस। १२. (घ) आंगुल। १३. (ग), (घ) होयगा। १४. (ग) जनम जनम। १५. (ग) जाइगा; (घ) जायगा।

स्वांमीं[1] काची बाई काचा जिंद[2]। काची काया काचा बिंद[3]।
क्यूंकरि पाकै क्यूंकरि सींझै। काची अगनीं नीर न[4] षीजै ॥१५६॥
तौ[5] देवी पाकी बाई पाका जिंद[2]। पाकी काया पाका बिंद[3]।
ब्रह्म अगनि अपंडित[6] वलै। पाका अगनीं नीर परजलै[7] ॥१५७॥
सोवत ग्राडां ऊभां[8] ठाढां अगनीं[9] ब्यंद[10] न आई।
निश्चल[11] आसन[12] पवनां ध्यानं अगनीं ब्यंद[10] न जाई ॥१५८॥
उगवंत[13] सूर पत्र पूर[14] काल-कंटक जाइ[15] दूर[14]।
नाथ का भंडार भर[16]पूर रिजक रोजी सदा हजूर[17] ॥१५९॥

हे स्वामी वायु कच्चा है, जीवन कच्चा है, शरीर कच्चा है, और बिंदु (शुक्र) भी कच्चा है। ये किस प्रकार पक्के हो सकते हैं, किस प्रकार सिद्ध हो सकते हैं। (योगाग्नि के सिद्ध हुए बिना) कच्ची अग्नि से नीर पक नहीं सकता ॥ १५६ ॥

हे देवी वायु, जीवन, शरीर और बिन्दु तब पक्के होते हैं जब ब्रह्माग्नि अखंडित रूप से जलने लगती है। इस प्रकार ब्रह्माग्नि या योगाग्नि के सिद्ध होने से जलमयी प्रकृति जल उठती है ॥ १५७ ॥

तिरछे सोते, सीधे खड़े रहते (अर्थात् सामान्य अवस्थाओं में) अग्नि, बिंदु और वायु की रक्षा नहीं की जा सकती, किन्तु जब आसन, पवन और ध्यान ये तीन चीज़ें निश्चल हो जाती हैं तब अग्नि और बिन्दु नष्ट नहीं होते ॥ १५८ ॥

सूर्य के उदय (ब्रह्म साक्षात्कार) होने पर काल रूपी कंटक दूर हो जाता है। (साधक को अपने सम्बन्ध में चिन्तित रहने की आवश्यकता नहीं रहती) नाथ का भंडार भरापुरा रहता है। वह सब के लिए प्रतिदिन का भोजन प्रस्तुत कर देता है ॥ १५९ ॥

१. (ग), (घ) स्वांमी जी। २. (ग) ज्यंद'' व्यंद। ३. (क) किस विधि। ४. (ग), (घ) नहिं। ५. (ग), (घ) में 'तौ' नहीं। ६. (ग) अपंडत। ७. (क) नीरा जलै। ८. (ग) बैठां; (घ) बैठा। ९. (ख), (ग), (घ) अगनि। १०. (घ) बिंद। ११. (ख), (घ) निहचल। १२. (ख), (घ) आसण; (ग) आसनि। १३. (ग), (घ) ऊगत। १४. (ग) पूरि''दूरि। १५. (घ) जायगा। १६. (घ) भर भर। १७. अन्तिम चरण के स्थान पर (ग), (घ) में यह है— 'पाया जै और फुरै, और नो च्यंता श्री गोरखनाथ करै।' जो दो चरण के स्थान पर जान पड़ता है।

थांन मांन गुर ग्यांन। वेधां बोध सिधां परग्रांम।
चेतनि वाला भ्रम न वहै। नाथ की कृपा अषंडित रहै ॥१६०॥
अधिक[1] तत्त ते गुरू बोलिये हींण तत[2] ते चेला।
मन मांनैं तौ संगि रमौ[3] नहीं तौ रमौ[3] अकेला[4] ॥१६१॥
चलंत[5] पंथा तूटंत[6] कंथा उडंत[7] षेहा विचलंत देहा।
छूटंत ताली हरि सूं नेहा ॥१६२॥
पंथि[9] चले चलि पवनां तूटै[10] नाद बिंद[11] अरु बाई।
घट[12] हीं भींतरि अठसठि तीरथ कहां भ्रमैं रे भाई[13] ॥१६३॥

जो स्थान (स्थिति, स्थैर्य, अटलता) से मान (प्राप्त करता है), गुरु के ज्ञान को (ग्रहण करता है), कुण्डली बेध किये हुओं से बोध (प्राप्त करता है) और सिद्धों से परग्रामिता (पृथ्वी में उस प्रकार रहना जैसे कोई दूसरे के गांव में रहता है अर्थात् निर्लिप्तता), वह चेतन स्वरूप गुरु का बालक भ्रम में नहीं बहता। (क्योंकि उस पर) गुरु की अखंडित कृपा रहती है ॥ १६० ॥

अधिक तत्त्व वाला गुरु है। हीन तत्त्व वाला चेला। अर्थात् हीन तत्त्ववाले को अधिक तत्त्व वाले से हमेशा ज्ञान ग्रहण करना चाहिए। ज्ञान ग्रहण कर लेने पर शिष्य इच्छानुसार गुरु के साथ-साथ अलग भी रह सकता है ॥१६१॥

मार्ग में चलते रहने से कंथा टूटती है (कपड़ा फटता है अथवा काया छीजती है क्योंकि शरीर विचलित होता है) तथा भगवद्भक्ति में भंग पड़ता है और समाधि टूट जाती है ॥ १६२ ॥

रास्ता चलते रहने से पवन टूटता है। (परिणाम में) नाद, बिंदु और वायु

---

१. (क) में पहला चरण यों है—अधिक तत गुर। २. (ग) चित्र; (क) में 'ते' नहीं है। ३. (क) रहै⋯फिरै। ४. (ग) एकेला। ५. (ग) चालंत;(घ) चालत। (ग) तुटंत। ७. (ग) उषंडित; (घ) ऊडत। ८. (क) में इस सबदी का अंतिम और अगली का प्रथम चरण और (ग) में केवल अंतिम छूट गया है। ९. (ग) पंक। १०. (ग) तूठै (?) ११. (ग) में 'विंद' नहीं। १२. (ग), (घ) में इस चरण का पाठ इस प्रकार है—'अठसठि तीरथ घट (पट-ग) भीतरि'। १३. (ग), (घ) में इस चरण का पाठ यों है—'तुम काहे भूमरि (भरमौ रे-घ) भाई'।

जोगी[1] होइ[2] पर निंद्या[3] भषै। मद मांस अरु भांगि[4] जो भषै।
इकोतरसै[5] पुरिषा नरकहिं[6] जाई। सति सति[7] भाषंत[8] श्रीगोरष राई[7]॥१६४
अवधू मांस भषंत[9] दया धरम का नास। मद पीवत तहाँ[10] प्रांण निरास
भांगि भषंत[11] ग्यांन ध्यांन षोवंत। जम दरबारी ते[12] प्रांणीं रोवंत॥१६५
चालिबा[13] पंथा कै सींबा[14] कंथा। धरिबा[15] ध्यांनं कै कथिबा ग्यांनं।
एकाएकी सिध कै संग। बदंत गोरषनाथ पूता न होयसि[16] मन भंग॥१६६

(सब में व्यतिक्रम हो जाता है।) सब तीर्थ (जिनकी संख्या ६८ मानी गई है) तो शरीर के भीतर ही हैं। हे भाई बाहर कहाँ भ्रमण करते भटकते हो? ॥१६३॥

जोगी होकर जो पराई निन्दा करता है, मद्य, मांस और भाँग खाता है, उसके इकहत्तर सौ पुरुषा नरक चले जाते हैं, गोरखनाथ यह सत्य सत्य बोलते हैं॥१६४॥

हे अवधूतो! मांस खाने से दया-धर्म का नाश होता है, मदिरा पीने से प्राण में नैराश्य छाता है, भाँग का प्रयोग करने से ज्ञान-ध्यान खो जाता है और ऐसे प्राणी यम के दरबार में रोते हैं॥१६५॥

या तो मार्ग में चलते रहना चाहिये, या कंथा सीते रहना चाहिये, या ध्यान धरे रहना चाहिये, या ज्ञानोपदेश करते रहना चाहिये। (इस प्रकार)

---

१. (ख) अतीत। २. (ख), (घ) होय। ३. (क) प्रन्यंदा; (ग) निंदा। ४. (ग) में 'भांगि' के आगे 'न' भी है जो प्रसंग से गलत जान पड़ता है। ५. (घ) यकोतर से पुरीया (? षा); (ख) मनसा बाचा। ६. (ग) नरको; (घ) नरक मैं। ७. (घ) जाय···राय। ८. (क) सत्य सत्य। ९. (ग) भषंते; (घ) भषंतां; (ख) षाया ते; चरण के आरम्भ में 'अवधू' नहीं। १०. (ग) पीवंता तहां; (घ) पीवंता; (ख) पीवै ते। ११. (ख), (ग), (घ) भषंत ते। १२. (घ) में 'रोवंत' के पहले 'ऊभा' और (ख) में गढ़ा ('ठ' राज स्थानी लिपिकार इस ढङ्ग से लिखते हैं कि 'ठा' गलती से 'ग' पढ़ा जा सकता है) आया है, (ग) में इस चरण का यह पाठ है—ते प्राणी जम द्वारे रोवत। (ख) में इस चरण के आरम्भ में 'वदंत गोरषनाथ' है और 'ते' के स्थान पर 'वै' हैं। १३. (ग), (घ) कै चालिवा। १४. (ग) सीईवा; (घ) सीयवा। १५. (ग) कै धरिवा। १६. (क) में अंतिम दो चरण नहीं हैं।

पढि[1] देखि पंडिता ब्रह्म गियांनं । मूवां मुकति[2] बैकुंठा थांनं ।
[3] गाड्या जाल्या चौरासी मैं जाइ[4] । सतिसतिभाषंत(श्री) गोरषराइ[4]॥१६७॥
आकास[5] तत सदा-सिव जांण[6] । तसि[7] अभिअंतरि पद निरबांण ।
प्यंडे परचांनैं गुरमुषि जोइ । वाहुडि[8] आबा गवन न होइ ॥१६८॥
ऊरम[9] धूरम ज्वाला जोति । सुरजि[10] कला न छीपै छोति ।
कंचन कवल किरणि[11] परसाइ । जल मल दुरगंध[12] सर्व सुषाइ[13] ॥१६९॥

एकाकी रहने से अथवा सिद्ध की संगति में रहने से मनोभंग नहीं होता ॥ १६६ ॥

हे पंडित ब्रह्मज्ञान ही का अध्ययन-मनन करो। (क्योंकि ब्रह्मज्ञान के बिना सब झूठा है।) मरने पर जो मुक्ति (मानी जाती है) उसमें वैकुंठ में स्थान मिलना (कहा जाता है, परन्तु वस्तुतः) वह गढ़े में अथवा चिता पर स्थान पाना है और चौरासी लाख योनि के चक्कर में पड़ जाना है। यह गोरखनाथ का सत्य बचन है ॥१६७॥

आकाश तत्त्व (शून्य मंडल; पंच भूतों में का आकाश तत्त्व नहीं) को सदाशिव (पूर्ण ब्रह्म) जानो। उसी में निर्वाण पद है। इसी शरीर में उसका परचा (परिचय) मिल जाता है। गुरु मुख से उसे प्राप्त करो (देखो) जिससे फिर आवागमन न हो ॥ १६८ ॥

(तब) ज्योति पूर्ण प्रज्वलित हो उठती है। सूर्यकला को छूत, (अध्यात्म को आधिभूत) छिपा नहीं सकती। स्वर्ण कमल (सहस्रार) को उसकी किरणें स्पर्श करने लगती हैं जो जल से मिलने वाले मल (पंक) अर्थात् मायामय बिंदुप्रधान जल-प्रकृति, दुर्गंध आदि सब को सोख लेती हैं ॥ १६९ ॥

---

१. (ग) परि। २. (घ) मुक्ति। ३. 'गाड्या' के पहले (ग) में 'नहीं तौ', और (घ) में 'नहीं' है। ४. (घ) जाय…राय। ५. (ग), (घ) आकास का तत। ६. (ख), (घ) जांणी…निरवांणी। ७. (ग), (घ) तिस। ८. (ग) बाहुर्‌यों; (घ) बाहुर्‌यू। ९. (ग) उर। १०. (ग) सूरज। ११. (क) क्रणि; (घ) में 'केवल किरणि' के स्थान पर 'का मैल की रहणि न' और; (ग) में 'का मैल किरणि न' पाठ है। १२. (ग) गंधि; (घ) गांधी। १३. (क) सर्व सोषाई; (ग) सरव सुषाई; (घ) सरबस षाई।

जोगी[1] होइ[2] पर निंद्या[3] झषै। मद मांस अरु भांगि[4] जो भषै।
इकोतरसै[5] पुरिषा नरकहि[6] जाई। सति[7] सति[8] भाषंत श्रीगोरष राई[7]॥१६

अवधू मांस भषंत[9] दया धरम का नास। मद पीवत[10] तहाँ प्रांण निरा
भांगि भषंत[11] ग्यांन ध्यांन षोवंत। जम दरबारी ते[12] प्रांणीं रोवंत ॥१६

चालिबा[13] पंथा कै सींबा[14] कंथा। धरिबा[15] ध्यांनं कै कथिबा ग्यांनं।
एकाएकी सिध कै संग। बदंत गोरषनाथ पूता न होयसि[16] मन भंग॥

(सब में व्यतिक्रम हो जाता है।) सब तीर्थ (जिनकी संख्या ६८ मानी गई
तो शरीर के भीतर ही हैं। हे भाई बाहर कहाँ भ्रमण करते भटकते हो ? ॥१६

जोगी होकर जो पराई निन्दा करता है, मद्य, मांस और भाँग खाता
उसके इकहत्तर सौ पुरुषा नरक चले जाते हैं, गोरखनाथ यह सत्य स
बोलते हैं॥ १६४॥

हे अवधूतो! मांस खाने से दया-धर्म का नाश होता है, मदिरा पीने
प्राण में नैराश्य छाता है, भाँग का प्रयोग करने से ज्ञान-ध्यान खो जाता
और ऐसे प्राणी यम के दरबार में रोते हैं॥ १६५॥

या तो मार्ग में चलते रहना चाहिये, या कंथा सीते रहना चाहिये,
ध्यान धरे रहना चाहिये, या ज्ञानोपदेश करते रहना चाहिये। (इस प्रका

१. (ख) अतीत। २. (ख), (घ) होय। ३. (क) प्रन्यंदा; (ग) निंद
४. (ग) में 'भांगि' के आगे 'न' भी है जो प्रसंग से गलत जान पड़ता है।
(घ) यकोतर से पुरीया (? षा); (ख) मनसा बाचा। ६. (ग) नरको; (
नरक मैं। ७. (घ) जाय…राय। ८. (क) सत्य सत्य। ९. (ग) भषंते; (
भषंतां; (ख) षाया ते; चरण के आरम्भ में 'अवधू' नहीं। १०. (ग) पीव
तहां; (घ) पीवंता; (ख) पीवै ते। ११. (ख), (ग), (घ) भषंत ते। १२. (
में 'रोवंत' के पहले 'ऊभा' और (ख) में गढ़ा ('ठ' राज स्थानी लिपि
इस ढङ्ग से लिखते हैं कि 'ठा' गलती से 'ग' पढ़ा जा सकता है) आया
(ग) में इस चरण का यह पाठ है—ते प्राणी जम द्वारे रोवत। (ख) में
चरण के आरम्भ में 'बदंत गोरषनाथ' है और 'ते' के स्थान पर 'वै' हैं।
(ग), (घ) कै चालिबा। १४. (ग) सीईबा; (घ) सीयबा। १५. (ग)
धरिबा। १६. (क) में अंतिम दो चरण नहीं हैं।

पढ़ि[1] देखि पंडिता ब्रह्म गियांनं। मूवां मुकति[2] वैकुंठा थांनं।
[3] गाड्या जाल्या चौरासी मैं जाइ[4]। सतिसतिभाषंत(श्री) गोरषराइ[4]॥१६७॥
आकास[5] तत सदा-सिव जांण[6]। तसि[7] अभिअंतरि पद निरवांण।
प्यंडे परचांनैं गुरमुषि जोइ। वाहुड़ि[8] आवा गवन न होइ॥१६८॥
ऊरम[9] धूरम ज्वाला जोति। सुरजि[10] कला न छीपै छोति।
कंचन कवल किरणि[11] परसाइ। जल मल दुरगंध[12] सर्ब सुषाइ[13]॥१६९॥

एकाकी रहने से अथवा सिद्ध की संगति में रहने से मनोभंग नहीं होता॥ १६६॥

हे पंडित ब्रह्मज्ञान ही का अध्ययन-मनन करो। (क्योंकि ब्रह्मज्ञान के विना सब झूठा है।) मरने पर जो मुक्ति (मानी जाती है) उसमें वैकुंठ में स्थान मिलना (कहा जाता है, परन्तु वस्तुतः) वह गड़े में अथवा चिता पर स्थान पाना है और चौरासी लाख योनि के चक्कर में पड़ जाना है। यह गोरखनाथ का सत्य वचन है॥१६७॥

आकाश तत्त्व (शून्य मंडल; पंच भूतों में का आकाश तत्व नहीं) को सदाशिव (पूर्ण ब्रह्म) जानो। उसी में निर्वाण पद है। इसी शरीर में उसका परचा (परिचय) मिल जाता है। गुरु मुख से उसे प्राप्त करो (देखो) जिससे फिर आवागमन न हो॥ १६८॥

(तब) ज्योति पूर्ण प्रज्वलित हो उठती है। सूर्यकला को छूत, (अध्यात्म को आधिभूत) छिपा नहीं सकती। स्वर्ण कमल (सहस्रार) को उसकी किरणें स्पर्श करने लगती हैं जो जल से मिलने वाले मल (पंक) अर्थात् मायामय विंदुप्रधान-जल-प्रकृति, दुर्गंध आदि सब को सोख लेती हैं॥ १६९॥

१. (ग) परि। २. (घ) मुक्ति। ३. 'गाड्या' के पहले (ग) में 'नहीं तौ', और (घ) में 'नहीं' है। ४. (घ) जाय···राय। ५. (ग), (घ) आकास का तत। ६. (ख), (घ) जांणी···निरवांणी। ७. (ग), (घ) तिस। ८. (ग) वाहुरयों; (घ) वाहुरयूं। ९. (ग) उर। १०. (ग) सूरज। ११. (क) क्रणि; (घ) में 'केवल किरणि' के स्थान पर 'का मैल की रहणि न' और; (ग) में 'का मैल किरणि न' पाठ है। १२. (ग) गंधि; (घ) गांधी। १३. (क) सर्व सोषाई; (ग) सरव सुषाई; (घ) सरवस षाई।

घटि घटि[१] सूणयां[२] ग्यांन न होइ[३] । बनि बनि[१] चंदन रूष न कोइ[३]
रतन रिधि कवन कै[४] होइ[३] । ये[५] तत[६] बूझै[७] विरला कोइ[३] ॥१७०॥
नींझर[८] झरणौं[९] अंमीरस पीवणां षट दल[१०] बेध्या जाइ[११] ।
चंद बिहूंणां चांदिणां[१२] तहां देष्या[१३] श्री गोरषराइ ॥ १७१ ॥
कै मन रहै आसा पास[१४] । कै मन रहै परम उदास ।
कै मन रहै गुरू कै ओलै[१५] । कै मन रहै कांमनि[१६] कै षोले ॥ १७२ ॥

सुनने मात्र से घट-घट (शरीर-शरीर) में अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान नहीं हो जाता । वैसे ही जैसे बन-बन में चंदन का वृक्ष नहीं होता । रत्न और ऋद्धि अथवा रत्नमयी ऋद्धि किस को प्राप्त होती है ? यह तत्त्व कोई विरला ही समझ पाता है ॥ १७० ॥

(जहाँ) खूब झरने वाले झरने पर अमृत रस पीने को मिलता है वहाँ जाकर गोरखराय ने चन्द्रमा के बिना प्रकाश को देखा अर्थात् कारणरहित स्वतः-प्रकाश परब्रह्म का दर्शन किया ॥ १७१ ॥

(मन का निरालम्ब रहना दुःसाध्य है,) या तो वह (इस जगत् में) आशा के फंदे में बँधा रहता है या फिर परम उदास अर्थात् विरक्त अवस्था में रहता है । या तो मन कामिनी के क्रोड़ में (विश्राम लेता) रहता है (जब आशा के फंदे में बँधा रहता है) या गुरु की ओट (शरण) में ही रहता है (गुरु की ही दया से वह परम विरक्ति लाभ करता है) । ओलै, ओट में । खोलै, क्रोड़ में ॥ १७२ ॥

---

१. (क) घट घट···बनं बंन । २. (ख) कथ्या; (ग) में 'सुणया' के आगे 'न' ३. (घ) पहला 'होई···कोई', दूसरा 'होय···कोय' । ४. (ख) कौण कै; (ग), (घ) का कै; (ग) में इसके पहले 'कौ' और; (घ) में 'कौ हो' है, जो 'कहाँ' का विकृत रूप है । ५. (ख) मोह । ६. (ग) तत्व । ७. (ख) चीन्हे । ८. (ख), (ग), (घ) झरणां । ९. (ख) अम्रत । १०. (ख) मंधे । ११. (घ) जाय; (ख), (ग) जाई · राई । १२. (ख) चंदणा ; (ग), (घ) चांदणा । १३. (ख), (ग), (घ) में गोरष के पहले 'श्री' नहीं है । १४. (ख) पासा । १५. (ग), (घ) के (कै-घ) वोलै । १६. (ख); (ग), (घ) कामणि, (ग) में अंतिम दो चरणों का स्थान बदला हुआ है ।

दावि[1] न मारिबा षाली न राषिबा जांनिबा अगनि[2] का भेवं।
बूढी[3] हीं थैं[4] गुरबानी[5] होइगी[6] सति सति भाषंत श्री गोरष देवं॥१७३॥
बाहरि[7] न भीतरि[7] नेड़ा न दूर[8]। षोजत रहे[9] ब्रह्मा अरु सूर[8]।
सेत फटक[10] मनि[11] हीरैं बीधा[12]। इहि[13] परमारथ[14] श्री गोरष[15] सीधा॥१७४॥
आवति[16] पंच तत[17] कूं मो है जाती छैल जगावै।
गोरष पूछै[18] बाबा मछिंद्र या[19] न्यंद्रा[20] कहां थैं आवै ॥ १७५ ॥

मन को कुचल कर (दबाकर) नहीं मारना चाहिए, उसे खाली भी नहीं रखना चाहिए। अग्नि (ब्रह्माग्नि अथवा योगाग्नि) का भेद (रहस्य) जानना चाहिये। (ऐसा करने से) बूढ़ी (माया, आद्या जो आदि से चली आ रही है, पुराण की संगिनी) (जो सामान्यतया बंधन में डालने वाली होती है) वही (मुक्त करने वाली) गुरुआनी हो जायगी। यह गोरखदेव का सत्य वचन है। माया का द्वैध स्वरूप है, अविद्या रूप में वह जीव को वश में कर बंधन में डालती है और विद्या रूप में वही मोक्षदायिनी है ॥ १७३ ॥

परब्रह्म आत्म तत्व न बाहर है न भीतर, न निकट है न दूर। ब्रह्मा और सूर्य उसे खोजते ही रह गये, (उसका रहस्य न पा सके); श्वेत स्फटिक मणि को हीरे ने वेध लिया, (आत्मा ने रहस्य का भेदन कर ब्रह्म साक्षात्कार कर लिया।) इसी परमार्थ के लिए गोरखनाथ ने साधना सिद्ध की ॥ १७४ ॥

गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ से पूछते हैं कि हे बाबा जो आती हुई पाँचों

---

१. (ग), (घ) दावे। २. (ग), (घ) ब्रह्म अगनि। ३. (ग), (घ) बूढ़ा। ४. (ग) थैं; (घ) है। ५. (ग) गुर बांणि; (घ) गुरू बांणी। ६. (ग) होइगा; (घ) होयगी। ७. (क) बाहरे…भीतरे; (ख) बाहिरा …भीतरा; (घ) में 'भीतरि'; उसके पहले 'न' नहीं। ८. (ख) दुरी, (ग), (घ) दूरि। ९. (ग), (घ) गया। १०. (ख), (घ) फटकि। ११. (ख), (ग), (घ) मणि। १२. (ख) बध्या; (ग) हीरे बीध्यां; (घ) हीरा बीध्या। १३. (ख) तहा (? तिहीं), (ग), (घ) तिस। १४. (ग) प्रमारथ, (ख) प्रमारथि। १५. (ख), (ग) श्री गोरषनाथ, (घ) जती गोरषनाथ। १६. (क), (घ) आवत। १७. (ग) पंचतत्व, (घ) पाँच तत्व, (ख) पांच तत। १८. (ग), (घ) कहे हो। १९. (ख) में नहीं, (ग) यो। २०. (ख) चद्रा (? न्यद्रा), (ग), (घ), निद्रा।

गगन[1] मंडल मैं सुंनि द्वार[2]। बिजली[3] चंमकै घोर अंधार[4]।
ता महिं[5] न्यंद्रा[6] आवै जाइ[7]। पंच तत[8] मैं रहै समाइ[7] ॥ १७६ ॥
ऊभां बैठां सूतां[9] लीजै[10]। कबहूँ चित[11] भंग न[12] कीजै।
अनहद सबद गगन मैं गाजै[13]। प्यंड[14] पड़ै तौ सतगुर[15] लाजै ॥ १७७॥
एकलौ[16] बीर, दूसरौ[17] धीर, तीसरौ[17] षटपट[18] चौथौ[17] उपाध[19]।
दस पंच[20] तहाँ बाद बिबाद[21] ॥ १७८ ॥

तत्त्वों (शरीर) को मूर्छित कर संज्ञा शून्य कर देती है और जाती हुई चेतना (छैल, रसिया) को जगा देती है, वह निद्रा आती कहाँ से है ॥ १७५ ॥

गगन मंडल (सहस्रार) में शून्य द्वार (ब्रह्मरंध्र) है। वहाँ घोर अंधकार में बिजली चमकती है। उसी में से नींद आती-जाती है और पंच तत्त्व (शरीर) में समा जाती है ॥ १७६ ॥

गगन में अनाहत नाद की गर्जना हो रही है, खड़े, बैठे, सोते हर घड़ी उसे लेना (सुनना अथवा उस पर ध्यान लगाना) चाहिए, कभी चित्त भंग न करना चाहिये। (निद्रा के वश असावधान अथवा अचेत होकर मृत्यु की ओर नहीं जाना चाहिए।) यदि शरीरपात हुआ तो गुरु के लिए लज्जा की बात होगी ॥ १७७ ॥

जो एकाकी (अकेला) रहता है, वह वीर है। दो धीर होते हैं, उनके साथ साथ तीसरे के आ जाने से खटपट (शुरू हो जाती) है। चौथे का भी संयोग हो जाय तो (उपाधि) उतपात होने लगता है और जहाँ दस-पाँच इकट्ठे हो जाते हैं, वहाँ तो पूरा कलह ही उपस्थित हो जाता है ॥ १७८ ॥

---

१. (ख) गीगनि। २. (घ) का द्वार। ३. (ख) बीजल; (ग),(घ) बिचि बिचि। ४. (ग) ऊंधारं। ५. (ख), (घ) तामैं; (ग) तामे। ६. (ग), (घ) निंद्रा। ७. (घ) जाय···समाय। ८. (ख) पांचु तत ; (ग) पांच तत्व में; (घ) पांच तत मैं। ९. (ग) सूतौ। १०. (ख) लीजे। ११. (ख) चित स्यूं ; (ग) चितस्यौं, (घ) सूं। १२. (क) नहीं। १३. (ख) गीगनि चढ़ि, (ग), (घ) गगन चढ़ि। १४. (घ) पिंड। ११. (क) गोरष। १६. (ख), (ग) येकलो, (घ) एकइला। १७. (ग), (घ) दूसरा···तीसरा···चौथा। १८. (ग), (घ) पटपटा, (ख) पटपटे। १९. (ग), (घ) उपाधि। २०. (ख) पांच सात, (ग), (घ) दस बीस। २१. (ख) बीवाद।

एकाएकी सिध नांउ[1] दोइ रमति[2] ते साधवा ।
चारि पंच कुटुम्ब नांउ[1] दस बीस ते लसकरा[3] ॥१७६॥
मन मुषि जाता गुर मुषि लेहु । लोही[4] मास अगनि मुषि देहु ।
मात पिता की मेटौ[5] धात । ऐसा[6] होइ[7] बुलावै नाथ ॥१८०॥
नाद नाद सब कोइ कहै । नादहिं ले[8] को बिरला रहै ।
नाद बिंद है फीकीसिला । जिहिं[9] साध्या ते सिधैं[10] मिला[11] ॥१८१॥
दरवेस सोइ[12] जो[13] दरकी जांणैं[14] । पंचे[15] पवन अपूठां[16] आंणैं
सदा सुचेत रहै दिन राति[17] । सो[18] दरवेस अलह[19] की जाति[17] ॥१८२॥

एकाकी रहने वाले का नाम सिद्ध है । जो दो एक साथ रमते (रहते) हैं वे साधु हैं, चार पाँच हो गये तो उन्हें कुटुम्ब समझना चाहिए और दस बीस हो गये तो सेना ॥ १७६ ॥

मन की ओर जाती हुई (वहिर्मुखी) वृत्ति को गुरु की ओर अभिमुख (अंतर्मुख) करो । रक्त और मांसमय काया को ब्रह्माग्नि में भस्म कर दो (उसकी ओर अनासक्त हो जाओ) माता-पिता की धातु को मिटा डालो । (माता के रज और पिता के बिंदु से निर्मित शरीर को पूर्ण रूप से वश में कर लो और वंश की वृद्धि में न लगो ।) जो ऐसा कर सके नाथ (परब्रह्म) उसे स्वयं अपने पास बुलाते हैं ॥ १८० ॥

मुख से तो नाद नाद बहुतेरे कहते हैं किन्तु नाद में लीन कोई विरला ही रहता है । (सामान्यतया तो) नाद-विन्दु शुष्क पत्थर के समान हैं, किन्तु जिसने उन्हें साध लिया वह सिद्धावस्था में पूर्णता में लीन हो जाता है ॥१८१॥

दरवेश वह है जो दर की बात जानता है, जो जानता है कि परमात्मा का घर कहाँ है, जिसे ब्रह्मरंध्र का ज्ञान है । पांचों पवनों को अथवा पवन के

---

१. (क) सिधनां···कुटंवानां । २. (ग) रै है; (घ) रमै । ३. (घ) ल्हस-करा । ४. (क) लोह; (ग) लोहि । ५. (ग), (घ) मेट । ६. (ग) ऐसो । ७. (घ) होय । ८. (ख), (घ) लै । ९. (ग), (घ) जिनि । १०. (ग) सिधा; (घ) सिधां । ११. (ग), (घ) मिल्या । १२. (घ) सो । १३. (ग) जु । १४. (ग) जानै । १५. (ग) पांचू; (घ) पांचौं । १६. (क) पूठा । १७. (क) रांति···जात । १८. (ग) सोइ । १९. (ग) अलाह; (घ) अल्हा ।

बैसंत पूरा रमंति सूरा, एक रसि[1] राषंति काया।
अंतरि एक रसि[1] देषिवा बिचरंति[2] गोरषराया* ॥१८३॥
नाद बिंद बजाइले दोऊ पूरिले अनहद बाजा।
एकंतिका बासा सोधि ले भरथरी कहै गोरष मछिंद्र का दासा ॥१८४
सूर माहिं चंद चंद माहिं सूर। चपंपि तीनि तेहुड़ा बाजल तूर।
भणन्त गोरषनाथ एक पद पूरा। भाजंत[3] भौंदू साधंति[4] सूरा ॥१८५॥

द्वारा प्राणायाम से पाँचों इन्द्रियों को (प्रत्याहार की साधना से) इन्द्रियार्थों (विषयों) से वापिस हटा लेता है। और दिन रात सचेत (सावधान) रहता है। ऐसा दरवेश स्वयं ब्रह्मस्वरूप (अल्लाह की जाति का) हो जाता है ॥ १८२ ॥

पूरे (अर्थात् जिन्हें सिद्धावस्था प्राप्त हो गयी है) बैठे रहते हैं, (उनको करने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता), जो शूर हैं (अर्थात् जो साधकावस्था में साहस पूर्वक विघ्नों का सामना करते रहते हैं) वे शरीर को एक रस अर्थात् अपरिवर्तनशील अवस्था में रखते हैं। किन्तु गोरखनाथ आभ्यंतर एकरसता को देखने के लिए अर्थात् प्राप्त करने के लिए विचरण करता है अर्थात् प्रयत्नशील है ॥ १८३ ॥

नाद और बिन्दु दोनों को बजा लो अर्थात् साधो; अनाहत रूप बाजे को भरो अर्थात् उसमें संगीत ध्वनि निकालो (फूँककर बजाये जाने वाले बाजे से अनाहत का रूपक बाँधा गया है) और हे भरथरी एकांत का बास ढूँढ़ो, यह मछन्दर के दास (शिष्य) गोरख का कथन अर्थात् उपदेश है ॥ १८४ ॥

जब सूर्य (पिंगला नाड़ी) और चन्द्र (इड़ा नाड़ी) अथवा आधार पद्मस्थ सूर्य का सहस्रारस्थ चन्द्रमा से मेल हो जाता है और तीन तिकूंट अर्थात् सत् , रज और तम ये तीनों दबा लिये जाते हैं, तब (अनाहत रूप) तूर बजता है। इस प्रकार गोरखनाथ उस पूर्ण-पद अर्थात् सिद्धि का वर्णन करता है जिसको शूर साधक प्राप्त करते हैं और जिसे प्राप्त किये बिना ही मूर्ख उचित मार्ग को त्याग कर भाग जाते हैं ॥ १८५ ॥

---

१. (क) रस्य। २. (क) विरंचत। ३. (क) भंजत। ४. (क) साधति।
* १८३ से १८७ तक की सबदियाँ (क) में साखियाँ कही गई हैं।

छत्र पवन निरंतर रहै छीजै काया पंजरा रहै ।
मन पवन[1] चंचल निजि गहिया बोलै नाथ निरंतरि रहिया ॥१८६॥
इकटी बिकुटी त्रिकुटी संधि पछिम द्वारे पवनां बंधि ।
षूटै[2] तेल न बूझै दीया बोलै नाथ निरन्तरि हूवा[3] ॥१८७॥
ज्यूं ज्यूं भुयंगम आवै जाइ सुरही घरि नहीं गरड़ रहाइ,
तब लग सिध दुर्लभ जोग तोयं अहार बिन व्यापै रोग ॥१८८॥

छत्र-पवन जब भेद रहित निरन्तर अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब काया क्षीण होती जाती है, खड़खड़ ठठरी मात्र रह जाती है तथा मन पवन (स्थूल) और चंचल इन्द्रियाँ अपने हाथ में आ जाती हैं। नाथ का कथन है कि इस प्रकार निरन्तर रहनी सिद्ध होती है।

योग शास्त्र के अनुसार वायु के दस भेद होते हैं जो शरीर में अलग-अलग व्यापारों की सिद्धि करते हैं। वायु के इन भेदों में सार स्वरूप जो मूल वायु (सूक्ष्म सिद्धान्त स्वरूप वायु है) है वही को यहाँ पर छत्र वायु कही गई है ॥ १८६ ॥

एकटी (पहली, इडा) और बिकटी (दूसरी, पिंगला) का जब त्रिकटी (तीसरी, सुषुम्ना) में मेल होता है और सुषुम्ना मार्ग में जब पवन का निरोध हो जाता है तब साधक अमर हो जाता है, उसका आयु रूप तेल समाप्त नहीं होता और जीवन रूपी शिखा बुझती नहीं है। इस प्रकार नाथ कहते हैं कि साधक निरन्तर अर्थात् नित्य स्वरूप हो जाता है।

एक पर स्वार्थे टा (+ स्त्री० ई) उपसर्ग के लगने से एकटी शब्द सिद्ध हुआ है। इसके अनुकरण पर द्वि से बिकुटी और त्रि से त्रिकुटी शब्द बने हैं। त्रिकुटी भी अभिप्रेत है ॥ १८७ ॥

ज्यों ज्यों (जब तक) श्वासा (सर्प) आती जाती है, और उसके लिए सुषुम्ना मार्ग (सुरही घरि, गाय के घर) में गरुड़ का निवास नहीं होता अर्थात् जब तक श्वास का निरोध नहीं होता, तब तक सिद्ध-योग दुर्लभ है। (क्योंकि) जल (वीर्य) का आहार किये बिना शरीर में रोग व्यापता है और (साधक जल का आहार कर सकता है, ऊर्ध्व रेता हो सकता है) प्राणायाम की चरम सिद्धि (कुम्भक) ही से ॥ १८८ ॥

---

१. (ख) पवनां। २. (क) टूटै। ३. (ख) रहिया।

ग्यांन सरीषा गुरू न मिलिया चित्त सरीषा चेला।
मन सरीषा मेलू न मिलिया तीथैं गोरष फिरै अकेला ॥१८६॥

(ख), (ग) और (घ) में अधिक सबदियां—

सांग[1] का पूरा ग्यान का ऊरा[2]। पेट का तूटा[3] डिंभ[4] का सूरा।
वदंत गोरखनाथ न पाया जोग[5]। करि पाषंड रिझाया लोग ॥१६०॥
अगनि हीं[6] जोग अगनि हीं[6] भोग। अगनि हीं हरै चौंसठि[7] रोग।
जो इहि अगनि का जाणै[8] भव। सो आप[9] ही करता आप ही[9] देव १६१
जीवता जोगी अमीरस पीवता अहनिस[10] अषंडित धार[11]।
दिष्टि[12] मधे अदिष्टि[12] विचारिबा ऐसा अगम अपार[13] ॥१६२॥

ज्ञान के सदृश दूसरा (पूर्ण) गुरु नहीं मिला, चित्त के सदृश चेला नहीं मिला और मन के सदृश मेल-मिलाप वाला नहीं मिला इसलिए गोरख (गुरु, चेला अथवा साथी के फेर में न पड़ कर अपने ज्ञान, चित्त और मन ही से क्रमशः गुरु, चेला और साथी का काम लेते हुए) अकेला फिरता है ॥ १८९ ॥

जो केवल स्वाँग करने में पूरा है और ज्ञान का अधूरा है, जिसका पेट खाली है अर्थात् बड़ा पेट है (बहुत जिसमें समाता है) और जो दम्भ करने में शूर है, उसे योग नहीं प्राप्त होता। वह केवल पाखण्ड कर लोगों को प्रसन्न करना जानता है ॥ १९० ॥

अगनि, योगाग्नि। भेव, भेद, गूढ़ रहस्य ॥ १९१ ॥

जीवान्मुक्त जोगी रात दिन अमृत की अजस्त्र धारा का पान करता रहता है। दृष्ट पदार्थों में अदृष्ट परमात्मा के दर्शन करने चाहिए। ऐसे (इस प्रकार) अगम और अपार (परमात्मा अथवा योग की प्राप्ति होती है) ॥ १९२ ॥

---

१. (ख) साग; (ग) स्वांग। २. (ख), (ग) उरा। ३. टुटा; (ग) टूटता। ४. ड्रांभ(?); (ख) डयम्भ। ५. (ग) योग। ६. (ख), (ग) अगनि ही ७. (ख) चोसटि। ८. (ख) कोई जाणै। ९. (ग) आपहि; (ख) आपै। १०. (ख) अहिनिसि; (ग) अहनिसि। ११. (ख) पंडै धारं; (ग) अपंडित धारा। १२. (ग) दृष्टि··दृष्टि; (ख) में यह चरण यों हैं—अदिसटि मध्यं दिसटि रोपिवा। १३. (ख) अगह अपार; (ग) अगहे अपार।

जीवता बिछायबा[1] मूंवां वोढिबा कबहु न होयबा[2] रागी।
बरसवै दिन काया पलटिवा[3] यूं कोई कोई बिरला[4] जोगी ॥१९३॥
सूरजे[5] षायबा[6] चंद्रे[7] सोयबा[8] उभै न पीबा[8] पांणी।
जीवता कै तलि[9] मूंवा बिछायबा[10] यूं[11] बोल्या गोरष बांणी ॥१९४॥
जहां गोरष तहां ग्यांन गरीबी दुंद[12] वाद नहीं कोई।
निसप्रेही निरदावै षेलै[13] गोरष कहीयै सोई ॥ १९५ ॥

जो जीवित (अथवा प्राणों) को बिछाता और मरे हुए (जड़ शरीर) को ओढ़ता है (अर्थात् अपने साध्य मार्ग में दोनों को संयत और निरुद्ध रखकर उनसे साधनों का काम लेता है) वह रोगी कभी न होगा। इस प्रकार कोई बिरला योगी ही बरस दिन में काया पलट (काया कल्प) कर सकता है ॥ १९३ ॥

जब सूर्य का स्वर चलता हो तब भोजन करना चाहिए और जब चंद्रस्वर हो तब सोना चाहिए, किन्तु पानी दोनों में नहीं पीना चाहिए। जीवित (आत्मा) के नीचे मृतक (जड़ शरीर) को बिछाना चाहिए। (अर्थात् जड़ *शरीर का उपयोग आत्मा के लाभ के लिए होना चाहिए,) गोरख ऐसी वाणी* बोलता है ॥ १९४ ॥

जहाँ गोरख है, वहाँ ज्ञान, और ज्ञानोद्भव दैन्य रहता है। वहाँ माया-कृत द्वैत भावना (द्वंद्व) नहीं होती और न वाद-विवाद ही होता है। गोरख अथवा परम योगी वह है जिसे कोई कामना (स्पृहा) न हो और जो बिना फल की इच्छा किये हुए निष्काम कर्म करे, (बिना दांव के खेले) ॥ १९५ ॥

---

१. (ख) बीछाईबा; (ग) बिछाईबा। २. (ग) होइगा। ३. (ख), (ग) पलटै; (ख) में इसके पहले का पाठ यों है—बरस दिन मैं तीनि बीरीया काया ४. (ख) सो को बीरला; (ग) यो कोई कोई बिरला। ५. (ख) सुरीज; (ग) सूरज। ६. (ख) चंद। ७. (ग) षाइबा···सोइब। ८. (ख) पीयबा; (ग) पीवै। ९. (ख) तलै। १०. (ख) बीछाईबा। ११. (ग) यौ, (ख) में नहीं है। १२. (ख) षष; (ग) दूंद। १३. (ख) षेलै।

ग्यांन सरीषा गुरू न मिलिया चित्त सरीषा चेला ।
मन सरीषा मेलू न मिलिया तीथैं गोरष फिरै अकेला ॥१८६॥

(ख), (ग) और (घ) में अधिक सबदियां—

सांग[1] का पूरा ग्यान का ऊरा[2] । पेट का तूटा[3] डिंभ[4] का सूरा ।
वदंत गोरखनाथ न पाया जोग[5] । करि पाषंड रिझाया लोग ॥१६०॥

अगनि हीं[6] जोग अगनि हीं[6] भोग । अगनि हीं हरै चौंसठि[7] रोग ।
जो इहि अगनि का जाणै[8] भेव । सो आप[9] ही करता आप ही देव १६१

जीवता जोगी अमीरस पीवता अहनिस[10] अषंडित धार[11] ।
दिष्टि[12] मधे अदिष्टि[12] विचारिबा ऐसा अगम अपार[13] ॥१६२॥

ज्ञान के सदृश दूसरा (पूर्ण) गुरु नहीं मिला, चित्त के सदृश चेला नहीं मिला और मन के सदृश मेल-मिलाप वाला नहीं मिला इसलिए गोरख (गुरु, चेला अथवा साथी के फेर में न पड़ कर अपने ज्ञान, चित्त और मन ही से क्रमशः गुरु, चेला और साथी का काम लेते हुए) अकेला फिरता है ॥ १८६ ॥

जो केवल स्वाँग करने में पूरा है और ज्ञान का अधूरा है, जिसका पेट खाली है अर्थात् बड़ा पेट है (बहुत जिसमें समाता है) और जो दम्भ करने में शूर है, उसे योग नहीं प्राप्त होता। वह केवल पाखण्ड कर लोगों को प्रसन्न करना जानता है ॥ १९० ॥

अग्नि, योगाग्नि। भेव, भेद, गूढ़ रहस्य ॥ १६१ ॥

जीवान्मुक्त जोगी रात दिन अमृत की अखण्ड धारा का पान करता रहता है। दृष्ट पदार्थों में अदृष्ट परमात्मा के दर्शन करने चाहिए। ऐसे (इस प्रकार) अगम और अपार (परमात्मा अथवा योग की प्राप्ति होती है) ॥ १६२ ॥

---

१. (ख) साग; (ग) स्वांग। २. (ख), (ग) उरा। ३. टुटा; (ग) टूटता। ४. ड्रांभ(?); (ख) ड्यम्भ। ५. (ग) योग। ६. (ख), (ग) अगनि ही ७. (ख) चोसटि। ८. (ख) कोई जाणै। ९. (ग) आपहि; (ख) आपै। १०. (ख) अहिनिसि; (ग) अहनिसि। ११. (ख) पंडै धारं; (ग) अपंडित धारा। १२. (ग) दृष्टि··दृष्टि; (ख) में यह चरण यों हैं—अदिसटि मध्यं दिसटि रोपिबा। १३. (ख) अगह अपार; (ग) अगहै अपार।

जीवता बिछायवा[1] मूंवां वोढिबा कवहु न होयबा[2] रागी।
बरसवै दिन काया पलटिबा[3] यूं कोई कोई बिरला[4] जोगी ॥१९३॥
सूरजे[5] षायबा[6] चंद्रे[7] सोयबा[8] उभै न पीबा[9] पांणी।
जीवता कै तलि[9] मूंवा बिछायबा[10] यूं[11] बोल्या गोरष बांणी ॥१९४॥
जहां गोरष तहां ग्यांन गरीबी दुंद[12] बाद नहीं कोई।
निसप्रेही निरदावै षेलै[13] गोरष कहीयै सोई ॥ १९५ ॥

जो जीवित (अथवा प्राणों) को बिछाता और मरे हुए (जड़ शरीर) को ओढ़ता है (अर्थात् अपने साध्य मार्ग में दोनों को संयत और निरुद्ध रखकर उनसे साधनों का काम लेता है) वह रोगी कभी न होगा। इस प्रकार कोई बिरला योगी ही बरस दिन में काया पलट (काया कल्प) कर सकता है ॥ १९३ ॥

जब सूर्य का स्वर चलता हो तब भोजन करना चाहिए और जब चंद्रस्वर हो तब सोना चाहिए, किन्तु पानी दोनों में नहीं पीना चाहिए। जीवित (आत्मा) के नीचे मृतक (जड़ शरीर) को बिछाना चाहिए। (अर्थात् जड़ शरीर का उपयोग आत्मा के लाभ के लिए होना चाहिए,) गोरख ऐसी बाणी बोलता है ॥ १९४ ॥

जहाँ गोरख है, वहाँ ज्ञान, और ज्ञानोद्भव दैन्य रहता है। वहाँ माया-कृत द्वैत भावना (द्वंद्व) नहीं होती और न वाद-विवाद ही होता है। गोरख अथवा परम योगी वह है जिसे कोई कामना (स्पृहा) न हो और जो बिना फल की इच्छा किये हुए निष्काम कर्म करे, (बिना दांव के खेले) ॥ १९५ ॥

---

१. (ख) वीछाईवा; (ग) विछाईवा। २. (ग) होइगा। ३. (ख), (ग) पलटै; (ख) में इसके पहले का पाठ यों है—बरस दिन मैं तीनि बीरीया काया ४. (ख) सो को बीरला; (ग) यो कोई कोई बिरला। ५. (ख) सुरीज; (ग) सूरज। ६. (ख) चंद। ७. (ग) षाइबा ··· सोइब। ८. (ख) पीयवा; (ग) पीवै। ९. (ख) तलै। १०. (ख) वीछाईवा। ११. (ग) यौ; (ख) में नहीं है। १२. (ख) षघ; (ग) दूंद। १३. (ख) पेलै।

गिगनि मंडल मैं गाय[1] बियाई कागद[2] दही जमाया।
छाछि छांणि[3] पिंडता[4] पीवीं[5] सिधां माषण[6] षाया ॥१९६॥
गूदड़ी जुग च्यारि तैं[7] आई। गूदड़ी सिध साधिकां[8] चलाई।
गूदड़ी मैं अतीत का बासा। भणंत[9]गोरषनाथ मछिंद्र का दासा १९७॥
असाध[10]कंद्रप बिरला साधंत कोई। सुर नर गण गंध्रप व्याप्या[11]
बालि सुग्रीव भाई।
ब्रह्मा देवता कंद्रप व्याप्या। यंद्र सहंस्र[12] भग पाई ॥ १९८ ॥

गगन मंडल में अनुभूति के शिखर पर पहुँच कर सिद्धों ने परमानुभूति प्राप्त की (गाय बियाई), उसी का सार (दूध) खींच कर उन्होंने उसे उपनिषदादिक ग्रंथों (कागज) में स्थिर रूप दे दिया (दही जमाया।) पंडितों ने इस दही को छान कर केवल छाछ भर ग्रहण की है, (वह शब्दों में ही फँसे रह गये), किन्तु सिद्धों ने छाछ को छोड़कर मक्खन को ग्रहण किया, (शब्दों को छोड़कर ज्ञान को ग्रहण किया) ॥ १९६ ॥

जोगी लोग गुदड़ी धारण करते हैं, उसी की महिमा में यह सबदी कही गयी है। अतीत, जो परे है, पहुँच के बाहर है, परमात्मा। अतीत सिद्ध योगी को भी कहते हैं जो स्वयं परमात्मा हो गया है। अतिथि से भी उसकी व्युत्पत्ति की जा सकती है।

असाध, असाध्य, जो वश में नहीं होता। सुग्रीव ने बालि को मरा हुआ समझ कर उसकी स्त्री को रख लिया था। इस पर दोनों भाइयों में लड़ाई हुई। ब्रह्मा ने सरस्वती से भोग किया। इन्द्र ने गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या से छल किया। गौतम ऋषि के शाप से उसके शरीर पर सहस्र भग हो गये ॥ १९८ ॥

---

१. (ख) गउ, (ग) गाई। २. (ख) कागदी, (घ) कागद। ३. (ख) मथे मथि, (ग) छाणि छाणि। ४. (ख) पाई, (ग) पाई। ५. (ग) पंडिता, (घ) पिंडतां, (ख) पंडीता। ६. (ख) मापण सीधो। ७. (ख) च्यारि जुगतै, (ग) जुग चारितै। ८. सीधो साधिको, (ग) सिघ सघको। ९. (क) कथंत। १०. (ग) असाधि। ११. (ग) में 'बालि··व्याप्या' नहीं। १२. (ग) इंद्र सहस।

अठयासी सहंस्र[1] रषीसर[2] कंद्रप व्याप्या असाधि विष्न की माया।
यंन कंद्रप ईस्वर[3] महादेव नाटारंभ नचाया ॥ १९९ ॥
विष्न[4] दस अवतार थाप्या[5] असाधि कंद्रप जती गोरषनाथ साध्या।
जनि नींझर झरंता राष्या ॥ २०० ॥
आसति छै हो पिंडता[6] नासति नांहीं अनभै होय परतीति निरंतरिमाहीं
ग्यांन[7] षोजि अमे बिग्यांन[8] पाया। सतिसति भाषंत सिध सति नाथ राया[9]
माता हमारी मनसा बोलिये[10] पिता बोलिये निरंजन निराकार।
गुरू हमारै अतीत[11] बोलिये[10] जिनि किया[12] पिंड[13] का उधारं ॥ २०२ ॥
आपा मांजिबा[14] सतगुर बोजिबा[15] जोग पंथ न करिबा हेला।
फिरि फिरि मनिषा[16] जनम न पायबा करि लै सिध पुरिस[17] सूं मेला २०३

नाटारंभ, नाट्यारम्भ। नाट्यकला के अधिष्ठाता शिव माने जाते हैं। शिव ने भी स्त्री की ॥ १९९ ॥

विष्णु के अवतारों की स्त्रियाँ हुईं ॥ २०० ॥

नीझर झरता राष्या, सहस्रार स्थित चन्द्र से प्रस्रवित होते हुए अमृत निर्झर की रक्षा की, उसको सूर्य से शोषित किये जाने से बचाया ॥ २०० ॥

आसति, अस्ति, आस्तिकता का भाव। पिंडता, पंडित। नासति, नास्ति, नास्तिकता का भाव ॥ २०१ ॥

मनसा, इच्छा, माया। अतीत, योगी ॥ २०२ ॥

अहंकार को तोड़ना चाहिए, सद्गुरु की ढूंढ करनी चाहिए। योग-पंथ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। फिर फिर मानव योनि नहीं मिलती। इसलिए सिद्ध पुरुषों का सत्संग कर लो ॥ २०३ ॥

१. (ग) सहस। २. (ग) रूषीस्वुर। ३. (ग) इनि कंदरप ईश्वर। ४. (ग) विष्नु। ५. (ग) में 'असाधि…राष्या' नहीं। ६. (ग) हों पंडिता नासती। ७. (ग) ग्यानं। ८. (ग) बीग्यांन। ९. (ग) में संतनाथ राय। १०. (ग) बोलिजै (घ) में सर्वत्र 'बोलीए'। ११. (ग) अती पुरुष। १२. (ग) कीया। १३. (ग) प्यंड। १४. (ख) आप न भाजिबा; (ग) आपा भाजिबा। १५ (ख) षुजिवा। १६. (ग) मानषा। १७. (ख) पुरिषस्यं; (ग) पुरिष स्यौं।

थंभ विहूँणी गगन रचीलै तेल विहूँणी बाती।
गुरु[1] गोरष के वचन पतिआया[2] तब द्यौंस नहीं तहां[3] राती ॥ २०४
षंडित ग्यांनी षर तर बोलै सति का सबद उछेदै।
काया कै बलि करड़ा बोलै भीतरि तत्त न भेदै ॥ २०५ ॥
महमां[4] धरि महमां[4] कूं मेटै सति का सबद विचारी।
नांन्हां होय[5] जिनि[6] सतगुर षोज्या तिन[7] सिर की पोट उतारी॥२०
एक कांमध्येनि वारि सिधि[8] कै गगन सिषर लै[9] बांधी।
लागि जीव ऊपरि वारि[10] सिधि की[11] ल्यौ निरंजन सूं[12] सांधी॥२०

जब गुरु गोरखनाथ के वचनों पर विश्वास हो गया, तब खंभे के बि
स्थित आकाश (ही में) तेल और बत्ती के बिना (ज्ञान का) प्रकाश सिद्ध
गया। तब साधक के लिए रात दिन का प्रश्न नहीं रह जाता। (क्योंकि
सदा ज्ञान के प्रकाश में विचरण करता रहता है) ॥ २०४ ॥

जो खंडित (अधूरा) ज्ञानी है वही तीखी (प्रखर) बातें बोलता
और (इस प्रकार) सत्य के शब्द का उच्छेद करता है, (उसे उखाड़ फेंक
है।) उसके आभ्यंतर में तत्व का प्रवेश नहीं होता (उसे ज्ञान तो ह
नहीं है।) (शरीर ही को वह सब कुछ समझता है, इसीलिए) शरीर
बल पर वह करड़े (कठोर) वचन कहता है ॥ २०५ ॥

महिमावान् होकर भी जो अपने आपको महिमावान् नहीं समझते, वि
(नन्हा, छोटा) होकर जो सद्गुरु की खोज करते हैं उन सत्य शब्द का विच
करने वालों ने सिर से (कर्मों की) पोटली उतार दी है ॥ २०६ ॥

सिद्ध के दरवाजे एक कामधेनु (आध्यात्मिक अनुभूति अथवा समाधि
है जिसे उसने गगन शिखर में ले बाँधा है, (जहाँ स्वयं उसका निवास है।
जीव (जो उसे प्राप्त करना चाहता है,) स्वयं वाड़ (बाड़े) में विर ग
(निरुद्ध अवस्था को प्राप्त हो गया) और निरंजन में उसने लौ लगाई
साँधी, संधान की, लगा ली ॥ २०७ ॥

---

१. (ख) गरु; (ग) गुरु। २. (ख) तब पतीयाई। ३. (ख) जब पुता
राती; (ग) तब दिवस न राती। ४. (ग) मैहमा; (ख) महैमा। ५. (ख) ह
६. (ग) 'जिनि' नहीं है। ७. (ग) जिनि; (घ) जिनि। ८. (म) सिध। ९. (
ले। १०. (ग) लागी जीव उपरि वार। ११. (ग) ला। १२ (ग) ल्यौं सांध

आफू षाय[1] भांगि भसकावै[2] । ता मैं अकलि[3] कहां तैं[4] आवै ।
चढ़तां पित्त[5] ऊतरतां बाई । तातैं गोरष भांगि न षाई ॥२०८॥
मिंदर[6] छाडै कुटी बंधावै । त्यागै माया और[7] मंगावै ।
सुन्दरि छाडै नकटी बांसै । तातैं[8] गोरख अलगै[9] न्हासै[10] ॥२०९॥
त्रिया न स्वांति (? सांति) वैद र रोगी[11] रसायणी[12] अर जांचि[13] षाय ।
बूढा न जोगी सूरा न पीठि पाछैं[14] घाव यतनां[15] न मानैं श्रीगोरषराय ॥२१०॥

जो अफीम खाता है और भाँग का भक्षण करता है उसको बुद्धि कहाँ से आवै । भाँग खाने से पित्त चढ़ता है और वायु उतरती है, इस लिए गोरख ने भाँग नहीं खायी ॥ २०८ ॥

(लोग जोग तो लेते हैं पर लेना नहीं जानते, एक माया से दूसरी माया में फँस जाते हैं) मकान छोड़ कर कुटी छवाते हैं, घरबार की माया छोड़ते हैं पर चेला चाटियों से भिक्षा माँगने का काम कराते हैं। घर की सुन्दर स्त्री को छोड़ कर नकटी के साथ रहते हैं, इसी से गोरख (किसी को साथ नहीं लेता), अलग ही चलता है । न्हासै, चलता है । कुमाँवनी में 'न्हाना' जाने के अर्थ में आता है, एक ही प्रयोग उसका पाया जाता है सामान्य भूत में, जैसे 'न्है गे' या 'न्हैगीं' (चला गया या चले गये) ॥ २०९ ॥

स्त्री साथ रहने से शांति नहीं रह सकती अथवा जो स्त्री स्वाति जल के लिए चातक की लगन के समान पति प्रेम नहीं रख सकती वह स्त्री नहीं। वैद्य अगर वस्तुतः वैद्य है तो उसे रोग नहीं व्याप सकता । रसायनी को, जो लोहे आदि नीची धातुओं को सोने में बदलने का दावा करता है, माँग कर खाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए, जोगी को बुढ़ापा नहीं आना चाहिए । शूर की पीठ पर घाव नहीं हो सकता । यदि इन लोगों में ये बातें पायी जायं

---

१. (ख) पीवै तमाषु; (ग) आफू षाइ र । २. (ग) व सकावे । ३. (ख) अकली । ४. (ग) कहा स्यां; (ख) कहां तै । ५. (ख) व्यंद । ६. मदू; (ख) म्यंदर । ७. (ख) फेरि; (ग) ओर । ८. (ख) तात; (ग) तरन्यौं (? तास्यौं) ९. (ख) अलगा । १०. (ग) नासै । ११. (ग) वैद र रीगो (? रोगी) १२. (ग) रसांइनी । १३. (ग) जाच । उसके पहले 'अर' नहीं है। १४. (ग) पाछै । १५. (ग) इतना; (ख) में यह सबदी इस प्रकार है—
बुढा जोगी वैद रोगी सुरीवा अर पीठी पीछे घाव । येता न वंदे गोरष रावा ।

हंड ब्रह्मण्ड चहोड़ीया मानूं वेस्या अंन ।
कोई कोई कोरड़ रह गया यूं भाषै नाथ रतंन[1] ॥२११॥

(ख) और (घ) में के अधिक सबदियां

निंद्रा सुपनै[2] विंद कूं[3] हरै । पंथ चलंतां आतमां[4] मरै ।
बैठां[5] षटपट ऊभां[6] उपाधि । गोरख[7] कहै पूता सहज[8] समाधि ॥२१२॥
सूकै कंठ अरु भूष संतापै । देह बिसर अर निंद्रा व्यापै ।
बुधि बिन वकै विकल होय जाय । तातैं गोरष भांगि न षाय ॥२१३॥
रूसता रूठा गोला-रोगी । भोला भछिक भूषा भोगी ।
गोरष कहै सरबटा जोगी । यतनां मैं नहीं निपजै जोगी ॥२१४॥

(ग) और (घ) में के अधिक सबदियां

अवधू अहार[9] कूं तोडिवा पवन कूं मोड़िबा[10] ज्यूं[11] कबहु न होयबा[12] रोगी
छठै छमासि[13] काया पलटंत नाग बंग बनासपती जोगी ॥२१५॥

तो ये क्रमशः वैद्य, रसायनी और जोगी आदि नहीं हैं ॥२१०॥

रतननाथ कहता है कि मैं मानता हूँ कि समस्त ब्रह्मांड वेश्या (माया) के अन्न पर पलता है इस लिए उसके शासन में (चहोड़िया) है । कोई विरला ही उसके प्रभाव से कोरा है । चहोड़ना, चित्त पट अगल बगल चारों तरफ से पीटना (गढ़वाली बोली में) ॥ २११ ॥

नींद स्वप्न में शुक्र का नाश करती है । मार्ग चलने से थकान के कारण आत्मा को अवसाद होता है । (बेकाम) बैठे रहने से खटपट सूझती है । खड़े होने से उत्पात होता है (इसलिए हे पुत्र ! गोरष का कथन है कि सहज समाधि में सर्वदा लीन रहना चाहिए ॥ २१२ ॥

बिसर, विस्मरण, यहाँ पर चेतनाहीन अर्थात् जड़ (हो जाती है) ॥२१३॥

गोला रोगी, वायु गोला का रोगी । भछिक, बहुत खाने वाला । सरबटा, जिसके बाल बटे हों ॥ २१४ ॥

---

१. यह साखी भी स्पष्ट ही रतननाथ की है । २. (ख) न्यंद्रा सुपनै । ३. (ग) ब्यंदह्नु । ४. (ख) चलता आतम । ५. (ख) घट पट । ६. (ख) ऊपाधि । ७. (ख) नाथ । ८. (ख) सहजि । ९. (ग) आहार कु । १०. (ग) कुंपलटिया । ११. (ग) ज्यों । १२. (ग) कबहु न होइगा । १३. (ग) छमासा ।

सूरां[1] का पंथ हारयां का बिसराम सुरता लेहु विचारी।
अपरचै पिंड[2] भिष्या षात है अंति कालि होयगी[3] भारी ॥२१६॥
उलटी सकति[4] चढ़ै ब्रह्मंड नष सष[5] पवनां षेलै सरबंग।
उलटि चन्द्र राह कूं ग्रहै[6]। सिध सङ्केत जती गोरष कहै ॥२१७॥
धरे[8] अधर बिचारीया धरी याही मैं सोय[9]।
धरे[8] अधर परचा हूवा तब दुतीया नाहीं कोय[9] ॥२१८॥
जिभ्या इन्द्री एकै नाल। जो राषै सो वंचै काल।
पंडित ग्यांनी न करसि[10] गरब। जिभ्या जीती[11] जिन जीत्या सरब[12] ॥२१९॥

शूर (साधक) को तो सदा मार्ग पर ही चलना है। विश्राम उसी के लिए है जो हारकर अपने आपको काल के हाथ कर चुका है। हे श्रोताओ इस बात को विचार लो, जिसको इसी शरीर में ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो गया (अपरिचय) है और फिर भी जो भिक्षान्न खाता है, उसको अंतकाल में कठिनाई हो जायगी ॥ २१६ ॥

कुंडलिनी शक्ति जब उलट कर ब्रह्मांड में पहुँच जाती है, और नख से शिख तक सर्वाङ्ग में वायु व्याप्त हो जाती है (नाथ-शब्दावली में, वायु-भक्षण होने लगता है) तब (उलटा सहस्रारस्थित अमृत-प्रस्रावक) चंद्रमा ही राहु (अर्थात् आधार पद्मस्थित ग्रसने वाले सूर्य) को ग्रस लेता है (जिससे अमृत का पान संभव होता है।) यही गोरख ऐसा सिद्ध सङ्केत कहता है ॥२१७॥

धरा (पांच-भौतिक शरीर) में ही जब पंच-भूतों से परे रहने वाले परब्रह्म (अधर) का विचार किया तो उसे इसी पांचभौतिक शरीर में पाया। इस प्रकार जब धरा ही में अधर (ब्रह्म तत्त्व) का परिचय (साक्षात्कार) हो जाता है तब अद्वैत की सिद्धि हो जाती है ॥ २१८ ॥

एकै नाल, एक परब्रह्म के साथ, भगवत्स्मरण के द्वारा। वंचै काल, काल को धोखा देता है ॥ २१९ ॥

---

१. (ग) सुरा...हारया। २. (ग) प्यंड। ३. (ग) अंतकाल होइगी। ४. (घ) सुरति। ५. (ग) नष चष। ६. (ग) रीह कु गहै। ७. (ग) श्री गोरषनाथ ८. (ग) धरै। ९. (ग) सोइ...नहीं कोइ। १०. (ग) ग्रबै (?)। ११. (ग) तिन। १२. (घ) ग्रब।

गोरख कहै हमारा षरतर पंथ। जिभ्या इन्द्री दीजै बन्ध।
लोग जुगति मैं रहै समाय। ता जोगी कूं काल न षाय ॥२२०॥
वरष एक देखिले हो[1] पंडिता तत एक चीन्हिवा सबदैं सुरति समाई।
गोरखनाथ बोलै भ्रम न भूलिवा रे भाई॥ २२१॥
अबूझि बूझिलै[2] हो पंडिता अकथ कथिलै कहांणी।
सीस नवांवत सतगुर मिलीया जागत रैंण बिहांणी॥ २२२॥
विद्या पढ़ि र[3] कहावै ग्यांनी। बिनां अविद्या कहै अग्यांनी।
परम तत का होय न मरमी। गोरष कहै ते[4] महा अधरमी॥ २२३॥
पंथ चले चलि पवनां तूटै[5] तन छीजै तत जाई।
काया तैं[6] कछु अगम बतावै ताकी मूंछू[7] माई॥ २२४॥

केवल (ख) में अधिक सबदियाँ

महमंद महमंद न करि काजी महमंद का बौहोत बिचारं[8]।
महमंद साथि पैकंवर सीधा ये लप अजी हजारं॥ २२५॥

परतर, अति प्रखर, अति, तीचण, अति कठिन॥ २२०॥

वरप (विरख), वृक्ष, ब्रह्म के ऊपर अधिष्ठित जगत्॥ २२१॥

हे पंडित न जानने योग्य को जानो। जो नहीं कहा जा सकता उसकी कथा कहो। सिर नवाते ही (हृदय में वास्तविक श्रद्धा और लगन उत्पन्न होते ही, सीस नवाना जिसका बाहरी लक्षण है) सद्गुरु से साचात् हो जाता है और परिणाम में जागते-जागते (ज्ञानावस्था में) इस (अज्ञानमय जीवन रूप) रात्रि का प्रभात हो जाता है॥ २२२॥

काया से अगम्य तत्त्व भी नहीं है। क्योंकि ब्रह्म का निवास भी हमारे शरीर में ही है। मिलाइए पीछे के सं० ६ और १० से॥ २२४॥

सीधा, साधना के लिए यत्न किये, पचमरे। ये···हजारं=हजारों-लाखों अथवा एक लाख अस्सी हजार। निरंजन पुराण में भी एक लाख अस्सी हजार पीर पैगम्बरों का उल्लेख हुआ है—

---

१. (ग) है। २. (घ) बूझिवा। ३. (ग) कर। ४. (ग) तैं। ५. (ग) तूटे। ६. (ग) ते। ७. (ग) मुंडी। ८. (ख) वीचारं।

जीव सीव संगे वासा । बधि[1] न षाइबा रुध्र मासा ।
हंस घात न करिबा गोतं । कथंत गोरष निहारि पोतं ॥ २२७ ॥
जीव क्या हतिये रे प्यंड धारी । मारि लै पंचभू म्रगला ।
चरै थारी बुधि वाड़ी । जोग का मूल है दया दाण ।
कथंत गोरष मुकति लै मानवा मारि लै रै मन द्रोही ।
जाकै बप वरण मास नहीं लोही ॥ २२८ ॥
जिनि मन ग्रासं देव दाण । सो मन मारिले[2] गहि गुरु ग्यांन बांण॥२२९
जोगी सो जो राषै जोग । जिभ्या यंद्री न करै भोग ।
अंजन छोडि निरंजन[3] रहै । ताकू गोरष जोगी कहै ॥ २३० ॥
सुंनि[4] ज माई सुंनि[4] ज बाप । सुंनि[4] निरंजन आपै आप ।
सुंनि[4] कै परचै भया सथीर । निहचल जोगी गहर गंभीर ॥२३१॥

'एक लाप असी हजार पीर पैगम्बर पुकारै' ॥२२५॥

२२६ वीं सबदी इसलिए हटा दी गई है कि उसमें सांप्रदायिक असद्भाव समझा जा सकता है।

जीव और ब्रह्म का एक ही साथ निवास है। इसलिए हत्या करके रक्त-मांस का सेवन मत करो। प्राण-घात मत करो। सब को अपने ही गोत्र अथवा कुल का समझो। गोरख कहते हैं, अपने बच्चों (पोत, पूत, पुत्र) को देखो। (सब प्राणी उन्हीं जैसे हैं।) ॥ २२७ ॥

हे शरीर धारियो, जीव हत्या क्या करते हो, पांचभौतिक मन-रूप मृग को मारो जो तुम्हारी बुद्धि-रूप वाड़ी को चर रहा है। अरे, योग का मूल ही दया-दान है। गोरख कहते हैं कि हे मनुष्य मुक्ति के अर्थ इस द्रोही मन को मारो, जिसके न शरीर है, न मांस है, न रक्त है और न वर्ण है। ॥२२८॥

जिस मन ने देव-दानव सब को ग्रस लिया है, उसे गुरु के ज्ञान का बाण पकड़ कर मार ॥२२९॥

योगी वह है, जो योग की रक्षा करता है, जिह्वा आदि इन्द्रियों से भोग नहीं करता है। जो माया (अंजन) को छोड़ कर ब्रह्म (निरंजन) में लीन हो कर) रहता है उसी को गोरख जोगी कहता है ॥२३०॥

शून्य (समाधि-अवस्था) ही माता है, वही पिता है, वही स्वयं निरंजन

---

१. (ख) ब्रधि । २. (ख) मारीलै । ३. (ख) नीरंजण । ४. (ख) सुनि ।

सजौ कुलती मेटौ भंग । अह निसि राषौ ओजुद[1] बंधि । //
सरव संजोग आवै हाथि । गुरु[2] राषै निरबाण समाधि ॥२३२॥
अकुच कुचीया विगसिया[3] पोहा । सिधि परिजलि उठी लागिया[4] धुवा ।
कहै गारषनाथ धुवा प्राण । ऐसे पिंड का परचा जाणै प्राण ॥२३३॥
अवधू यो मन जात है याही तै सब जांणि ।
मन मकड़ी का ताग ज्यूं उलटि अपूठौ आंणि ॥ २३४ ॥
जे आसा तो आपदा जे संसा तो सोग ।
गुर मुषि विना न भाजसी (गोरष) ये दून्यों बड़ रोग ॥२३५॥

ब्रह्म है । शून्य (समाधि) परिचय प्राप्त होने पर स्थैर्य प्राप्त होता है और योगी गांभीर्य को प्राप्त कर निश्चल हो जाता है ॥२३१॥

कुलथी (एक प्रकार की निकृष्ट दाल; यहाँ पर वह सब प्रकार के निःसत्त्व मोटे अन्न की ओर संकेत करता है ।) को छोड़ दो, भाँग (की आदत) ही मिटा डालो । रात दिन शरीर को बंधन में (संयत) रक्खो । इस प्रकार सर्वतो भाव से सम्यक् योग सिद्ध हो जावेगा । और गुरु कृपा कर निर्वाण समाधि की रक्षा करेगा ॥२३२॥

अकुंचित अर्थात् विषयों में बिखरा हुआ मन प्रत्याहार के द्वारा सिमट गया है, कुंचित हो गया है । और ब्रह्मरूप माला में पिरोया जाकर जीव-पुष्प खिल उठा है । इस प्रकार सिद्धि प्रज्वलित हुई और धुवां उठने लगा । यह धुवां प्राण ही है । (जैसे धूम अग्नि का होना सिद्ध करता है, वैसे ही प्राणों का ऊपर उठकर ब्रह्मरंध्र में स्थित होना सिद्धि प्राप्ति का लक्षण है ।) शरीर इस प्रकार सिद्ध हो गया है, इसका परिचायक प्राण ही है ॥२३३॥

हे अवधूत ! यह मन जा रहा है ! इसीसे सब कुछ की उत्पत्ति होती है, यह जान लो । मकड़ी के तार की तरह मन को उलट कर वापिस ले आओ ।

अपूठौ (पूठौ 'अ' का आगम यों ही हो गया है), पीठ की तरफ अर्थात् जहाँ से कोई आया हो, वहीं उलटे ॥२३४॥

जो आशा करते हैं उन्हें आपत्ति झेलनी पड़ती है और जो संदेह करते हैं, उन्हें शोक । ये दोनों (आशा, संशय) बड़े रोग हैं गुरु के मुख से शिक्षा प्राप्त किये बिना ये भागेंगे नहीं ॥२३५॥

---

१. (ग) गब । २. (ख) ओड़ । ३. (ख) वीगसीया । ४. (ख) लागीया ।

इस ओजुदा मैं मारि लै गोता, कछु भगज भीतरि ख्याल रै।
पंच कटार है भीतरि, निमस करि बेहाल रै ॥ २३६ ॥
व्यंद व्यंद सब कोइ कहै। महाव्यंद कोइ विरला लहै।
इह व्यंद भरोसे लावै बंध। असथिरि होत न देषो कंध ॥ २३७ ॥
उलटै मूल डाल नहीं रहै। फाड़ि कछोटा रात्यौं बहै।
न वोह छीजै ना वोह गलै। व्यंद नहीं सो भगभुप ढलै ॥२३८॥
बिणि[1] वैसंदर जोति बलत है गुर प्रसादे दीठी।
स्वामी सीला अलुणी कहिये[2] जिनि चीन्हा तिन[3] दीठी ॥२३९॥
ऊजल मीन सदा रहै जल मैं सुकर सदा मलीना।
आतम ग्यांन दया बिणि[1] कछु नाहीं कहा भयौ तन षीणा ॥२४०॥

यदि मस्तिष्क में कुछ भी विचार शक्ति है तो इसी शरीर में गोता मारो (क्योंकि सब कुछ इसी में स्थित है।) पांच (पंचेंद्रियाँ जो मन का साथ देती हैं) को (मारने वाली) कटार भीतर ही है उसके द्वारा इन्हें बेहाल करके मार ॥२३६॥

बिंदु बिंदु बोलते तो सब हैं, किन्तु महा बिंदु (ब्रह्म तत्व) को कोई विरला ही प्राप्त करता है। आध्यात्मिक अनुभूति के विना जो बिंदु (शुक्र) मात्र के अर्थ बंध क्रिया का आसरा ग्रहण करता है उसका शरीर (स्कंध) स्थिर होता नहीं देखा गया है ॥२३७॥

शुक्र-रक्षा के साथ साथ ब्रह्मानुभूति की आवश्यकता इस सबदी में बताई है ॥२३८॥

विना अग्नि के ज्योति प्रकाशमान होती रहती है, जो गुरु के प्रसाद से मुझे दिखाई दी है। हे स्वामी जिसने शिलवृत्ति को जिसमें नमक भी नहीं ग्रहण किया जाता, पहचाना है, अर्थात् वास्तविक रूप में ग्रहण किया है उसी को ज्योति के दर्शन होते हैं। वैसंदर, वैश्वानर, । सीला, शिल वृत्ति। खेत के स्वामी के सब अन्न ले लेने पर अन्न के जो दाने खेत में बच जाते हैं, उन्हें इकट्ठा कर निर्वाह करना शिलवृत्ति कहलाता है ॥ २३९ ॥

मछली सदा जल में रहने से स्वच्छ रहती है, और सुअर विष्ठा कीच

---

१. (ख) बीणि। २. (ख) कहीये। ३. (ख) तीन।

धोतरा[1] न पीवो रे अवधू भांगि[2] न षावौ रे भाई ।
गोरष कहै सुणो रे अवधू या काया होयगी पराई ॥ २४१ ॥
सांइ सहेली सुत भरतार सरव सिसटि कौ एकौ[3] द्वार ।
पैसता पुरिस[4] निकसता पूता ता कारणि गोरष अवधूता ॥२४२॥
राष्या रहै गमाया जाय सति सति भाषंत श्री गोरषराय ।
येकै कहि दुसरै मानी गोरष कहै वो वड़ो ग्यानी ॥ २४३ ॥
च्यंत अच्यंत ही उपजै च्यंता सब जुग षीण ।
जोगी च्यंता वीसरै तौ होइ अच्यंतहि[5] लीन ॥ २४४ ॥

आदि ही में सुख पाता है, इसलिए मलिन रहता है । (यह दोनों का स्वभाव है) इससे एक की प्रशंसा और दूसरे की निंदा नहीं हो सकती । (इसी प्रकार) योगी का शरीर-शोधन और बाहरी आत्मज्ञान किसी काम का नहीं है, यदि उसने अन्तरतल में प्रवेश कर उसे दयालु नहीं बना दिया है । तप से यदि शरीर क्षीण भी हो गया है और भीतरी बातों का अभाव है तो भी क्या हुआ ? (वह तब भी किसी काम का नहीं) ॥ २४० ॥

धोतरा, धतूरा ॥२४१॥

नारी मात्र को माता समझकर गोरख ने वैराग्य ले लिया है ॥२४२॥

रक्षा करने से चीज़ रहती है, न रक्षा करने से, गवाँ देने से चली जाती है, नष्ट हो जाती है । यह गोरखनाथ का सत्य वचन है । जो कहता है एक बात पर उसे प्रतीक मानकर अर्थ लेता है दूसरा, गोरखनाथ कहते हैं वह बड़ा ज्ञानी है ।

नोट—जान पड़ता है कि ये दो सबदियों के आधे अंश हैं, संभवतः पहला अंश ब्रह्मचर्य पर ज़ोर देता है और दूसरा योगियों की प्रतीकों के सहारे अपने मनोभावों को प्रकट करने की प्रथा की ओर संकेत करता है ॥२४३॥

चिंता अचिंतित (अप्रत्याशित रूप से) ही उपज जाती है ; चिंता के कारण सारा संसार क्षीण हो रहा है । योगी चिंता को भूल जाता है । (और इस प्रकार) अचिंत्य परब्रह्म में लीन हो जाता है ॥२४४॥

---

१. (ग) धोतरा । २. (ग) भागि । ३. (ग) येको । ४ (ख) पुरीष । ५. (ख) ही ।

गिरही[1]को[2]ग्यांन अमली को ध्यांन। बूचा[3]को[2]कान बेस्या को मान।
बैरागी[4] अर माया स्यूं[5] हाथ या पांचां[6] को एको साथ ॥ २४५ ॥
गिरही होय करि कथै ग्यांन, अमली होय करि धरै ध्यान।
बैरागी होय करै आसा, नाथ कहै तीन्यो पासा पासा ॥ २४६ ॥
रांड मुवा जती, धाये भोजन सती गये धन त्यागी।
नाथ कहै ये तीन्यौ अभागी ॥ २४७ ॥
पढि पढि पढि केता मुवा कथि कथि कथि कहा कीन्ह।
बढि बढि बढि बहु घट गया पारब्रह्म नहीं[7] चीन्ह ॥ २४८ ॥
सति सति बोलै गोरष राणा।
तीनि जणै का सङ्ग निवारो[8] नकटा बूचा[3] काणा ॥ २४९ ॥
कदे न सोभै सुन्दरी सनकादिक के साथि।
जब तब कलंक लगाइसी[9] कालो हांडी हाथि* ॥ २५० ॥

गृहस्थ का ज्ञान, व्यसनी का ध्यान, बूचा के कान, वेश्या का मान और वैरागी का माया में हाथ डालना (अर्थात् माया को चाहने वाले का वैराग्य) इन पाँचों का एक ही साथ है। अर्थात् इन पाँचों का अस्तित्व नहीं है। गृही को ज्ञान नहीं होता, व्यसनी ध्यान नहीं कर सकता, बूचे का कान नहीं होता, वेश्या का मान नहीं होता और विरक्त माया से सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता या माया से सम्बन्ध रखने वाला विरक्त नहीं हो सकता ॥२४५॥

पासा पासा, अच्छी तरह पाश में बँधे हुए हैं ॥२४६॥

स्त्री के मर जाने पर जो यती (योगी) होता है, दौड़ कर लोगों के यहाँ भोजन पाने के अर्थ जो सती (साधु) होता है और धन के नष्ट हो जाने पर जो त्यागी होता है, नाथ कहते हैं ये तीनों अभागे हैं ॥ २४७ ॥

जो विकलांग होने के कारण जोगी (या जोगिनी) हो जाते हैं, हार्दिक वैराग्य के कारण नहीं उनका साथ त्याग देना चाहिए ॥ २४८ ॥

---

* यह सबदी बीजक के 'साखी' अंग में कबीर की मानी गई है।
१. (ख) गीरही। २. (ख) कौ। ३. (ख) बुचा। ४. (ख) बेरगी। ५. (ख) स्युं। ६. (ख) पाचा। ७. (ख) नहीं। ८. (ख) नीवारौ। ९. (ख) लगाई सी।

पासि बैठी सोभै नहीं साथि रमाई भुंडि[1] ।
गोरष कहै असतरी कहा सत्‍लह कह मुण्डि[1] ॥ २५१ ॥
जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै झरणा मरि मरि जाय ।
षोजै तन मिलै अविनासी[2] अगह अमर पद पाय ॥ २५२ ॥
जपतप जोगी संजम सार । वाले कंद्रप कीया छार ।
येहा जोगी जग मैं[3] जोय । दूजा पेट भरै सब कोय ॥ २५३ ॥
जोगेसर की इहै परछ्‍या, सबद विचारया[4] षेलै ।
जितना लाइक वासण होवैं, तेतो तामै मेल्है ॥ २५४ ॥
चापि भरै तौ वासण फूटै वारै रहै तौ छीजै ।
बसत घणेरी वासण वोछा कहो गुर क्या कीजै ॥ २५५ ॥

भुंडि, भोंडी । सत्‍लड़, सीधी, अदीक्षित, पाखंडरहित । मुंडि, मूंडी हुई, जिसने योग ले लिया हो ॥ २५१ ॥

जरणा जोगी, शुक्र को अथवा ब्रह्मानुभूति को पचाने वाला अर्थात् स्थिर करने वाला जोगी जुग जुग जीता है और जो उसे झड़ जाने देता है, स्थिर नहीं होने देता वह मर जाता है । जो इसी शरीर में अविनाशी को खोजता है वह अग्रहणीय अमर पद को प्राप्त करता है ॥ २५२ ॥

जो जप तप करता है, संयम को सार वस्तु समझता है, बाल्यावस्था में ही जिसने काम को जला कर राख कर दिया है, ऐसे ही को जग में जोगी समझना चाहिए । और तो सब पेट भराई करते हैं ॥ २५३ ॥

योगीश्वर की परीक्षा यही है कि वह शब्द का विचार करके व्यवहार करे । शिष्य गण जितने के अधिकारी हों उतना ही ज्ञान उन्हें दे । मेल्है, डाले, नावे ॥ २५४ ॥

बर्तन में खूब दबा करके भरने से बर्तन फूट सकता है, बहुत ठूंस करके शिष्य में ज्ञान भरने से वह उसके अनुसार कार्य न कर सके और समस्त मार्ग ही को छोड़ दे और यदि कुछ बाहर रहने दिया जाय तो जितना अंश

---

१. (ख) भुंडी—मुंडी । २. (ख) अमीनासी । ३. (ख) जुग मैं । ४. (ग) बीचारया ।

अवधू सहजै लैणा सहजै दैणा सहजै प्रीती ल्यौ लाई।
सहजै सहजै चलैगा रै अवधू तौ बासण करैगा समाई ॥ २५६ ॥
तूंबी मैं तिरलोक समाया त्रिवेणी रिव[1] चंदा।
बूझो[2] रे ब्रंभ गियानी[3] अनहद नाद अभंगा ॥ २५७ ॥
सत्यो सील दोय असनान त्रितीये[4] गुर बायक।
चत्रथे षीषा असनान पंचमे दया असनान।
ये पंच असनान निरमला[5] निति प्रति[6] करत गोरख बाला ॥ २५८ ॥
त्रियाजीत[7] ते पुरिषा[8] गता मिलि[9] भानंत ते पुरिषा गता।
बिसासघातगी पुरिषा गता कायरौ तत ते पुरिषा गता।

बाहर रहेगा वह नष्ट हो जायगा। वस्तु है अधिक बर्तन है छोटा, कहो हे गुरु क्या उपाय किया जाय ॥ २५५ ॥

गुरु का उत्तर है कि हे अवधूत सहज स्वाभाविक रूप से शिष्य की मायिकता को लेकर (हटा कर) उसके स्थान में ज्ञान देना चाहिए। सहज स्वभाव से प्रीति और लौ लग जायगी। सहज सहज (स्वाभाविक) रूप से प्रयत्न किया जायगा तो पात्र स्वयं बड़ा हो जायगा और उसमें सब समा जायगा ॥ २५६ ॥

(ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ है सब माया के अंतर्गत है, ब्रह्मानुभूति तक पहुँचने के लिए जितने साधन अथवा सहायक सामग्री है, वह भी माया के अन्तर्गत है।) माया की तूम्बी में बीज रूप से समस्त त्रैलोक्य, त्रिकुटी (त्रिवेणी) और सूर्य चन्द्र भी समाये हुए हैं। इसलिए हे ब्रह्मज्ञानियो कभी न भङ्ग होने वाले अनाहत नाद को (सुनो और) समझो, (यह तुम्हें माया के क्षेत्र से बाहर पहुँचा देगा।) ॥ २५७ ॥

गुरुवाइक (वाचक)-गुरु बाणी को ग्रहण करने वाला या ग्रहण करना।

षीषा (?), सम्भवतः सीषा अर्थात् शिष्य परम्परा चलाना, जो गुरु से प्राप्त किया, उसे औरों को दान देना ॥ २५८ ॥

---

१. (ख) रीव। २. (ख) बोझो। ३. (ख) ब्रमगीयानी। ४. (ख) त्रीतीये। ५. (ख) नारमला। ६. (ख) नीति पती। ७. (ख) त्रीयाजीत। ८. (ख) सर्वत्र 'पुरीवा'। ९. (ख) मीली।

सकति अहेड़ै मिस रिध[1], कोस वल स्यूं[2] वागो।
गोरष कहैं चालती मारू[3], कान गुरू[4] तौ लागो[5] ॥२६८॥
नाथ कहै मेरा दून्यौ[6] पंथ पूरा। जत नहीं तौ सत कानीसूरा[7]।
जत सत किरिया रहणि हमारी। और वलि वाकलि देवि तुम्हारी॥२६९
कथणी कथै सो सिष वोलिये[8], वेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरू[10] हमारा, हम रहता का साथी ॥२७०॥

दान देते हैं योगी इसीसे भिक्षा मांगते हैं कुंडलिनी शक्ति-स्वरूपा अर्थात् माया है। गृहस्थ का जंजाल माया को अधिकाधिक स्थूल बनाता जाता है जिससे कुंडलिनी सो जाती है। माया की स्थूलता का हरण कर योग कुंडलिनी को जागृत करता है। मणिपूर चक्र में कुंडलिनी का निवास माना जाता है। मणिपूर चक्र को और उस के संसर्ग से कुंडलिनी को भी, धरती कहते हैं।

पश्चिम, पश्चात् भाग अर्थात् सुषुम्ना या साधकावस्था अथवा माया ॥ २६७ ॥

शक्ति ने मृगया में ऋद्धि और कोप के बहाने बलपूर्वक हल्ला बोल दिया। (किन्तु मैंने भी) गुरु से दीक्षा तब प्राप्त की है, (गुरु का चेला तब हूं) जब चलती ही को मार डालूं ॥ २६८ ॥

नाथ कहते हैं कि मेरे दोनों पंथ पूरे हैं। शारीरिक संयम (यत) और हृदय का दृढ़ भाव (सत) (ये दोनों एक दूसरे के बिना चल नहीं सकते) बिना जत के, सत के शूर भी नहीं हो सकते, यत और सत की क्रिया हमारी रहनी है और हे देवि! (माया!) बलि और बकरे (बाकलि (? रि)) तुम्हारे ॥ २६९ ॥

जो कथनी कहा करता है, वह हम से छोटा है, वेद पाठी उससे भी छोटा और जो रहनी रहता है वह हम से श्रेष्ठ है, (हमारा गुरु है) जो रहनी रहता है (अथवा जो सतत्त्व, रहता, अथवा रहने वाला है) हम उसके साथी हैं ॥ २७० ॥

---

१. (ग) रीध। २. (ख) स्युं। ३. (ख) मारु। ४. (ख) गरु। ५. (ख) लागो। ६. (ग) दुन्यौ। ७. (ख) सुरा। ८. (ख) कारीया। ९. सीष वोलीये १०. (ग) गुरु।

रहता[1] हमारै गुरु[2] बोलिये[3], हम रहता[4] का चेला।
मन मानै तौ संगि फिरै[5], नहिंतर फिरै[5] अकेला ॥२७१॥
दरसण माई[6] दरसण बाप। दरसण माहीं आपै आप।
या दरसण का कोई जाणै भेव। सो आपै करता आपै देव ॥२७२॥
जिनि[7] जाण्या तिनि[8] षरा पहैचाण्या, वा अटल स्यूं[9] लो लाई।
गोरष कहै असे कानां[10] सुणता, सो आंष्यां[11] देष्या रै भाई।

केवल (घ) में अधिक सबदियां—

बैठां बारै चलत अठारै, सूतां तूटै तीस।
कईथन करंतां चौसटि तूटै, क्यों भजिवौ जगदीस ॥२७४॥
नासिका अग्रे भ्रू[12] मंडले, अहनिस रहिवा थीरं।
मांता गरभि जनम न आयबा, बहुरि न पीयबा षीरं ॥२७५॥

जो रहनी रहता है, वह हमारा गुरु है, हम उसके चेले हैं। मन मानता है तो गुरु के साथ घूमते-फिरते हैं नहीं तो अकेले रमते हैं ॥ २७१॥

दरसन, कानों की मुद्रा। भेव, भेद ॥ २७२ ॥

बारह, अठारह, तीस और चौसठ साँसें हैं। इन कर्मों से इतनी साँसें टूटती हैं, जिन्हें असल में अजपाजाप के द्वारा भगवन्नाम स्मरण में लगाना चाहिये था। अतएव इन कर्मों से भगवद्भजन कैसे संभव हो सकता है ॥२७४॥

नासाग्र में अथवा भ्रू-मंडल (या भ्रू-मध्य) में रात दिन स्थिर रहो (अर्थात् दृष्टि को स्थिर रक्खो), इससे आवागमन मिट जायगा, माता के गर्भ में नहीं आना पड़ेगा, उसका दूध नहीं पीना पड़ेगा ॥ २७५ ॥



---

१. (ख) रहैता। २. (ख) गरु। ३. (ख) बोलीये। ४. (ख) रहिता। ५. (ख) फीरे। ६. (ख) माइ ७. (ख) जानि। ८. (ख) तीनि। ९. (ख) स्युं। १०. (ख) काना। ११. (ख) आष्या। १२. (घ) भू।

पद

[राग रामग्री]

चारि[1] पहर आलंगन[2] निंद्रा[3], संसार जाइ[4] विषिया वाही[5] ।
ऊभी बांह[6] गोरषनाथ पुकारै, मूल[7] म[8] हारो म्हारा[9] भाई । टेक ।
अमावस[10] पड़िवा मन घट सूंनां, सूंनां ते मंगलवारे ।
भणता गुंणता ब्रह्मण वेद बिचारै[11], दसमी दोष निवारै[12] ॥१॥
पड़वा[13] आनन्दा[14] बीजसि[15] चंदा, पांचौं लेवा[16] पाली ।
आठमि[17] चौदसि व्रत[18] एकादसी, अंगि न लाऊं[19] वाली ॥२॥

रात के चारों पहर आलिंगन (स्त्री का) और निद्रा में बिता कर संसार विषयों में बहा जा रहा है। गोरखनाथ खड़ी बाहों के साथ (चेतावनी देने की मुद्रा करके) पुकारता है कि हे मेरे भाई मूल (शुक्र) को मत हारो।

म=मा, नहीं, मत।

अमावस और पड़िवा को अनाध्यायादि रहता है। योगी के लिए शून्य

---

१. (क) च्यारि । २. (घ) आलिंगण । ३. (क) न्यंद्रा । ४. (घ) जाय । ५. (घ) बाई । ६. (क) ऊभे हाथौं । ७. (क) 'मूल' के पहले 'तुम्हें' । ८. (घ) न । ६. (क) माह्या (?) १०. मावस । ११. (घ) पढ़ता गुंणता पंडित भूला । १२. (क) दसवीं दसौं दोष हारैं; (घ) निवारं । १३. (घ) पड़िवा । १४. (घ) आनंदा । १५. बीजडु । १६. (क) पांचमि ल्यौ तुम्हैं । १७. (घ) आठैं । १८. (घ) वरत । १९. (घ) म लावै ।

संमीं[1] सांझैं सोइबा[2] मंझैं जागिवा, तृसंधि देणां[3] पहरा।
तीनि पहर पर दोइ[4] घट जाइवा[5], तिहां छै काल चा[6] हेरा। ३।
यांमां अंगे सोइबा[7] जमचा भोगवा[8], संगे[9] न पीवणां[10] पांणीं।
इमतो[11] अजरांवर होइ[12] मछिंद्र, बोल्यौ गोरष[13] वांणीं[14] । ४ ॥१॥

में मन और शरीर को लगाना ही अमावस और पड़िवा मनाना, श्रम शून्य होना है। वही मंगलवार का व्रत भी है। दशमी को कहने गुणने वाला ब्राह्मण तो वेद का विचार करते हैं किन्तु योगी के लिए दशमी मनाना यम-नियमादि द्वारा शरीर के दोषों को दूर करना है। प्रतिपदा का अनाध्याय इत्यादि श्रम से निरस्त होना योगी के लिए ब्रह्मानन्द में मग्न होना है। द्वितीय को चन्द्र दर्शन पंच ज्ञानेंद्रियों की उनके शब्द रसादि विषयों से रक्षा करना है। अष्टमी, चतुर्दशी, एकादशी आदि के नियम व्रतादि स्त्री (बाला) से अपना शरीर स्पर्श न कराना है।

देखने में बाहर से (संमीं, समक्ष) तो सांझ को सो जाओ किंतु भीतर से (मंझै, मध्य में) जागते रहो। इस प्रकार त्रिकाल की सन्ध्यावस्था में पहरा देना चाहिए। त्रियामा (रात्रि) के तीन पहरों में से बीत जाने पर अर्थात् तीसरे में काल दृष्टि (घात) लगाये रहता है। अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में भी अचेत होकर सोते रहने वाले को काल ग्रस लेता है। इसी से योगी ब्राह्ममुहूर्त में जागता रहता है। देवल नाथ का वचन है—

पहले पहरे सब कोई जागै, दूजे पहरे भोगी।
तीजे पहरे तस्करि जागै, चौथे पहरे जोगी॥

स्त्री के संग में अर्थात् पास सोना यम का भोग करना या भोग होना है। उसके (स्त्री के) साथ तो पानी भी न पीना चाहिए। हे मत्स्येन्द्र ! इसी प्रकार अमर हो जाओ। गोरखनाथ ऐसी वाणी बोलता है।

---

१. (घ) संमीं। २. (घ) सोवणा। ३, (घ) देणा। ४. (घ) दोय। ५. (घ) घिटिजांसिला। ६. तहां काल का। ७ (घ) वांवें अंगि सोवणा। ८. (घ) भोगिवा। ९. (घ) संगि। १०. (घ) पीवणा। ११. (घ) इमी। १२. (घ) हू। १३. (घ) होयवा। १४. (घ) गोरष बोल्या। १५. (घ) [illegible]

छांटै तजौ गुरू छांटै तजौ तजौ[1] लोभ मोह[2] माया।
आत्मां परचै राषौ गुरुदेव[3] सुन्दर काया॥ टेक॥
कान्हीं पाव[4] भेटीला गुरू, बियानग्रे सै[5]।
ताथैं मैं पाइला गुरु, तुम्हारा उपदेसैं[5]॥ १॥
एतैं कछू[6] कथीला गुरु, सर्बैं भैला[7] भोलै।
सर्ब[8] रस पोईला गुरु बाघंनी चै[9] षोलै॥ २॥
नाचत गोरषनाथ घुंघरी, चे घातैं।
सबैं[8] कमाई षोई गुरू, बाघनीं[10] चै राचैं[11]॥ ३॥
रस-कुस बहि गईला[1], रहि गई छोई।
भणत[4] मछिंद्रनाथ पूता[3], जोग न होई॥ ४॥

हे गुरु लोभ और माया को (छांटै) अलग से अर्थात् बिना स्पर्श किये हुए छोड़ दो। हे गुरु देव, आत्मा का परिचय रक्खो जिससे यह सुन्दर काया रह जाय, नष्ट न हो। बियानगर के (या से आये हुए) कान्हापाव से भेंट हुई थी। उसी से आप की इस दशा का पता लगा कि आप कामिनियों के जाल में पड़े हुए हैं। गुरु संबंधी होने के कारण कान्हापाव के कहे हुए संदेश को 'उपदेश' कहा है।) यह जो कुछ कहा है, अर्थात् आपका पतन भ्रम के कारण हुआ है। आपने अमृत रस को बाघनी (माया) की गोद में (पोलै, कोरै, क्रोड में) खो दिया है। गोरख कहते हैं कि (बाघनी माया के) घूँघरू के बजने के स्वर के साथ ताल मिला कर नाचते हुए माया के प्रेम (राचैं) से, हे गुरु! तुमने अपनी सारी आध्यात्मिक कमाई खो डाली है।

रस-कुस = तरल पदार्थ। छोई = संभवतः राख। निस्सार वस्तु। गढ़वाल में कपड़े धोने के लिए 'छोई' बनाई जाती थी। वहाँ छोई राख को

---

१. (घ) में नहीं २. (घ) अरु। ३. (घ) गुरुदेव राषौ। ४. (घ) कान्ही पाव। ५. (घ) विया ग्रेसं···उपदेसं। ६. (घ) एता कांय। ७. (घ) सरब भईला। ८. (घ) सरब। ९. (घ) बाघणी कै। १०. (घ) बाघणी। ११. (घ) हाथैं।

रस-कुस[४] बहि गईला रहि गईला[५] सारं ।
बदंत गोरषनाथ गुर[६] जोग अपारं । ५ ।
आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता ।
षटपदी भणींले[७] गोरष अवधूता[८] । ६ । ॥ २ ॥

सुणों हो मछिन्द्र गोरष बोलै[९], अगम गवंन कहूँ[२] हेला ।
निरति[३] करी नैं[४] नीकां सुणिज्यौ[५], तुम्हे[६] सतगुर मैं चेला ॥ टेक ॥
कांमनी बहतां[७] जोग न होई, भग मुष[८] परलै केता ।
जहां उपजै[९] तहां फिरि आवटै[१०], च्यंतामनि[११] चित एता[१२] । १ ।

पानी में मिला कर विधि विशेष से छान कर निकाले पानी को कहते हैं । यहाँ उसका उलटा अर्थ जान पड़ता है ।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनमें बहने या नष्ट हो जाने वाले अंश के साथ तत्त्व पदार्थ निकल जाता है, कुछ ऐसी जिनमें उस अंश के निकल जाने के बाद भी तत्व वस्तु बनी रहती है । ऐसे ही, कुछ मतों में सार वस्तु का ग्रहण न होकर बाहरी अनावश्यक बातों का ग्रहण होता है, और दूसरों में केवल सार तत्त्व का ग्रहण होता है, बाहरी अनावश्यक बातों का नहीं । योग मत इसी दूसरे प्रकार का है ।

परलै=नष्ट हो गए । आवटै=आवर्तन करता है, चक्कर लगाता है । चिंतामनि...एता=चित्त को इतनी चेतावनी (चिताव (म) णी) देनी चाहिए ।

---

१. (घ) रस बस बह गया । २. बदंत । ३. (घ) मछिंद्र गोरष । ४. (घ) रसकस । ५. (घ) गई रही । ६. (घ) में नहीं । ७. (घ) भणींनी । ८. (घ) औधूता । ९. (घ) गोरख कहै सुणौ मछिंद्र । १०. (घ) गगन में । ११. (क) निति । १२ (घ) करे नैं । १३. (घ) नींकां सुणीज्यौं । १४. (घ) तुम । १५. (घ) कामणि बहंतां । १६. (ग) मुनि । १७. (घ) जहां थे उपज्या । १८. (घ) आवट्या । १९. (घ) चिन्तामणि । २०. (घ) में पहले 'चेला' लिखा था फिर काट और सुधार कर 'चेता' बनाया है ।

द्वादश षोड़ि षटांणां नौसत (र?), जीव सीव ना वासा।
चौदह[1] ब्रह्मांड नौ[2] एक दंम[3] है, इम[4] हीं जाइ[5] निरासा।२।
पवन का नीर ले अंबर धौवै[6] स्वासैं उसासै आया[7]।
भणत गोरषनाथ इम होइ निरंतर, बीजैं[8] बटक समाया।३। ॥३॥

बोल्या गोरष[9] घर[10] जोई, ये[11] तत बूझै बिरला कोई, मेरे ग्यांनीं[12] ॥टेक॥
जोव्यौ जोव्यौ रे जहूँबा बन जोव्यौ[13] तत्त राष्यौं तरियाली[14]।
आसण[15] इन्द्री जेणै[16] आप बसि राष्यां, तेणै[17] पाया सर्व निरंतर,[18] मेरे ग्यांनीं।१।
मन मांहैं तेणैं[19] तन तारयां[20] मन बिसवासैं मिलणां।
मन मैं कुंभ[21] कलस रस भरिया, तेणै[22] मनवै अलष लषाया, मेरे ग्यांनीं।२।
पै र जोई नै एक्का पुरिष[23] पधारया, पुरिष नी पारिषा[24] पाई।
पुरिषै[25] मिलि पुरिष रस राष्या, पुरिषैं पुरिष निपाया, मेरे ग्यांनी।३।

द्वादश षोड़ि षटांणां नौसत (र?)···वासा=सूर्य (द्वादश) के दोष (षोड़ि) को चंद्रमा (सोलह=नौ+सत) से दूर करे जिससे जीव और ब्रह्म का ऐक्य हो जाय। दंम-प्राण। चौदह···निरासा=चौदहों ब्रह्मांडों का एक ही प्राण है, परब्रह्म-। बीजै वटक समाया=बीज में बट का वृक्ष समा गया। माया आत्मा में लीन हो गयी ॥ ३ ॥

पै र··· निपाया=परन्तु रे (हे भाई!) जिसने एक पुरुष को (हृदय में) पधराया, और इस प्रकार (जिसने) एक पुरुष (परमात्मा) की परख

---

१. (घ) चवदा। २. (घ) ब्रह्मंडना। ३. (घ) दम। ४. (घ) यम। ५. (घ) जाय। ६. (घ) धोया। ७. (क) स्वासैं सुसार जु आया। ८. (घ) वदंत गोरष यम होय निरंतरि बीजै। ९. (क) गोर्ष। १०. (क) घर। ११. (क) ते। १२. (घ) ग्यांनी। १३. (क) जुज्यौं जुज्यौं रे जुझा बन जोज्यौं; (घ) जोत्रौ जोज्यौ रे जहूवा बन जोज्यौ। १४. (घ) राषौ। १५. (घ) त्रियाली १६. (घ) आसन यंद्री। १७. (घ) जिनि···तिन्हैं। १८. (घ) कीया। १९. (घ) अब निरंतरि। २०. (घ) मनहि मनहीं तिन्हैं। २१. (घ) तारया। २२. (घ) महीं। २३. (घ) तिन्हैं मन मां। २४. (घ) पुरष। २५. (घ) परिष्या। २६. (घ) पुरिषैं।

जिहि[१] घरि चंद सूर नहि[१] ऊगै, तिहि[१] घरि होसी उजियारा[२] ।
तिहां[३] जे आसण[४] पूरौ[५] तौ सहज का भरौ[६] पियाला, मेरे ग्यांनीं ।४।
मन मांहिला हीरा वीधा[७] सो सोधीनै लीणां[८], सो पांणां सो पीवणां[९]
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरष बोल्या, विमल रस जोई जोई नैं[१०] मिलणां,
मेरे ग्यांनीं ।५। ॥४॥

गोरष जोगी तोला तोलै, भिड़ि भिड़ि[११] बाधीलै[१२] रतन अमोलै ॥टेक॥
आछै आछै विंद न पड़िवा[१३] कंध ।
लाष तोला मोल[१४] जाये[१५], जे एक षिसै विंद[१६] । १ ।
जैसी मन उपजै[१७] तैसा करम[१८] करै ।
कांम क्रोध लोभ लै[१९] संसार सूंनां मरै ॥ २ ॥

(पहचान) प्राप्त की, वह पुरुष के मेल से पुरुष के रस (ब्रह्मानन्द) की रक्षा करता है । और इस प्रकार पुरुष के द्वारा पुरुष (अपने ब्रह्मत्व) की उत्पत्ति करता है । (उसे ब्रह्मानुभूति हो जाती है ।)

जहाँ सूर्य चंद्र के उगे बिना (ब्रह्मज्योति का) प्रकाश होता है वहाँ (ब्रह्म में) आसन मारने से (स्थिति होने से) सहजानंद प्राप्त होता है ।

मन में का बिंधा हीरा (पहुँच में आया हुआ आत्मज्ञान) योगी का प्राप्य है । वही उसका खाना-पीना है । उसको देखकर ही निर्मल सहज आनन्द मिलता है ॥ ४ ॥

गोरख जोगी बड़ी परख से तोल तोल कर वाणिज्य करता है । भिड़-भिड़ (नम्बर दो दो) कर वह अमूल्य रत्न (शुक्र अथवा परब्रह्म) को गाँठ बाँधता है । अगर बिंदु (या बिंद अव्यय है आर्द्र, 'अस्ति' से भी सिद्ध हो सकता है और 'अव्यय' से भी ।) तो शरीर (कंध, स्कंध) नष्ट नहीं होता ।१।

---

१. (प) जिहि···नहीं···तिहि । २. (प) उजाला । ३. (प) तहां । ४.(प) आसन । ५. (प) पूरे । प्रतियों में 'मेरे ग्यानी' 'पूरो' के बाद है । ६. (प) भरे । ७. (प) बींधा । ८ (प) सोधिनै लेना । ९. (प) पीना । १०. (प) में 'नें' नहीं । ११ (ख) भींड़ि भींड़ि; (प) भींड़ि भींड़ि । १२. (क) बांधीले । १३.(प) आछे आछे [illegible] । १४. (प) कोटि तोला । १५.(प) जाई । १६.(प) जे [illegible] एक [illegible] । १७ (प) [illegible] । १८. (ख) क्रम । १९. (प) 'लै' के स्थान पर 'लोह' ।

गगन सिषर आछै अंबर पांणीं।
मरतां मूढां लोकां मरम न जांणीं[1] । ३ ।
पूनिम महिला[2] चंदा जिम नारी संगै रहणां।
ग्यांन रतन हरि लीन्ह परांणां[3] । ४ ।
आदि नाथ नाती मछिंद्र नाथ पूता।
व्यंद तोलै राषीले[4] गोरष अवधूता[5] । ५ । ॥५॥
सोनां ल्यौ रस सोनां ल्यौ, मेरी जाति सुनारी रे।
धंमणि[6] धमीं रस जांमणि जांम्या,
तब गगन[7] महा रस मिलिया[8] रे ॥ टेक ॥
आपैं सोनां नै आप सुनारी[9], मूल चक्र अंगीठा।
अहरणि[10] नाद नैं व्यंद[11] हथौड़ा, घटिस्यूं[12] गगन वईठा[13] । १ ।

गगन सिषर=त्रिकुटी, ब्रह्मरंध्र अथवा ऊँची पहुँच या ब्रह्मानुभूति में। पांणीं=अमृत। मूढां=मूढ। पूनिम...=पूर्णिमा का चंद्रमा अपना संपूर्ण अमृत दान करता रहता है, (जो योग-युक्ति के बिना मूलाधार-स्थित सूर्य के द्वारा सोख लिया जाता है।) परिणाम यह होता है कि वह क्षीण होता चला जाता है। स्त्री के साथ रहकर भी पुरुष की, जो वस्तुतः पूर्ण है, यही हालत होती है, महिला=में-का, मध्य का ॥ ४ ॥

मैं जाति का सुनार हूँ। मुझ से रस (आत्मानंद, अमृत) रूप सोना लो। धमंणि (धौंकनी श्वास क्रिया) को धौंका, श्वास क्रिया के द्वारा अजपाजाप सिद्ध किया। यही रस का जमना है। अजपाजाप के द्वारा चंचल मन स्थिर हो जाता है। इसी से फिर ब्रह्मरंध्र में महारस योगामृत की प्राप्ति होती है ॥टेक॥ घटिस्यूं=गढ़ूँगा।

---

१. (घ) मरता मूढ़ा लोका पत्नरि न जांणी। २. पून्यूं मैंला। ३. (घ) लीया पुरांणां। ४. (घ) कोटि तोला विंदे राषै। ५. (घ) औधूता। ६. (घ) धमनि " जामनि जाम्यां। ७. (घ) गिगनि। ८. (घ) मिलीयारे। ९. (क) जास्यों; (घ) आपै सुनारी आपै सोना। १०. (क) अहरणि। ११. (घ) विंद। १२. (घ) तब घड़ि स्यूं। १३. (क) वईठा।

जिहि[1] घरि चंद सूर नहिं[1] ऊगै, तिहिं[1] धरि होसी उजियारा[2] ।
तिहां[3] जे आसण[4] पूरौ[5] तौ सहज का भरौ[6] पियाला, मेरे ग्यांनीं ।४।
मन मांहिला हीरा वीधा[7] सो सोधीनै लीणां[8], सो पांणां सो पीवणां[9]
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरष बोल्या, विमल रस जोई जोई नैं[10] मिलणां,
मेरे ग्यांनीं ।५। ॥४॥

गोरष जोगी तोला तोलै, भिड़ि भिड़ि[11] बाधीलै[12] रतन अमोलै ॥टेक॥
आछै आछै विंद न पड़िवा[13] कंध।
लाष तोला मोल[14] जाये[15], जे एक पिसै विंद[16] । १ ।
जैसी मन उपजै[17] तैसा करम[18] करै।
कांम क्रोध लोभ लै[19] संसार सूंनां मरै ॥ २ ॥

(पहचान) प्राप्त की, वह पुरुष के मेल से पुरुष के रस (ब्रह्मानन्द) की रक्षा करता है। और इस प्रकार पुरुष के द्वारा पुरुष (अपने ब्रह्मत्व) की उत्पत्ति करता है। (उसे ब्रह्मानुभूति हो जाती है।)

जहाँ सूर्य चंद्र के उगे बिना (ब्रह्मज्योति का) प्रकाश होता है वहाँ (ब्रह्म में) आसन मारने से (स्थिति होने से) सहजानंद प्राप्त होता है।

मन में का बिंधा हीरा (पहुँच में आया हुआ आत्मज्ञान) योगी का प्राप्य है। यही उसका खाना-पीना है। उसको देखकर ही निर्मल सहज आनन्द मिलता है ॥ ४ ॥

गोरख जोगी यहाँ परख से तोल तोल कर वाणिज्य करता है। भिड़-भिड़ (अमर हो हो) कर वह अमूल्य रत्न (शुक्र अथवा परब्रह्म) को गाँठ बाँधता है। अगर बिंदु है (या बिंद अक्षय है आदि, 'अस्ति' से भी सिद्ध हो सकता है और 'अक्षय' से भी।) तो शरीर (बंध, स्कंध) नष्ट नहीं होता ।१।

---

१. (घ) जिहि...नहीं...तिहि। २. (घ) उजाला। ३. (घ) तहां। ४. (घ) आसन। ५. (घ) पूरे। प्रतियों में 'मेरे ग्यानी' 'पूरो' के बाद है। ६. (घ) भरे। ७. (घ) बींधा। ८. (घ) सोधि लै लीणां। ९. (घ) पीणां। १०. (ग) में 'नैं' नहीं। ११. (क) भींड़ि भींड़ि; (ग) भींड़ि भींड़ि। १२. (क) बाधीलै। १३. (ग) आछैं आछैं बिंद न पड़िवा। १४. (घ) कोटि मोला। १५. (घ) जाई। १६. (घ) जे खिसे एक बिंद। १७. (घ) उपजे जैसी। १८. (क) करम। १९. (घ) ... के स्थान पर 'मोह'।

गगन सिषर आछै अंबर पांणीं।
मरतां मूढां लोकां मरम न जांणीं[1] । ३ ।
पूनिम महिला[2] चंदा जिम नारी संगै रहणां।
ग्यांन रतन हरि लीन्ह परांणां[3] । ४ ।
आदि नाथ नाती मछिंद्र नाथ पूता।
ब्यंद तोलै राषीले[4] गोरष अवधूता[5] । ५ । ॥५॥
सोनां ल्यौ रस सोनां ल्यौ, मेरी जाति सुनारी रे।
धंमणि[6] धमीं रस जांमणि जांम्या,
तब गगन[7] महा रस मिलिया[8] रे ॥ टेक ॥
आपैं सोनां नै आप सुनारी[9], मूल चक्र अंगीठा।
अहरणि[10] नाद नैं ब्यंद[11] हथौड़ा, घटिस्यूं[12] गगन बईठा[13] । १ ।

गगन सिषर=त्रिकुटी, ब्रह्मरंध्र अथवा ऊँची पहुँच या ब्रह्मानुभूति में। पांणीं=अमृत। मूढां=मूढ। पूनिम...=पूर्णिमा का चंद्रमा अपना संपूर्ण अमृत दान करता रहता है, (जो योग-युक्ति के बिना मूलाधार-स्थित सूर्य के द्वारा सोख लिया जाता है।) परिणाम यह होता है कि वह क्षीण होता चला जाता है। स्त्री के साथ रहकर भी पुरुष की, जो वस्तुतः पूर्ण है, यही हालत होती है, महिला=में-का, मध्य का ॥ ४ ॥

मैं जाति का सुनार हूँ। मुझ से रस (आत्मानंद, अमृत) रूप सोना लो। धमंणि (धौंकनी श्वास क्रिया) को धौंका, श्वास क्रिया के द्वारा अजपाजाप सिद्ध किया। यही रस का जमना है। अजपाजाप के द्वारा चंचल मन स्थिर हो जाता है। इसी से फिर ब्रह्मरंध्र में महारस योगामृत की प्राप्ति होती है ॥टेक॥ घटिस्यूं=गढूँगा।

---

१. (घ) मरता मूढ़ा लोका पत्ररि न जांणी। २. पून्यूं मैंला। ३. (घ) लीया पुरांणां। ४. (घ) कोटि तोला विंदे राषै। ५. (घ) औधूता। ६. (घ) धमनि.. जामनि जाम्यां। ७. (घ) गिगनि। ८. (घ) मिलीयारे। ९. (क) जास्यों; (घ) आपै सुनारी आपै सोना। १०. (क) अहरणि। ११. (घ) विंद। १२. (घ) तब घड़ि स्यूं। १३. (क) बईठा।

अधै[1] आरण नै विषै कोइला[2], सहज, फूक दो नलियां[3] ।
चंद सूर दोऊ[4] समि[5] करि राष्या[6] आपैं[7] आप जु मिलिया[8] । २ ।
रती का[9] कांम मासे की[10] चोरी[11], रती मैं मासा चोरै ।
मासा चोरि रहै मासे मैं[12], इहि[13] विधि गरथैं जोरै[14] । ३ ।
अरधे[15] सोनां उरधै सोनां, मध्ये[16] सोनम्[17] सोनां[18] ।
तीनि सुन्यं[19] की रहनीं जानैं[20], ता घटि पाप न पुंनां । ४ ।
उनमनि डांडी[21] मन तराजू, पवन कीया गद्दियांनां ।
आपै गोरषनाथ जोपण[22] वैठा, तब सोनां सहज[23] समांनां ।५। ॥६॥
जांणानैं जोसी जोऔ नै विचारी, पहलां पुरिष कै नारी[24] जी । टेक ।
वाइ नहीं तहूं वां वादल नाहीं, बिन थाभां बाबै मडप रचीया ।
तिहां आप तपांवन हारी[25] जी । १ ।

अर्धं आरण = अक्षय रूपी जंगल में । सहज···नलियां = इला पिंगला से सहजाग्नि को फूंककर । रती = गुंजा या घुंघुची, छोटी वस्तु । रती का काम = अल्प, माया । मासा = अधिक, महा । हमारे हाथ में स्थूल शरीर छोटी वस्तु है, इस में से महान् आत्मतत्त्व को लेकर उसी में निवास करना चाहिए । इस प्रकार (आत्म-) धन (गरथैं) को जोड़ना चाहिए । धन गांठ (ग्रंथि) में बंधा रहता है । इसलिए लक्षणा से 'ग्रंथि' का अर्थ धन होता है । 'ग्रंथि' से ही 'गरथ' और 'गथ' बनता है । गद्दियांनां = गद्याण (सं०), एक तौल जो प्रायः मासे के बराबर होती थी । गद्याणो माषकै षड्भिः—शार्ङ्गधर संहिता १, १, ४९; योगचिन्तामणि १, १०३ ॥ ६ ॥

---

१. (ख) अंधै । २. (ख) कोयला । ३. (ख) फूंक दोय नलीया ···स मिलीया । ४. (ख) दोन्यूं । ५. (क) सम्य । ६. (क) राख्यो । ७. (ख) चीरे आप आरे । ८. (ख) मिलिया । ९. (ख) रातानी । १०. (क) चोरि । ११. (ख) मासा मैं । १२. (ख) मनि । १३ (ख) गरथ जोड़ै । १४. (ख) [illegible]··· [illegible] । १५. (ख) [illegible] । १६. (क) मध्य; (ख) सुनिम । १७. (ख) सुनि । १८ (ख) सुनि । १९. (ख) रहनीं । २०. (ख) सुनि । २१. (ख) डांडी मैं । २२ (ख) [illegible] । २३. (ख) सुनि । २४. (क) नारा । २५. (क) हारा ।

बाप नहीं होतौ तिह्यां बैठणई रे, माता बाल कुंवारी जी ।
पीवनैं पौढ्यौ माझौ पालनैं, तिहां हूँ हीं ज हिंडोलँन-हारी जी ॥२॥
ब्रह्मा विष्न नैं आदि महेस्वर, ये तीन्यूं मैं जाया ।
इन तिहुँवां नीं मैं घर घरणीं, द्वैकर मोरी माया जी ॥३॥
गंग जमुन मोरी षाटलड़ी रे, हंसा गवन तुलाई जी ।
धरणि पाथरणौं नैं आभ पछेवड़ौ, तौ भी सौड़ी न माई जी ॥४॥
षांडतड़ी मांझौ जनम वहीतौ, चांवल सांवि न सारी जी ।
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरष वोल्या, ये तत जोश्रो विचारी जी[1] ।५।७॥

हे विज्ञ ज्योतिषी ! देखो और विचारो कि पहले पुरुष हुआ कि स्त्री, परमेश्वर या माया । बाबा (ब्रह्म अथवा ईश्वर) ने जहाँ न वायु है, न बादल वहाँ जो बिना खंभों का मंडप रचा है, वहाँ उत्पत्ति करनेवाली वही, माया ही है । जब बाप नहीं था तब भी वह बैठी (उपस्थित या विद्यमान) थी । यह माता (माया) बाल कुँवारी है । इसने अपने स्वामी को पालने में पौढ़ाया और वहाँ हिंडोला झुलानेवाली हुई । (अर्थात् पति का लालन पालन किया) ब्रह्मा, विष्णु और आदि महेश्वर ये तीनों (माया कहती है कि) मेरे पैदा किये हुए हैं और मैं ही इन तीनों के घर में गृहिणी (पत्नी) भी हूँ । (इनके) दोनों हाथों में मेरी माया है । (ये जो काम करते हैं, सब मेरी माया से ।) इला, पिंगला मेरी चारपाई (खाटलड़ी) हैं और जीव या प्राण रजाई (तुलाई) है । पृथ्वी (मिटी), पत्थर, और पानी (आदि) (अर्थात् सारी सृष्टि) मेरा पक्षपट (पछयोड़ा) है । वह भी मेरे बिछाने की चादर (सौड़) के लिए पूरी नहीं है । खाँडतड़ी (संभवतः ओखली) में (कुटते हुए) जन्म बीत गया फिर भी 'चावल सँवरा-सारा नहीं गया अर्थात् कर्मों के बन्धन में बँधा हुआ मनुष्य दुःखों से छुटकारा नहीं पा सका । (भूसी सहित बीजों से साफ चावल को अलग करने के लिए सूप से जो क्रिया की जाती है, उसको सँवरना-सारना कहते हैं । इसमें सूप जल्दी जल्दी दाहिने-बायें हिलाया जाता है जिससे साफ चावल आगे आ जाता है ।) मछंदरनाथ के प्रसाद से यती गोरख कहता है कि इस तत्व को विचार कर देखो ॥ ७ ॥

१. (घ) में यह पद नहीं है । (क) में 'जी' के स्थान पर 'यी' ।

चाल्योरे[1] पांचौं भाइला[2] तेणौं[1] बन जाइला[3],
जहां दुष सुष नांव न जानिये[4] ॥ टेक ॥
षेती करौं[5] तौ मेह बिन[6] सूकै। बनिज करौं[5] तौपूंजी तूटै ॥१॥
अस्त्री[7] करौं[5] तो घर भङ्ग हैला[8]। मित्र करौं[5] तौ बिसहर भैला[9] ।२।
जुवटै पेलौं[10] तौ बैठड़ौ हारौं[11]। चोरी करौं[12] तौ प्यंडड़ौ मारौं[12] ॥३॥
बन पंठ[13] जांऊं तौ बिरछ[14] न फलना[15]। नगरी मैं जाऊं[16] तौ भिष्या न मिलनां[17] ॥४
बोल्या गोरषनाथ मछिंद्र का[18] पूता। छांड़िनैं[19] माया भया अवधूता ।५। ॥८॥
गुरदेव स्यंभ[20] देव सरीर भींतरिये[21]।
आतमां अनिम[22] देव ताही की न जांणों[23] सेव।
आंन देव पूजि पूजि हमही[24] मरिये[25] ॥ टेक ॥
नवे द्वारे नवे[26] नाथ, त्रवेणीं[27] जगन्नाथ[28], दसवें[29] द्वारि केदारं ॥ १॥

हे पांचों भाइयो ! (पंचेन्द्रियो) चलो उस वन को जायँ जहाँ सुख दुःख का नाम भी नहीं जाता। (यहाँ तो सब सुख दुःख में परिणत हो जाते हैं।)

बिसहर = विषधर, साँप।

आत्मा सर्वोत्तम देवता है। वही गुरु है, वही परतत्त्व शिव है। यह शरीर के भीतर ही है। इसकी सेवा तो जानते नहीं, अन्य देवताओं को पूज-पूजकर व्यर्थ ही मरते हो। नव द्वारों (इन्द्रियों के गोलक) में नवों नाथ हैं। त्रिवेणी (त्रिकुटी) में जगन्नाथ (सोपाधिक ईश्वर) हैं। और, दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) में

१. (घ) चाल्यो। २. (घ) भाइला। ३. (घ) तिहि बनि जाइला। ४. (घ) आणिये ना। ५. (घ) करूँ। ६. (घ) बिण। ७. (घ) अस्त्री। ८. (घ) होइला। ९. (घ) भइला। १०. (घ) जूवा खेलूँ। ११. (घ) हारूँ। १२. (घ) चोरी करूँ। १३. (घ) पंथि। १४. (घ) बृछ। १५. (घ) फलइला। १६. (घ) जाऊँ। १७. (घ) मिलइला। १८. (घ) का। १९. (घ) छाड़ी। २०. थिंभू। २१. (घ) भीतरिये। २२. (घ) आतमा [illegible]। २३. (घ) जाणें। २४. (क) में 'हम ही' नहीं है; (घ) में 'हम ही'। २५. (घ) मरिये। २६. (घ) नव द्वार नव। २७. (घ) त्रिवेणी। २८. (क) [illegible]। २९. (घ) दसवे।

जोग, जुगति सार[1] तौ भौ तिरिये पारं[2]।
कथंत[3] गोरषनाथ विचारं[4] ।२। ॥ ९ ॥

मनसा मेरी[5] ब्यौपार बांधौ[6], पवन पुरषि उतपनां।
जाग्यौ[7] जोगी अध्यात्म लागौ, काया पाटण मैं जांनां[8] ॥ टेक ॥
इकवीस सहंस षटसां आदू[9], पवन पुरिष जप माली।
इला प्यंगुला सुषमन नारी, अहनिसि वहै प्रनाली[10] ॥१॥
षटसां षोड़ि कवल[11] दल धारा[12], तहां वसै ब्रह्मचारी।
हंस पवन[13] ज फूलन[14] पैठा[15], नौ सै नदी पनिहारी[16] ॥२॥

केदारनाथ (शिव, स्वयं परब्रह्म) हैं। यदि योग की सार (तत्त्वमयी, सच्ची) युक्ति प्राप्त हो जाय तो गोरखनाथ (विचार पूर्वक) कहते हैं कि संसार से पार हो जावे।

हे मेरी मनसा (इच्छा) तुम अपना व्यापार बाँधो। प्राण पुरुष उत्पन्न हो गया है। अर्थात् मन और पवन का संयोग संभव हो गया है। (इस प्रकार मन पवन के योग अथवा प्राणायाम से) जागा हुआ जोगी अध्यात्म (आत्मा सम्बन्धी प्रयत्न) में लग गया है। उसे इस शरीर रूपी नगर में प्रवेश करना है। पवन पुरुष अर्थात् बाहर भीतर जाती हुई साँस ही जप की माला है जो प्रति दिन २१,६०० जप करती है। इला, पिंगला और सुषुम्ना की नलियों में पवन बराबर बहता रहता है ॥ १ ॥

इक बीस ··· माली = योगियों के अनुसार मनुष्य प्रतिदिन २१,६०० बार साँस लेता है। इन सब साँसों के साथ 'सोऽहं हंसा' का जाप 'अजपा जाप' कहलाता है। जप श्वास क्रिया के द्वारा स्वयं बेखबर हो रहा है। हमें उसकी ओर अपना ध्यान ले जाकर उसे सज्ञान रूप से करना है।

षटसां = षट्दलकमल, स्वाधिष्ठान चक्र। षोड़ि कवलदल = षोडष दल कमल = विशुद्ध चक्र।

---

१. (क) संसार। २. (घ) तिरीए पार। ३. (क) में 'कथंत' नहीं। ४. (घ) विचार। ५. (घ) देवी। ६. (घ) वौपार बाधौ। ७. (घ) जागौ। ८. (घ) काया का पाटण मनां। ९. (घ) यकीस सहंस पट सास आदि; १०. (घ) यला पिंगुला सुषमनि; (घ) नदीयां अहिनिसि वहैं। ११. (घ) षटसास षोड़ि कंवल। ११. (घ) धीरा। १३. (घ) पवल (? पवन या कवल) १४. (घ) जलि फूलण। १५. (घ) पैठा तहां। १६. (घ) पणिहारी।

गङ्गा तीर मतीरा[1] अवधू, फिरि फिरि बणिजां[2] कीजै ।
अरध बहन्ता[3] उरधैं लीजै, रवि सस[4] मेला कीजै ॥ ३ ॥
चंद सूर दोऊ गगन[5] बिलुधा, भईला[6] घोर अंधारं ।
पंच बाहक जब न्यंद्रा पौढ्या[7], प्रगट्या पौलि पगारं ॥ ४ ॥
काया कंथा, मन जोगोटा[8], सत गुर मुझ[9] लषाया[10] ।
भणंत[11] गोरषनाथ रूड़ा[12] राषौ, नगरी चोर मलाया[13] ॥ ५ ॥ १० ॥

(सूक्ष्म तत्त्व से धारा छूट कर स्थूल का निर्माण हुआ है ।) स्वाधिष्ठान और विशुद्ध आदि चक्र उसी धारा में बने हुए हैं । इसी धारा में अथवा इन्हीं चक्रों में ब्रह्मचारी अथवा आत्मा का निवास है । नौ सौ नदियाँ (संपूर्ण नाड़ी जाल) पनिहारिन होकर पुष्टि कर प्राणधारा से हंस (जीव, आत्मा) को सींचती है जिससे आत्मा रूपी बेल पुष्पित हो जाती है और इला (चंद्र नाड़ी) के फूल मधूक (शीतलता दायक ज्ञान) उत्पन्न हो जाता है जिसका फिर फिर वाणिज्य करना चाहिये । नीचे बहने वाली (अमृत की अथवा पवन की) धारा को ऊपर ले जाइये, ब्रह्मांड में चढ़ाइए। और चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी का मेल कीजिए।

ब्रह्मरंध्र में इन दोनों (चन्द्रनाड़ी और सूर्य नाड़ी) के लोप हो जाने से (अर्थात् सुषुम्ना के प्राधान्य से) (बाधाओं के लिए) घोर अंधकार हो गया । पाँचों सैनिक (नायक, पायक, पदाति) अर्थात् पंचेंद्रिय रात आई जानकर सो गईं । प्राकार और सिंहद्वार प्रकट हो गये अर्थात् अंदर जाने का मार्ग दिखाई पड़ा, आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने का मार्ग खुल गया ।)

(बिलुधा = विलुप्त, [illegible] बिलुधा = लोप हो गये ।

पौढ्या = सो गयी । पौलि पगारं = प्राकार में का फाटक ।

रूड़ा = अच्छी तरह से, रक्षित रूप से (कि चोर न ले जायँ ।)

मन जोगी है और काया उसकी गुदड़ी । यह रहस्य मुझे गुरु ने बताया । गोरखनाथ कहते हैं कि इस रहस्य को सुरक्षित रक्खो, नगरी में चोर छूटे हुए हैं [illegible] इस रहस्य के अनुसार में बाधा डालेंगे ।) ॥ १० ॥

१. (ग) [illegible] । २. (ग) [illegible] । ३. (ग) [illegible] । ४. (ग) [illegible] । ५. (ग) [illegible] । ६. (ग) [illegible] । ७. (ग) [illegible] । ८. (ग) [illegible] । ९. (ग) [illegible] । १०. (ग) [illegible] । ११. (ग) [illegible] । १२. (ग) [illegible] । १३. (ग) [illegible] ।

अवधू बोल्या तत विचारी, पृथ्वी मैं बकबाली[1] ।
अष्टकुल परवत[2] जल बिन तिरिया[3], अदबुद[4] अचंभा भारी ।।टेक।।
मन पवन[5] अगम उजियाला, रवि ससि तार गयाई[6] ।
तीनि[7] राज त्रिविधि[8] कुल नांहीं, चारि जुग सिधि[9] वाई ।।१।।
पांच[10] सहंस मैं पट अपूठा, सप्त[11] दीप अष्ट नारी ।
नव षंड पृथी इकवीस मांहीं, एकादसि एक तारी[12] ।।

अवधूत ने विचार कर तत्त्व कहा जो पृथ्वी में बकवास ही समझा जा रहा है। इस तत्त्व कथन में पूर्णिमा और अमावस्या को मिलाकर १६ तिथियों के बहाने योग वर्णित है। कुछ तिथियों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। (पड़िवा) यह अचंभे की बात है कि अष्टकुल पर्वत बिना जल के ही तैर गये। अष्टकुल पर्वत स्थूल काया है और जल सूक्ष्म माया। काया में माया और आत्मा दोनों हैं। जल अथवा माया के रहित हो जाने पर व्यक्ति के तरने में, मुक्त हो जाने में कोई संदेह नहीं रह जाता। (द्वैज) मन, पवन के संयम से अगम ज्योति प्राप्त हुई है जिसके समक्ष सूर्य, चन्द्र और तारे गत हो जाते हैं अर्थात् छिप जाते हैं, तीज त्रैगुण्य के परिवार का राज्य अब रह नहीं गया है। चौथ, जगत् में सिद्धि (का डङ्का) बज रहा है। पञ्चमी, सहस्रार में स्थिति हो गई है। छठ, उलटी अंतर्मुख प्रवृत्ति हो गई है। सप्तमी, (अलख ज्योति का) दीप बल उठा है। आठईं, कुंडलिनी शक्ति सिद्ध हो गई। नौमी, नौखंड पृथ्वी और २१ ब्रह्मांड (काया के ही) भीतर हैं। (दशमी का उल्लेख अंत में है।) एकादशी, एकतार, एकरस समाधि लगी हुई है। द्वादशी इला-पिंगला का त्रिकुटी में सुषुम्ना द्वारा मेल हो गया है। (त्रयोदशी का उल्लेख नहीं है।) चौदशी, चित्त ब्रह्म में लीन हो गया है। (पूर्णिमा या अमावस) षोड़श दलकमल विशुद्ध चक्र के सिद्ध होने से योगी के बत्तीसों लक्षण प्राप्त हो गये हैं तथा जरा-मरण और भवभीति नष्ट हो गई है। दसईं, उनमनी समाधि के द्वारा निरंजन रूप होकर दशमद्वार में वास पाकर उलटकर उसी शब्द में समा गये जिससे उत्पन्न

१. (घ) बंकवाली। २. (क) प्रवत। ३. (घ) तिरीया। ४. (घ) उदबुद। ५. (घ) पवनां। ६. (घ) आई। ७. (घ) तीन। ८. (घ) त्रिबधि। ६. च्यारि जुग सिध। १०. (घ) पंच। ११. (घ) सपत। १२. (क) नव षटपृथ्वी इकवीस मांहीं।

गङ्गा तीर मतीरा[1] अवधू, फिरि फिरि बणिजां[2] कीजै।
अरध बहन्ता[3] उरधैं लीजै, रवि ससि[4] मेला कीजै ॥ ३ ॥
चंद सूर दोऊ गगन[5] बिलूथा, भईला[6] घोर अंधारं।
पंच वाहक जब न्यंद्रा पौढ्या[7], प्रगट्या पौलि पगारं ॥ ४ ॥
काया कंथा, मन जोगोटा[8], सत गुर मुझ[9] लखाया[10]।
भणंत[11] गोरषनाथ रूड़ा[12] राषौ, नगरी चोर मलाया[13] ॥ ५ ॥ १० ॥

(सूक्ष्म तत्त्व से धारा छूट कर स्थूल का निर्माण हुआ है।) स्वाधिष्ठान और विशुद्ध आदि चक्र उसी धारा में बने हुए हैं। इसी धारा में अथवा इन्हीं चक्रों में ब्रह्मचारी अथवा आत्मा का निवास है। नौ सौ नदियाँ (संपूर्ण नाड़ी जाल) पनिहारिन होकर पुष्टि करनेवाली प्राणधारा से हंस (जीव, आत्मा) को सींचती हैं जिससे आत्मा रूपी बेल पुष्पित हो जाती है और इला (चंद्र नाड़ी) के फूल लवंग (शीतलता व्यापक ज्ञान) उत्पन्न हो जाता है जिसका फिर फिर वाणिज्य करना चाहिये। नीचे बहने वाली (अमृत की अथवा पवन की) धारा को ऊपर ले जाइये, ब्रह्मांड में चढ़ाइए। और चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी का मेल कीजिए।

ब्रह्मरंध्र में इन दोनों (चन्द्रनाड़ी और सूर्य नाड़ी) के लोप हो जाने से (अर्थात् सुषुम्ना के प्राधान्य से) (बाधाओं के लिए) घोर अंधकार हो गया। पाँचों सैनिक (वाचक, पादक, [illegible]) अर्थात् पंचेन्द्रिय रात आई जानकर सो गईं। प्राकार और सिंहद्वार प्रकट हो गये अर्थात् अंदर जाने का मार्ग दिखाई पड़ा, आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने का मार्ग खुल गया।)

विलूथा — विलुप्त, विलुत्त, विलुट्ट, विलुथ्थ, विलूथा = लोप हो गये।

पौढ्या = सो गयी। पौलि पगारं = प्राकार में का फाटक।

रूड़ा — अच्छी तरह से, रक्षित रूप से (कि चोर न ले जायँ।)

मन जोगी है और काया उसकी गुदड़ी। यह रहस्य मुझे गुरु ने बताया। गोरखनाथ कहते हैं कि इस रहस्य को सुरक्षित रखना, नगरी में चोर छूटे हुए हैं [illegible] इस रहस्य के अनुभव से [illegible]।) ॥ १० ॥

१. (ग) [illegible]। २. (ग) [illegible]। ३. (ग) [illegible]। ४. (ग) [illegible]। ५. (ग) [illegible]। ६. (ग) [illegible]। ७. (ग) [illegible]। ८. (ग) [illegible]। ९. (ग) [illegible]। १०. (ग) [illegible]। ११. (ग) [illegible]। १२. (ग) [illegible]। १३. (ग) [illegible]।

अवधू बोल्या तत विचारी, पृथ्वी मैं बकबाली[1] ।
अष्टकुल परवत[2] जल बिन तिरिया[3], अद्‌बुद[4] अचंभा भारी ।।टेक।।
मन पवन[5] अगम उजियाला, रवि ससि तार गयाई[6] ।
तीनि[7] राज त्रिविधि[8] कुल नांहीं, चारि जुग सिधि[9] बाई ।।१।।
पांच[10] सहंस मैं षट अपूठा, सप्त[11] दीप अष्ट नारी ।
नव षंड पृथी इकवीस मांहीं, एकादसि एक तारी[12] ।।

अवधूत ने विचार कर तत्त्व कहा जो पृथ्वी में बकवास ही समझा जा रहा है। इस तत्त्व कथन में पूर्णिमा और अमावस्या को मिलाकर १६ तिथियों के बहाने योग वर्णित है। कुछ तिथियों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। (पड़िवा) यह अचंभे की बात है कि अष्टकुल पर्वत बिना जल के ही तैर गये। अष्टकुल पर्वत स्थूल काया है और जल सूक्ष्म माया। काया में माया और आत्मा दोनों हैं। जल अथवा माया के रहित हो जाने पर व्यक्ति के तरने में, मुक्त हो जाने में कोई संदेह नहीं रह जाता। (द्वैज) मन, पवन के संयम से अगम ज्योति प्राप्त हुई है जिसके समक्ष सूर्य, चन्द्र और तारे गत हो जाते हैं अर्थात् छिप जाते हैं, तीज त्रैगुण्य के परिवार का राज्य अब रह नहीं गया है। चौथ, जगत् में सिद्धि (का डङ्का) बज रहा है। पञ्चमी, सहस्रार में स्थिति हो गई है। छठ, उलटी अंतर्मुख प्रवृत्ति हो गई है। सप्तमी, (अलख ज्योति का) दीप बल उठा है। आठईं, कुंडलिनी शक्ति सिद्ध हो गई। नौमी, नौखंड पृथ्वी और २१ ब्रह्मांड (काया के ही) भीतर हैं। (दशमी का उल्लेख अंत में है।) एकादशी, एकतार, एकरस समाधि लगी हुई है। द्वादशी इला-पिंगला का त्रिकुटी में सुषुम्ना द्वारा मेल हो गया है। (त्रयोदशी का उल्लेख नहीं है।) चौदशी, चित्त ब्रह्म में लीन हो गया है। (पूर्णिमा या अमावस) षोड़श दलकमल विशुद्ध चक्र के सिद्ध होने से योगी के बत्तीसों लक्षण प्राप्त हो गये हैं तथा जरा-मरण और भवभीति नष्ट हो गई है। दसईं, उनमनी समाधि के द्वारा निरंजन रूप होकर दशमद्वार में बास पाकर उलटकर उसी शब्द में समा गये जिससे उत्पन्न

---

१. (घ) बंकबाली। २. (क) प्रवत। ३. (घ) तिरीया। ४. (घ) उदबुद। ५. (घ) पवनां। ६. (घ) आई। ७. (घ) तीन। ८. (घ) त्रिवधि। ९. च्यारि जुग सिध। १०. (घ) पंच। ११. (घ) सपत। १२. (क) नव षटपृथ्वी इकवीस मांहीं।

द्वादसी त्रिकुटी चला पिंगुला, पंचदसि चित मिलाइ[1]।
षोड़स कवल[2] दल सोल बतीसी, जुरा[3] मरन भौ गमाई[4] ॥२॥
दसवें द्वार निरंजन उनमन वासा, सबदें उलटि समानां।
भणंत गोरषनाथ मछींद्र नां[5] पूता अविचल थीर[6] रहांनां ।३। ॥११॥

ॐ नमो सिवाइ, बाबू ॐ नमो सिवाइ[7]।
अह निसि वाइ मंत्र कौंणें रे उपाइ[8] ॥
अंगें अंगें अष्यरे जे देवै रे बुझाइ[9],
ताको[10] मैं चेला बाबू सो गुरू हमार[11] ॥टेक॥
ॐकार[12] अछै बाबू मूल मंत्र धारा,
ॐकार[12] व्यापीले[13] सकल संसारा।
ॐकार[12] नाभी हृदै[14] देव गुर सोई,
ॐकार साधे[15] बिना सिधि न होई ॥१॥

हुए थे मत्स्येंद्र का पुत्र गोरख कहता है कि इस प्रकार मैं अपने मूल अविचल रूप में स्थिर हो गया।

अष्ट कुल पर्वत = महाभारत के अनुसार कुल पर्वत सात हैं—महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विंध्य और पारियात्र। संभवतः योगमार्ग वालों ने हिमवत् को भी इसमें जोड़ा हो। हिमवत् का योगियों में बड़ा महत्त्व माना जाता है। बत्तीसी = बत्तीस लक्षण के लिए देखिए आगे ग्रंथ 'बत्तीस लछिन' ॥११॥

ॐ शिव को नमस्कार है। ॐ शिव को नमस्कार है। रात दिन प्राणवायु के आने जाने से बराबर 'सोऽहं हंसा' का जाप सांस के द्वारा होता रहता है। इस अजपा मंत्र को जिसने उत्पन्न किया। इस मंत्र के भिन्न अक्षरों को जो हमें समझा दे, वह हमारा गुरु, मैं उसका चेला।

इस (अजपा मंत्र) का मूल (उत्पत्ति स्थान) ॐकार है। इसी से सारी

१. (क) में 'एकादसि' [illegible] नहीं है। २. (ग) कंवल। ३. (क) जुरा। ४. (ख) [illegible] (ग) के अनुसार ऊपर की तुक 'मिलाई' होनी चाहिए। ५. (ख) मछिंद्र। ६. (ग) थिर। ७. (ग) सिवाय। ८. (ग) [illegible] ९. (ग) [illegible] १०. [illegible] ११. (ग) [illegible] १२. (ख) ॐकार। १३. (ग) [illegible] १४. (ग) [illegible] १५. (ख) [illegible]

नादैं[1] लीन ब्रह्मा नांदैं[1] लीना नर हरि,
नादैं[1] लीना ऊमापती[2] जोग ल्यौ धरि धरि।
नाद हीं तौ आछै बाबू सब कछू निधांनां[3],
नाद हीं थैं[4] पाइये परम निरबांनां[5] ॥२॥
बाई बाजै बाई गाजै बाई धुनि करै[6],
बाई षट चक्र बेधै अरधैं उरधैं मधि[7] फिरै।
सोहं बाई[8] हंसा रूपी प्यंडै[9] बहै,
बाई[8] कै प्रसादि ब्यंद[8] गुरमुष[9] रहै ॥३॥
मन मारै मन मरै मन तारै मन तिरै।
मन जै[10] अस्थिर होइ[11] त्रभुवन[12] भरै।
मन आदि मन अंत[13] मन मधें सार[14]।
मन हीं तैं[15] छूटै बाबू विषै विकार[16] ॥४॥

(सृष्टि की) धारा छूटी है। ॐकार सारे संसार में व्याप रहा है। ॐकार नाभि (स्वाधिष्ठान में और हृदय अनाहत, षोडश या द्वादश कमल चक्र) में निवास करता है। ॐकार ही देवता है, ॐकार ही गुरु। ॐकार को साधे विना सिद्ध नहीं होती है।

मूल ॐकार के अभिव्यक्त रूप नाद ही में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव लीन हैं। सहेज कर अच्छी तरह इसकी रक्षा करो (अथवा नाद को धर धर-सम्हाल कर योग प्राप्त करो) (क्योंकि) नाद ही सब कुछ का घर है।

वही वायु का शब्द है। षट चक्रों को वेध कर वायु ऊपर नीचे और मध्य में सर्वत्र फिरती रहती है। 'सोऽहं हंस' मंत्र रूप यह वायु प्रत्येक शरीर में प्रवाहित होती रहती है। वायु के प्रसाद से बिंदु (शुक्र) गुरु मुख (भिक्षा) में अथवा (ब्रह्मरन्ध्र) में स्थिर हो जाता है।

---

१. (घ) नादे २. (घ) ऊंमापति। ३. (घ) ध्यान। ४. (घ) नादै ही तैं ५. (क) नृबांना; (घ) पाईए परम निधांनां। ६. (घ) ए बाई। ७. (क) में नहीं; (घ) अरध उरध मधि फिरै। ८. (घ) बाय। ९. (घ) पिंडे पिंडे। १०. (घ) बिंद। ११. (घ) मुषि। १२. (घ) मन हीं जौ। १३. (घ) होय। १४. (घ) त्रिभवण। १५. (घ) अति। १६. (घ) मधे सारं। १७. (घ) थैं। १८. (घ) सकल विकारं।

सक्ति[1] रूपी रज आछै सिव[2] रूपी व्यंद[3] ।
बारह कला रव[4] आछै सोलह[5] कला चन्द ।
चारि[6] कला रवि की जे[7] ससि घरि आवै ।
तौ सिव[8] सक्ती संमि होवै, अन्त कोई न पावै ॥५॥
एही राजा राम आछै सर्वे अंगे[9] वासा ।
येही पांचौं[10] तत वावू सहजि[11] प्रकासा ।
ये ही पांचौं[10] तत वावू समकि समांनां[11] ।
वदंत गोरष इम[12] हरि पद जांनां[13] ।६। ॥१२॥

(वायु से मन वश होता है ।) मन ही मारता है, मन ही स्वयं मन-मारण का साधन है । मन ही तारने वाला है और मन ही तरने वाला । यदि मन स्थिर हो जाय तो त्रैलोक्य तर जाय । मन ही आरम्भ में है, मन ही अंत में है और मन ही बीच में है । (अर्थात् मूल रूप में मन शाश्वत तत्त्व है ।) (बाह्य मन को विवश करने वाले) विषय विकार भी मन ही के द्वारा छूट सकते हैं ।

रक्त शक्ति स्वरूप है और विंदु शिव स्वरूप । बारह कलाएं (मूलाधारस्थ अमृत शोषक) सूर्य की हैं और सोलह कलाएँ (सहस्रारस्थ अमृत स्रावक) चन्द्रमा की । अभी तो सूर्य की कलाएँ प्रधान हैं अर्थात शक्ति या माया प्रबल है ।) अगर रवि की चार कलाएँ शशि में मिल जायँ तो शिव और शक्ति सम हो जायं (और वह परम अनुभूति प्राप्त हो जाय) जिसका किसी को अन्त न मिले । (सूरज की चार कलाओं तथा बारह कलाओं और चन्द्रमा की सोलह कलाओं के लिए देखिए आगे वाले 'रोमावली' ग्रन्थ का अंतिम अंश ।)

यही परमानुभूति-गम्य तत्त्व राजा राम है (अर्थात आत्मा का स्वरूप है) जिसका सब अंगों में निवास है । यही पांचों तत्वों को सहज प्रकाशित करता है । (बिना इसके पांचों तत्त्व रह नहीं सकते ।) और बोध हो जाने पर इसीमें पांचों तत्त्व समा जाते हैं । गोरखनाथ कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्म जाना जाता है ॥१२॥

---

१. (घ) सकति । २. (घ) सुनि । ३. (घ) विंद । ४. (घ) रवि । ५. (घ) सोहे । ६. (घ) च्यारि । ७. (घ) 'जे' नहीं है । ८. (घ) त्यों । ९. (क) में 'सर्वे' के स्थान पर 'अवे' (घ) में 'राद...अंगे' के स्थान पर 'रामचन्द्र अंगे अंगे' । १०. (घ) एही पांच । ११. (घ) सहज । १२. (घ) गोरषनाथ । १३. (घ) जांणा ।

अवधू जाप जपौ[1] जपमाली[2] चीन्हौं, जाप[3] जप्यां फल होई।
अगम जाप जपीला[4] गोरष, चीन्हत[5] बिरला कोई ॥ टेक ॥
कवल[6] वदन काया करि[7] कंचन[8], चेतनि करौ[9] जपमाली।
अनेक जनम नां[10] पातिग छूटै[11], जपंत[12] गोरष चवाली[13] ।१।
एक अषीरी[14] एकंकार जपीला[15], सुंनि अस्थूल[16] दोइ[17] वांणीं।
प्यंड ब्रह्मांड[18] समि तुलि व्यापीले[19], एक अषिरी हम[20] गुरमुषि जांणीं ।२।

हे अवधूत-जप माला पहचानो और वह पाप जपो जिससे (वास्तविक ब्रह्मानुभूति रूप) फल प्राप्त होता हो। जिस अगम्य जप का जाप गोरख ने किया उसे कोई बिरला ही जानता है।

कमल (चक्र) को तो बनाओ मुंह (वदन), काया है सोना (मनके) और चैतन्य है जप की माला (जिस पर मनके गुथे रहते हैं)। गोरख कहते हैं इस प्रकार जप करते हुए अनेक जन्मों के पातक छूटते हैं।

(लोग वाचनिक मंत्रों का जाप किया करते हैं। उनमें अक्षरों की अलग अलग संख्या होती है। जैसे द्वादशाक्षर, षोड्षाक्षर मंत्र, किंतु गोरखनाथ जिस मंत्र का जप करते हैं उसका बाह्य वाणी से सम्बन्ध नहीं इसी लिये एकाक्षरी द्व्यक्षरी से वह दूसरा ही अर्थ लेते हैं। उनके लिए) शून्य और स्थूल आत्मिक और बाह्य शब्दमय, आभ्यन्तर और बाह्य) दोनों वाणियों से एकाकार अद्वय परब्रह्म का, जो पिंड और ब्रह्मांड में एक समान व्याप्त है, जप ही एकाक्षरी—मंत्र-जप है। यही एकाक्षरी हमने गुरुमुख से सीखी है।

---

१. (घ) जपौ। २. (घ) वनमाली। ३. (घ) तिने जाप। ४. (घ) में 'अजपा······' के स्थान पर 'ऐसा जाप जपंता'। ५. (घ) चीन्है। ६. (घ) कंवल। ७. (घ) भई। ८. (घ) कंचनरे अवधू। ६. (घ) चेतन कीया। १०. (घ) जन्म का। ११. (घ) छूटा। १२ (घ) जपै। १३. (घ) चमाली। १४. (घ) अक्षर। १५. (घ) जपीलै। १६. (घ) थूल। १७. (घ) दोय। १८, (घ) पिंड ब्रह्मंड। १६. (घ) व्यापीला। २०. (घ) एक अक्षर गोरखनाथ।

सक्ति[1] रूपी रज आछै सिव[2] रूपी व्यंद[3] ।
बारह कला रव[4] आछै सोलह[5] कला चन्द ।
चारि[6] कला रवि की जे[7] ससि घरि आवै ।
तौ सिव[8] सक्ती संमि होवै, अन्त कोई न पावै ॥५॥
एही राजा राम आछै सर्बे अंगे[9] वासा ।
येही पांचौं[10] तत बावू सहजि[11] प्रकासा ।
ये ही पांचौं[10] तत बावू समझि समांनां[11] ।
बदंत गोरष इम[12] हरि पद जांनां[13] ।६। ॥१२॥

(वायु से मन वश होता है ।) मन ही मारता है, मन ही स्वयं मन-मारण का साधन है । मन ही तारने वाला है और मन ही तरने वाला । यदि मन स्थिर हो जाय तो त्रैलोक्य तर जाय । मन ही आरम्भ में है, मन ही अंत में है और मन ही बीच में है । (अर्थात् मूल रूप में मन शाश्वत् तत्त्व है ।) (बाह्य मन को विवश करने वाले) विषय विकार भी मन ही के द्वारा छूट सकते हैं ।

रक्त शक्ति स्वरूप है और विंदु शिव स्वरूप । बारह कलाएं (मूलाधारस्थ अमृत शोषक) सूर्य की हैं और सोलह कलाएँ (सहस्रारस्थ अमृत स्रावक) चन्द्रमा की । अभी तो सूर्य की कलाएँ प्रधान हैं अर्थात शक्ति या माया प्रबल है ।) अगर रवि की चार कलाएँ शशि में मिल जायँ तो शिव और शक्ति सम हो जायं (और वह परम अनुभूति,प्राप्त हो जाय) जिसका किसी को अन्त न मिले । (सूरज की चार कलाओं तथा बारह कलाओं और चन्द्रमा की सोलह कलाओं के लिए देखिए आगे वाले 'रोमावली' ग्रन्थ का अंतिम अंश ।)

यही परमानुभूति-गम्य तत्त्व राजा राम है (अर्थात आत्मा का स्वरूप है) जिसका सब अंगों में निवास है । यही पांचों तत्वों को सहज प्रकाशित करता है । (बिना इसके पांचों तत्त्व रह नहीं सकते ।) और बोध हो जाने पर इसीमें पांचों तत्त्व समा जाते हैं । गोरखनाथ कहते हैं कि इस प्रकार ब्रह्म जाना जाता है ॥१२॥

---

१. (घ) सकति । २. (घ) सुनि । ३. (घ) विंद । ४. (घ) रवि । ५. (घ) सोहै । ६. (घ) च्यारि । ७. (घ) 'जे' नहीं है । ८. (घ) स्यौं । ९. (क) में 'सर्वे' के स्थान पर 'भवे' (घ) में 'राद...अंगे' के स्थान पर 'रामचन्द्र अंगे अंगे' । १०. (घ) एहीं पांच । ११. (घ) सहज । १२. (घ) गोरपनाथ । १३. (घ) जांणा ।

अवधू जाप जपौ[1] जपमाली[2] चीन्हौं, जाप[3] जप्यां फल होई।
अगम जाप जपीला[4] गोरष, चीन्हत[5] विरला कोई ॥ टेक ॥
कवल[6] वदन काया करि[7] कंचन[8], चेतनि करौ[9] जपमाली।
अनेक जनम नां[10] पातिग छूटै[11], जपंत[12] गोरष चवाली[13] ।१।
एक अषीरी[14] एकंकार जपीला[15], सुंनि अस्थूल[16] दोइ[17] वांणीं।
प्यंड ब्रह्मांड[18] समि तुलि व्यापीले[19], एक अषिरी हम[20] गुरमुषि जांणीं ।२।

हे अवधूत-जप माला पहचानो और वह पाप जपो जिससे (वास्तविक ब्रह्मानुभूति रूप) फल प्राप्त होता हो। जिस अगम्य जप का जाप गोरख ने किया उसे कोई बिरला ही जानता है।

कमल (चक्र) को तो बनाओ मुंह (वदन), काया है सोना (मनके) और चैतन्य है जप की माला (जिस पर मनके गुथे रहते हैं)। गोरख कहते हैं इस प्रकार जप करते हुए अनेक जन्मों के पातक छूटते हैं।

(लोग वाचनिक मंत्रों का जाप किया करते हैं। उनमें अक्षरों की अलग अलग संख्या होती है। जैसे द्वादशाक्षर, षोड्षाक्षर मंत्र, किंतु गोरखनाथ जिस मंत्र का जप करते हैं उसका बाह्य वाणी से सम्बन्ध नहीं इसी लिये एकाक्षरी द्व्यक्षरी से वह दूसरा ही अर्थ लेते हैं। उनके लिए) शून्य और स्थूल आत्मिक और बाह्य शब्दमय, आभ्यन्तर और बाह्य) दोनों वाणियों से एकाकार अद्वय परब्रह्म का, जो पिंड और ब्रह्मांड में एक समान व्याप्त है, जप ही एकाक्षरी—मंत्र-जप है। यही एकाक्षरी हमने गुरुमुख से सीखी है।

---

१. (घ) जपौ। २. (घ) वनमाली। ३. (घ) तिने जाप। ४. (घ) में 'अजपा······' के स्थान पर 'ऐसा जाप जपंता'। ५. (घ) चीन्हे। ६. (घ) कंवल। ७. (घ) भई। ८. (घ) कंचनरे अवधू। ९. (घ) चेतन कीया। १०. (घ) जन्म का। ११. (घ) छूटा। १२ (घ) जपै। १३. (घ) चमाली। १४. (घ) अक्षर। १५. (घ) जपीलै। १६. (घ) थूल। १७. (घ) दोय। १८, (घ) पिंड ब्रह्मंड। १९. (घ) व्यापीला। २०. (घ) एक अक्षर गोरखनाथ।

द्वै[1] अषिरी दोइ[2] पष उधारीला[3], निराकार जाप जपियां।
जे जाप सकल सिष्टि उतपंनां, ते जाप श्रीगोरषनाथ कथियां[4] ।३।
त्रिअषिरी त्रिकोटी जपीला[5], ब्रह्मकुंड निज थांनं[6] ।
अजपा[7] जाप जपंता[8] गोरष, आतीत[9] अनूपम[10] ग्यांनं ।४।
चौ अक्षिरी[11] चतर[12] बेद थापिला[13], चारि[14] षांणीं चारि[15] बांणीं।
मछिंद्र प्रसादैं[15] जती गोरष बोल्या, अजपा जपिला[16] थीर[17] रहांणीं ।५।१३।।

रमि[18] रमिता सौं[19] गहि चौगांनं[20], काहे भूलत हौ अभिमांनं[21] ।
धरन गगन[22] विचि नहीं अंतरा[23], केवल मुक्ति[24] मैदांनं[25] ।। टेक ।।

द्व्यक्षरी जप यह है कि हमने निराकार का जप करते हुए इहलोक और परलोक, निर्गुण और सगुण, सूक्ष्म और स्थूल दोनों पक्षों का उद्धार किया है। इस प्रकार जिस जप से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है, उसी का कथन गोरखनाथ ने किया है।

त्रिकुटी में जो ब्रह्म का कुंड है और आत्मा का निज स्थान है अजपा-जाप करते हुए, पहुँच के बाहर अनुपम ज्ञान को गोरखनाथ ने प्राप्त किया है, यही त्र्यक्षरी मन्त्र—जप है।

चतुर्वेद (ब्रह्मा) ने उद्भिज्ज, ऊष्मज, अंडज, और पिंडज ये चार खानि तथा सहज, संजम, सुपाइ और अतीत (—खाणी बाणी ग्रंथ) चार वाणी पैदा की हैं। इनके बीच में अजपा जाप जपते हुए स्थिर रहना ही, मछंदरनाथ के प्रसाद से गोरख कहते हैं, चतुरक्षरी मन्त्र—जप है ।।१३।।

परब्रह्म रमता राम से चौगान का खेल खेलो। अभिमान में क्यों भूलते

---

१. (घ) दोय अक्षर। २. (घ) उधारिले। ४. (घ) में 'निराकार... कथिया' के स्थान पर 'तिरला भै पारं। ऐसा जाप जतंतां। गोरष भागा भरम विकारं'। ५. (घ) त्री अक्षर त्री कोट मधे जपीले। ६. (क) पांन। ७. (क) अगम। ८. (घ) जपै। ९. (घ) अतीत। १०. (घ) अनूंपहि। ११. (घ) अक्षरी। १२. (घ) चारि; (क) चत्र। १३. (घ) थापिले। १४. (घ) च्यारि। १५. (घ) प्रसादे। १६. (घ) जापल्यौ। १७. (घ) हथीर। १८. (घ) रे। १९. (घ) सूं। २०. (घ) चौगांन। २१. (घ) 'मैं काहे भूतल हो अभिमानं' नहीं है। २२. (घ) धरणी गिगनि। २३. (घ) में नहीं अंतरा के स्थान पर 'अटक नहीं तहां'। २४. (घ) मुकति। २५. (घ) मैदांन।

एक मैं अनंत अनंत मैं एकै[1], एकै अनंत[2] उपाया।
अंतरि एक सौं[3] परचा हूवा, तब अनत एक मैं[4] समाया ।१।
अहरणि[5] नाद नैं व्यंद हथौड़ा, रवि ससि षालां पवनं।
मूल चापि ढिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागवनं ।२।
सहज पलांण पवन करि[6] घोड़ा, लै[7] लगांम चित चबका।
चेतनि असवार ग्यांन गुरू करि[8], और तजौ सब ढबका[9] ।३।
तिल कै नाकै तृभवन सांध्या[10], कीया भाव विधाता।
सो[11] तौ फिर आपण हीं हूवा, जाकौं[12] ढूँढण जाता ।४।

हो। पृथ्वी और आकाश के बीच कोई अंतर नहीं। यह अंतर न मानना अर्थात् अभेद दृष्टि ही कैवल्य मुक्ति का बृहत् मैदान है।

एक (परब्रह्म) ही में अनंत सृष्टि का वास है। और अनंत सृष्टि में एक ही परब्रह्म का निवास है। उस एक ही ने इस अनंत सृष्टि को उत्पन्न किया है। जब आभ्यंतर (हृदय) में उस एक से परिचय प्राप्त हो जाता है, तब सारी अनंत सृष्टि एक ही में समा जाती है।

अनाहत नाद अहरन है, और विंदु (शुक्र) हथौड़ा है। और इला पिंगला नाड़ियाँ हवा करने की धौंकनी हैं। मूलाधार को दबा कर दृढ़ आसन से बैठो (और लोहारी करो जिससे) आवागमन मिट जायगा।

सहज की जीन है, पवन का घोड़ा है, लय की लगाम बनाओ, चेतन (आत्मा) को सवार बनाओ और इस प्रकार और सब उपायों को छोड़ कर सवारी करते हुए गुरु ज्ञान तक पहुंचो, उसे प्राप्त करो।

मैंने त्रिभुवन को संधान कर लिया, लक्ष्य कर लिया, देख डाला, छान डाला पर परब्रह्म न मिला, जो तिल की ओट में था। परन्तु जब विधाता ने

---

१. (घ) एक तैं अनेक अनेक तैं ऐकैं। २. (घ) ऐकैं अनत। ३. (घ)ऐक ऐक सूं। ४. (घ) सो फिरि तहां। ५. (घ) में 'अहरणीनाद से लेकर' आवागमनं तक नहीं है। ६. (घ) का। ७. (घ) ल्यौ। ८. (घ) सबद गुरू का चेतन राषौ। ९. (घ) में—'सहज पलाणां' से लेकर 'ढबका' तक का पद केवल मुक्ति मैदानं' और 'एक मैं अनंत' के बीच है। १०. (घ) त्रिभुवन सूझै। ११. (क) सौ; (घ) में आधा चरण 'जो था सो फिर आपैं हूवा'। १२. (घ) कूं। ८. (घ) बिण परचै जुग बूडण बूडा, साच बिनां को सीधा।

स्ति कहूँ तौ कोइ न पतीजै, बिन आस्ति (अनंत सिध) क्यूं सीधा।
ष बौलै[1] सुणौ मछिंद्र हीरै हीरा बीधा[2] ।५। ॥१४॥

ततबणिजील्यौ[3] तत बणिजील्यौ, ज्यूं मोरा[4] मन पतियाई ॥टेक॥
ज गोरषनाथ बणिज कराई, पंच बलद नौ गाई।
ज सुभावै वाषर ल्याई[5], मोरे मन उड़ियांनी[6] आई ।१।
हट[7] घाट अम्हे[8] बणिजारा, सुंनि हमारा पसारा।
न[9] जाणौं देण न[10] जाणौं एद्वा[10] वणज हमारा ।२।
ंत गोरषनाथ[11] मछिंद्र का[12] पूता, एद्वा[13] बणिज ना अरथी।
णीं अपणीं पार[14] उतरणां, वचने लेणां[15] साथीं[16] ।३। ॥१५॥

दय में) भाव उत्पन्न किया (अर्थात् सच्ची लगन पैदा हुई) तो जिसे
ढ़ूँढ़ने जा रहा था वह मैं ही हो गया।
जब मैं कहता हूँ कि परब्रह्म है तो कोई विश्वास नहीं करता, (परन्तु)
यह नहीं है तो अनंत सिद्ध (इतने कष्ट-साध्य साधनों के द्वारा) क्यों
कते रहे। असल बात तो यह है कि हे मछंदर! इन सब साधनों का
श्य हीरे से ही हीरे को वेधना, आत्मा से परमात्मा में प्रवेश करना रहा है।
र्थात् परब्रह्म परमात्मा है तभी तो सिद्धों ने भी इतने कष्ट उठाये।) ॥१४॥
तत्त्व का इस प्रकार वाणिज्य करो कि मेरे मन में विश्वास हो जाय कि
वाणिज्य है। गोरखनाथ सहज ज्ञान का वाणिज्य करते हैं। पाँच
ज्ञानेन्द्रियों के) बैल हैं और नव (रंध्रों की) गायें, जिनके लिए सहज भाव
घर (बाखर) बनाया गया है अर्थात् उनकी प्रवृत्ति भी सहजानुरूप हो गयी
और मेरा मन ऊँची उड़ान लेने लगा है।
सुरहट (बहुत ऊँचे) घाट (स्थान) का मैं व्यापारी हूँ। शून्य का मैंने

---

१. (घ) कहै। २. (क) वेधा। ३. (क) बणिज्यालो; (घ) विणजीलो
णज' के स्थान पर सब जगह (घ) में 'विणज' है। ४. (घ) मेरा। ५.
) में यह अंश नहीं। ६, (घ) मोरे मनि उडियांणी। ७. (घ) सुरहंट।
(घ) हमे। ६. (घ) लेना जांणू दे न जांणू। १०. (घ) ऐसा। ११. (घ)
द कहै। १२. (घ) ना। १३. (घ) ए दवा। १४. (घ) आपणीं करणी
े। १५. (घ) गुर वचन लेना। १६. (घ) में 'सायी' लिखकर उसे गोढ
'सायी' बनाया है।

मांहरा[1] रे बैरागी जोगी, अहनिसि भोगी[2], जोगणि संग न छाड़ै[3]
मानसरोवर मनसा झूलंती[4] आवै, गगन[5] मंडल मठ मांडै रे[6] ॥टेक॥
कौंण अस्थांनिकि तोरा[7] सासू नैं सुसरा, कौंण अस्थांन क तोरा बासा।
कौंण अस्थांन-क तू नै जोगणि भेटी, कहां मिल्या घर वासा। १।
नाभ अस्थांन-क मोरा सासू नैं सुसरा, ब्रह्म अस्थांन-क[8] मोरा वासा।
इला प्यंगुला जोगण भेंटी[10] सुषमन मिल्या[11] घर वासा। २।

पसारा किया है (अर्थात् बेचने की सामग्री शून्य, कुछ नहीं है, दूसरे अर्थ में शून्य परब्रह्म है।) मैं न लेना जानता न देना, ऐसा (पद्धा) तो हमारा वाणिज्य है (जिसमें लेने देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।) मछन्दर का शिष्य कहता है कि ऐसे वाणिज्य का अर्थ यह है कि गुरु के वचनों के सहारे अपनी करनी के द्वारा मुक्ति लाभ करो ॥ १४ ॥

हमारा तो बैरागी जोगी (मन) रात दिन भोग में निरत रहता है। वह (मन) जोगी कभी भी जोगिन का साथ नहीं छोड़ता। मानस सरोवर (मन) में मनसा (इच्छा) झूलती (मस्त होकर) आती है और गगन मंडल (ब्रह्म-रंध्र) में मढ़ी बना लेती है।

हे जोगी (मन) तेरे सास-ससुर किस स्थान के हैं, तेरा निवास स्थान कहाँ है, जोगिन से तेरी भेंट कहाँ हुई, तुझे रहने का स्थान कहाँ मिला है।

मेरे सास-ससुर नाभि (मणिपूर चक्र) में रहने वाले हैं। मैं ब्रह्म स्थान (ब्रह्मरंध्र) का निवासी हूँ। (अर्थात् स्वयं परमात्मा तत्त्व हूँ।) इला पिंगला प्राणायाम के द्वारा मेरी जोगिन (कुंडलिनी) से भेंट हुई और सुषुम्ना में मुझे निवास मिला।

नाभि (मणिपूर) में कुल कुंडलिनी शक्ति का निवास माना जाता है इसी शक्ति (मूल या आदि माया) के द्वारा सृष्टि का निर्माण हुआ है।

---

१. (घ) म्हारै। २. (घ) में 'अहनिसि भोगी' नहीं है। ३. (घ) छाड़े रे। ४. (घ) मनसा देवी झूमती। ५. (घ) गिगनि। ६. 'रे' नहीं है। ७. (घ) असथांनि थारा; । (क) किणँ। ८. (घ) में 'नै' नहीं है। इसके बाद (घ) में 'कौण अस्थान क तोरा वासा' से 'मोरा सासू नैं सुसरा' तक नहीं है। ६. असथांनि। १०. (घ) यला पिंगुला जोगणि भेटी; (क) सुषमनां सङ्ग। ११. (घ) तहाँ भया।

कांम क्रोध वाली[1] चूंनां कीधा, कंद्रप[2] कीया कपूरं।
मन पवन[3], दो काथ[4] सुपारी, उनमनीं[5] तिलक सींदूरं[6]। ३।
ग्यांन गुरू[7] दोऊ तूवा अम्हारै, मनसा चेतनि डांडी।
उनमनीं[8] तांती बाजन[9] लागी, यहि[10] बिधि तृष्नां[11] षांडी। ४।
एणैं[12] सतगुरि अम्हे परणांव्या[13], अवला बाल कुवांरी[14]।
मछिंद्र प्रसाद[15] श्रीगोरष बोल्या, माया नां भौ टारी।५। ॥१६॥

तत वेली लो तत वेली लो, अवधू गोरषनाथ[16] जांणीं[17]।
डाल न मूल पहुप नहीं छाया, विरधि[18] करै विन पांणीं[19] ॥ टेक ॥

इसी लिए उसे ब्रह्मा और सावित्री का निवास मानते हैं। यही सास-ससुर कहे जाते हैं, क्योंकि ये स्थूल माया को पैदा करने वाले हैं।

यह जोगी मन माया का भोग इस प्रकार करता है कि बलवती न होने पावे। काम क्रोध को तो उसने जला कर चूना या भस्म कर दिया और कामदेव का कपूर (व्यंजना से स्वयं नष्ट हो जाने वाला)। मन और पवन ये दोनों कत्था और सुपारी बन गये और उन्मनावस्था (तुरीय) का उसके लिए सिंदूर का तिलक बना दिया। (अर्थात् माया के द्वार मायिक वस्तुओं का भक्षण कराकर अपने माया-पूर्ण अस्तित्व को ब्रह्मानुभूति कर दिया।)

ज्ञान और गुरु ये हमारे दो तूम्बे हैं और चेतन इच्छा (मनसा) तम्बूरे की डाँडी है। इस तम्बूरे पर कसी हुई उन्मनावस्था की ताँतें (तार) बज उठीं। इस प्रकार हमने तृष्णा को खंडित (नष्ट) किया। इस प्रकार बाल-कुमारी माया से सद्गुरु ने हमारा परिणय करा दिया है अर्थात् हम माया के स्वामी हो गये। और माया का भय दूर हो गया है॥ १६ ॥

तत्त्व रूपी बेल को हे अवधून! गोरखनाथ जानते हैं। इस बेल की न

---

१. (घ) वालि नैं। २. (घ) कंद्रप। ३. (घ) पवनां। ४. (घ) दोऊं पान। ५. (घ) उनमनि। ६. (घ) संदूरं। ७. (घ) गरू ना तूँबा म्हारै। ८. (घ) उनमनि। ९. (घ) वाजण। १०. (घ) अहि। ११. (घ) त्रिष्णां। १२. (घ) अम्हारै सतगुर। १३. (घ) परणाया। १४. (घ) कंवारी। १५. (घ) प्रसादे। १६. (घ) गोरषनाथि। १७. (घ) जांणी। १८. (घ) वृष। १९. (घ) बिन पांणी।

काया कुंजर तेरी बाड़ी अवधू[1], सत गुर[2] बेलि रुपांणीं[3]।
पुरिष[4] पांणती करै धणियांणौं[5] नीकै बालि[6] घरि आंणीं[3]। १।
मूल एढ्ढा जेढ्ढा ससिहर अवधू, पांन[7] एढ्ढा जेढ्ढा भांण।
फल[7] एढ्ढा जेढ्ढा पूनिम चंदा, जोउ जोउ[8] जांण[9] सुजांण। २।
बेलड़ियां[10] दौं लागी[11] अवधू, गगन पहूँती झाला[12]।
जिम जिम बेलीं दाझबा[13] लागी, तब मेल्है[14] कूंपल डाला[12]। ३।

शाखाएं हैं, न जड़ है, फूल हैं, न छाया है और बिना पानी दिये बढ़ती रहती है। हे अवधूत काया कुंज में तेरी वाटिका (बाड़ी) है जिस में सद्गुरु ने यह तत्त्वरूपी बेल रोपी है। पुरुष (पवन) रूप किसान उसकी बहुत पिलाई (सिंचाई) करता है। और फल स्वरूप सुदर बाली घर लाता है अर्थात् अच्छी फसल काटता है। इसका मूल ऐसा है जैसे शशधर (चंद्रमा) अर्थात् इसका मूल सहस्रार में स्थित चन्द्रमा में है। और पत्ते ऐसे हैं, जैसे सूर्य। चन्द्रमा शीतल ज्ञानामृत का बोधक है और सूर्य ज्वालामयी माया का। (अर्थात् *माया का भी अधिष्ठान ब्रह्म ही है। यह माया ऊर्ध्वमूल अधःशाख है।* सहस्रार (चंद्र) में उसका मूल है और मूलाधार चक्र (सूर्य) में उस का पूर्ण विकास है।) फल इस बेल का ऐसा है जैसे पूर्णिमा का चंद्रमा। अर्थात् इस बेल का कोई पूर्ण लाभ उठावे तो उसमे अमृत (ज्ञान) मय चन्द्रिका (अमृतमय और सहस्रारस्थ होने के कारण चन्द्रमा ज्ञान और अमरत्व का द्योतक है।) प्राप्त होता है, जिसको सुजान (ज्ञानवान) लोग ही जान सकते हैं।

इस बेल पर जब आग (संसार की दुःख रूप अग्नि) लगती है तो इतनी भयंकर कि उसकी लपटें (झाला, ज्वाला) आकाश तक पहुँच जाती हैं परन्तु ज्यों ज्यों बेल पर आग लगती जाती है, त्यों त्यों उसकी शाखाएँ कोंपल डालने लगती हैं (अर्थात् भवाग्नि माया के प्रसार के लिए बहुत अनुकूल है। जितनी संसार की जलन (तृष्णा) बढ़ती जाती है,

---

१. (घ) रे अवधू। २. (घ) सतगुरु। ३. (घ) रुपांणी...आंणी; (क)...आंनीं। ४. (घ) पुरुष पांनति करै धनियांनौं। ५. (क) नींक वालि। ६. (क) पान। ७. (घ) फूल। ८. (घ) जोवै जोवै। ९. (क) जाण। १०. (क) सींदाये; । (घ) बेलड़ीयां। ११. (घ) लागा रे। १२. (घ) झालं ...डालं। १३. (घ) बेलड़ी दाझण। १४. (घ) मेल्या।

काटत वेली कूंपल मेल्ही सींचतड़ां कुमलाये[1]।
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरष वोल्या, नित नवेलड़ी थाये[2] ।४॥१७॥

वूझौ[3] पंडित ब्रह्म गियांनं[4], गौरष वोलै जाण सुजांनं[5] ॥टेक॥
वीज विन निसपती मूल त्रिन विरषा[6] पांन फूल विन फलिया[7]।
बांझ[8] केरा वालुड़ा, प्यंगुल[9] तरवरि चढ़िया[10]। १।
गगन विन चद्रम[11] ब्रह्मांड विन सूरं, झूझ विन रचिया थानं[12]।
ऐ[13] परमारथ जे नर जांणैं, ता घटि[14] परम गियांनं। २।

उतना ही मनुष्य उसमें अधिकाधिक उलझता चला जाता है। यह वेल काटे नहीं कटती। जितने प्रयत्न इसे बलात् नष्ट करने के किये जाते हैं उतने ही यह कोंपलें फेंकती जाती है, नष्ट नहीं होती। परन्तु इसे यदि ज्ञानामृत चंद्र-स्राव से सींचिए तो यह कुम्हला जाती है। (परन्तु इस वेल का सर्वथा नाश नहीं हो सकता। माया का एक व्यक्ति के लिये अंत हो सकता है परंतु शेष संसार को वह फिर बाँधे रक्खेगी। एक की साधना के सफल होने से सारा संसार मुक्त नहीं हो जाता। अपने अपने बंधन सबको अलग अलग छुड़ाने होते हैं। इस प्रकार यह माया रूप वेल सर्वदा नवीन बनी रहती है। (थाये=स्थित रहती है।) मछंदर के प्रसाद से गोरषनाथ का यह वचन है ॥ १६ ॥

हे पंडित ब्रह्मज्ञान को समझो। सुजान ज्ञानवान् गोरखनाथ ब्रह्मज्ञान कहता है। ज्ञान अथवा परब्रह्म की बिना बीज के उत्पत्ति हुई है, (उसका कोई कारण नहीं है) वह बिना मूल का वृक्ष है (निराधार है), वह बिना पत्तों और फूलों के फल जाता है अर्थात् प्राकृतिक नियम उसे नहीं बाँधते। वह बंध्या का बालक है (अर्थात् जन्मा है और किसी कारण का कार्य नहीं है।) वह बिना आकाश का चन्द्रमा है और बिना ब्रह्मांड का सूर्य, बिना

---

१. (घ) सींचतड़ा सींदाये; (घ) कुमलाई। २. (घ) निति निवेरड़ी थाई। ३. (घ) पूछौ। ४. (घ) गिनांन—सुजांना। ५. (घ) नृपा। ६. (घ) बिण फूलीया। ७. (क) वांज। ८. (घ) चन्छि बिण न्हैरेला पिंगुला। ९. (घ) चढ़ीया, रचीया, गिलीया, जलीया, भरीया, पढ़ीया। १०. (घ) गिगन बिण चंद्र। ११. (घ) ब्रह्मंड बिण सूर; (क) में 'बिन सूरं' नहीं। १२. संभवतः शुद्ध पाठ ऐसा हो—झूझ रचिया बिन थानं। १३. (क) एक। १४. (घ) घट।

सुंनि[1] न अस्थूल[2] ल्यंग[3] नहीं पूजा, धुंनि[1] बिन अनहद गाजै ।
बाड़ी बिन पहुप पहुप बिन साइर[4], पवन बिन भृंगा[5] छाजै ।३।
राहु बिन गिलिया[6] अगनि बिन जलिया[6], अंबर बिन जलहर भरिया[6]।
यहु परमारथ कहौ[7] हो पंडित, रुग जुग स्यांम अथरबन पढ़िया[6] ।४।
ससंमवेद सोहं प्रकासं[8], धरती गगन न आदं[9] ।
गंग[10] जमुन बिच षेलै[11] गोरष, गुरू मछिंद्र प्रसादं ।५। ॥१८॥

(मैदान) के युद्ध है । इस परमार्थ को जो जानता है उसके शरीर में अर्थात् उसके भीतर परम ज्ञान (उदय हो जाता है ।)

वह न शून्य है न स्थूल, न उसके चिह्न है न उसकी पूजा ही है । बिना शब्द के अनाहत नाद का गर्जन होता है । बिना वाटिका के पुष्प है और बिना पुष्प के सौरभ (?) है और बिना वायु के (वायु सुगंधि को चारों ओर विकीर्ण करता है, इसीलिए उसे गंधवाह कहते हैं । भौंरों तक सुगंधि को हवा ही पहुँचाती है ।) भृंगों का (मँडराता हुआ) समूह शोभा दे रहा है ।

वह राहु के बिना ग्रस लेता है । अग्नि के बिना जला देता है, आकाश के बिना बादल उमड़ आते हैं । हे ऋग्, यजुः, साम और अथर्वण वेदों को पढ़े हुए पंडितो ! इस परमार्थ का वर्णन करो (अथवा पाठांतर से बताओ इसका क्या प्रमाण है ? क्या प्रामाणिक अर्थ है ? इसे कैसे घटित करते हो ?) निरालंब ब्रह्मानुभूति किसी कारण का कार्य नहीं है । यहाँ, माया के निरसन जगत् के ध्वंस और आनन्दानुभव की ओर संकेत है जो ब्रह्मानुभूति के द्योतक हैं । यह स्वसंवेद्य स्वयं-प्रकाश सोहंभाव है जो न धरती में है, न आकाश में है और न जल में । (आर्द, आर्द्र, जलमय । 'आदं' काल का संकेत भी कर सकता है, अर्थात् जिसका आदि नहीं है ।) गुरु मछंदर के प्रसाद से गोरखनाथ गंगा (इडा) और जमुना (पिंगला) के बीच (सुषुम्ना) में खेल रहा है (अर्थात् समाधिस्थ होकर आत्म-साक्षात्कार कर रहा है ॥१८॥

---

१. (घ) सुनि, धुनि । २. (घ) थूल । ३. (घ) लिंग । ४. (घ) सायर । संभवतः वह 'सौरभ' या 'सौरह' है । 'साइर' का तो अर्थ नहीं बैठता । ५. (घ) भ्रांगा । ६. (घ) गिलीया, जलीया, भरीया, पढ़ीया । ७. (घ) परमाण कहौ ; (क) परमारथ करौ । ८. (घ) प्रकासा । ९. (घ) चंद । १०. (घ) गंगन ११. (घ) बोल ।

बदंत गोरषनाथ[1] दसवीं द्वारी[2] सुर्ग नैं केदार चढ़िया[3] ।
इकवीस[4] ब्रह्मण्ड ना सिषर ऊपरि,[5] ससमवेद ऊचरिया[6] ।।टेक।।
द्वादस दल भींतरि[7] रवि सक्ती, ससि षोड़स सिव थांनं[8] ।
मूल सहंसर[9] जीव सींव घरि उनमनी[10] अचल धियांनं[11] । १ ।
नाद अनाहद गरजै[12] गेणं, पछिम ऊग्या भांणं ।
दखिण डीबी उत्तर नाचै, पाताल पूरब तांणं । २ ।
चंद सूर नीं मुंद्रा कीन्ही[13], धरणि भस्म जल मेला ।
नादा व्यंदा[14] सींगी आकासी[15], अलख गुरू नां[16] चेला । ३ ।

गोरख कहते हैं कि दसवें द्वार (ब्रह्मरंध्र) में मैं स्वर्ग और मोक्ष पद (शिव-स्थान केदार) तक चढ़ गया हूँ । और २१ ब्रह्मांडों के ऊपर से स्वसंवेद्य परमानुभूति का उच्चारण कर रहा हूँ । सूर्य की (मूलाधारस्थ) बारह कलाओं में शक्ति का निवास है और चन्द्रमा की सोलह कलाओं में शिव का स्थान मूलाधार सहस्रार में मिल गया है । और जीव शिव स्थान में उन्मनावस्था द्वारा अचल ध्यानस्थ हो गया है ।

गगन (त्रिकुटी) में अनाहत नाद का गर्जन हो रहा है । सूर्य पश्चिम (सुषुम्णा) में उदय हो गया है । (अर्थात् चंद्रमा से मेल का उपक्रम हो गया है ।) दक्षिण (मूलाधार तथा स्वाधिष्ठानस्थ शक्ति उत्तर दिशा अर्थात् ब्रह्मरंध्र में नाच रही है । पाताल (स्वाधिष्ठान) का खिंचाव पूर्व अर्थात् ज्ञानोदय की दिशा अर्थात् सहस्रार की ओर हो रहा है ।

चंद्र और सूर्य (इड़ा और पिंगला) दोनों नाड़ियों को मूँद दिया । अर्थात् सुषुम्णा का मार्ग खोल दिया । यही हमारा मुद्रा-धारण है । पृथ्वी (अर्थात् सांसारिकता) का भस्म जल में डाला (शरीर पर मलने के लिए । यही योगी

---

१. (क) गोरिनाथ । २. (घ) दसवें द्वारें । ३ (घ) सरग नैं केदारें चाढ़ीया रेलो । ३. (घ) में प्रथम दो तुकों के बाद 'रे लो' तथा अन्यों के बाद 'लो' आता है । ४. (घ) यकवीस । ५. (घ) ऊपरें । ६. (घ) उचारीया रे लो । ७. (घ) अंमि अंतरे । ८ (घ) सिव सोन स्थानं लो । ९. (घ) में मूल सहंसर के स्थान पर 'मूल कमल तहां' १०. (घ) उनमनि । ११. (घ) निधांनं । १२ (क) गजै । १३. (घ) नीं मुद्रा कीन्ही । १४. (घ) भेदी । १५. (घ) आकासे । १६ (घ) ना ।

तीन सै साठि थेगली कंथी[1], इकवीस सहंस छ सै धागं[2]।
बहतरि नाड़ी[3] सुई नवासी[4], बावन वीर सीया लागं[5]।४।
इली सोधि धरि[6] प्यंगुली[7] पूरी, सुषमनी चढ़[8] असमानं।
मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या,[9] निरंजन सिधि नैं थानं[10]।५। ॥१६॥
आंवलियौ थलि मौरियौ[11] ऊपरि नींब बिजौरै फलियौ।
सो फल षातां लागै[12] मीठौ, जांणैं रे जिन गुरु प्रसादैं दीठौ ॥टेक॥

का भस्म धारण है।) इस प्रकार नादी (नादवाले अर्थात् जो नादानुसंधान को प्रधानता देते हैं), बिंदी (जो बिन्दु रक्षा को प्रधानता देते हैं) सिंगी (अनाहत नाद के प्रतीक स्वरूप जो श्रृंगीनाद बजाते हैं और आकाशी (जो आकाश अर्थात् त्रिकुटी को लक्ष्य किये रहते हैं।) और अलक्ष्य गुरू के चेले हो जाते हैं।

नाथ योगी शरीर में ३६० हड्डियों का होना मानते हैं। ये हड्डियां ही वे थेगलियां हैं जिन से गुदड़ी (कंथा) (यहाँ पर देह) बनी है। २१,६०० साँसें जो दिन भर में आदमी लेता है, वे तागे हैं जिन से ये थेगलियाँ आपस में सिली हुई हैं। बहत्तर नाड़ियाँ नवासी (बहुत सी) सुइयाँ हैं और बावन वीर चेतन इसको सीने वाला दर्जी।

इड़ा नाड़ी को सोध कर पिंगला में पूरना, भरना, मिला देना चाहिये। फिर सुषुम्णा के मार्ग से आकाश में चढ़ जाना चाहिये। इस प्रकार मछंदर के प्रसाद से जती गोरख ने निरंजन सिद्धि का स्थान बतलाया है॥१६॥

आँवला अथवा आम (आंव + ला × इयो) अपनी जगह पर बौरा किन्तु उसमें फल निकला निंबौरी (नींब का बीज वाला फल) वह फल अर्थात् निबौरी खाने में मीठी लगती है। अर्थात् मूलाधिष्ठान परब्रह्म (सुस्वाद और स्वास्थ्यकर आम या आँवले) पर माया का अध्यारोप हुआ है, (निबौरी फली है) परंतु (जानकर खाने वाले को इसमें भी मिठास मिल जाती है) माया में भी ब्रह्मानुभूति का सुख मिल जाता है। इसे वही जानता है जिसे

---

१. (घ) कंथा। २. (घ) सहंस यकीस छ सै धागा। ३. (घ) नाकी। ४. (घ) सूई निवासी। ५. (घ) सींवण लागा। ६. (घ) नैं। ७. (घ) पिंगुला। ८. (घ) सुषमनि चढ़ी। ९. (घ) बदंत गोरषनाथ सुणौ मछिंद्र। १० (घ) सिध अस्थानं लो। ११. (क) मारियौ। १२. (क) में 'लागै' नहीं।

ऊँट सिचाणैं जब ग्रह्यौ, जाइ कैरौ[1] डाली बैठौ।
बांझ बेटा जनमियूँ, नैणें पुरिष न दीठौ। १।
लाकड़ बूडै[2] सिल तिरै, देषतां जग जाइ।
ऊट मनाली बहि गयो, सुसियो पौली न माइ। २।
डूंगरि मंछा जलि सुसा[3] पांणीं मैं दौं लागा।
अरहट बहै तृसालवां, सूलै कांटा भागा। ३।

गुरु के प्रसाद से इसका दर्शन अर्थात् अनुभव हो गया है। ऊँट (मन) को जब बाज (यम) ने पकड़ लिया तो वह करीले वृक्ष (जगत) की शाखा पर बैठ गया। मायाविष्ट होकर मन आवागमन के चक्कर में पड़कर यम के शासन में आ जाता है और दुःखमय जगत् को ही सुख की वस्तु समझने लगता है।

बांझ (माया) ने पुरुष (ब्रह्म) से संग करना तो दूर रहा नजर से भी देखे बिना पुत्र (ब्रह्मानुभव) पैदा किया है। जब मायाधीन पुरुष (जीव) माया से अलग कर दिया जाता है तभी उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है। लक्कड़ (जो भवसागर के जल से चंचल हो जाते हैं,) डूब जाते हैं और पत्थर (जो उससे प्रभावित नहीं होते,) स्थिर रहते हैं। (इस प्रकार)

एक गाइ नौ बछड़ा, पंच दुहेवा जाइ[1] ।
एक फूल सोलह करंडियां मालनि मन मैं हरिष न माइ । ४ ।
पगां बिहूनड़ै चोरी कीधी, चोरी नैं आंणीं गाई ।
मछिंद्र प्रसादै जति गोरष बोल्या, दूभै पणी[2] न ब्याई ।५ ।। २० ।।

गोरष लो गोपलं लो, गगन गाइ[3] दुहि पीवै लो,
मही बिरोलि[4] अंमीं रस पीजै[5], अनभै[6] लागा जीजै लो ।।टेक।।
ममिता बिनां माइ मुइ[7], पिता बिनां[8] मूवा छोरू लो ।
जाति बिहूँनां[9] लाल ग्वालिया, अहनिस चारै गोरू लो । १ ।

एक गाय (आत्मा) है जिसके नौ बछड़े (नवरंध्र) हैं पर जो उसकी आध्यात्मिक शक्ति का पान (ह्रास) करते हैं और पाँच (पंचेंद्रियाँ) उसे दुहनेवाली हैं । अर्थात् शरीर आत्मा की शक्तियों को विकसित नहीं होने देता । परंतु योगाभ्यास से एक फूल (अमृतानन्द) प्राप्त हुआ है जो सोलह करंडियों में भर रहा है । अर्थात् सोलह कलाओं वाले चन्द्रमा में व्याप्त परमानन्ददायक अमृत प्राप्त हुआ है जिससे आत्मारूप मालिन के आनन्द का ठिकाना न रहा ।

बिना पैरों के चोरी की (अचल समाधिस्थ हो गये) और गाय को चोरी कर के ले आये (ब्रह्मानुभूति प्राप्त की) जो दूसरी बार न बिआई (अर्थात् आवागमन सर्वदा के लिए रुक गया ।)—मछंदर के प्रसाद से यती गोरख यह कहता है ।। २० ।।

गोरखनाथ ग्वाला है । वह आकाश मंडल रूप गाय (ब्रह्मानुभूति) को दुह कर पीता है । मट्ठे (निस्सार मायिक वस्तुओं) को विलो (मथ) कर वह (सार रूप) अमृत का पान कर लेता है (अर्थात् सार ग्रहण कर निस्सार का त्याग कर देता है ।) और इस प्रकार अभय से लगा हुआ (अर्थात् उस ब्रह्मानुभूति से स्पृष्ट होकर जिससे जगत का कोई भय नहीं रह जाता,) जीता है । ममत्व के चले जाने पर माया भी नष्ट हो गयी है । और पिता (अहंकार

---

१. (क) जाये । २. संभवतः 'पैणि' ; (घ) में 'प' नहीं है पहले शब्द के साथ मिलाकर 'दूभणि' कर दिया गया है । ३. (घ) गिगनि गाय । ४. (घ) महीं बिलोय । ५. (घ) महा रस सांचौ । ६. (घ) अणभै । ७. बिहूंणी माई मरि गई । ८. (घ) बिहुंणां । ९. (घ) बिहूंणां ।

अनहद सबदैं संष वुलाया, काल[1] महादल दलिया[2] लो ।
काया कै[3] अंतरि[4] गगन मंडल मैं, सहजै स्वामी[5] मिलिया[2] लो ।२।
ऐसी[6] गावत्री घर बारि हमारै, गगन[7] मंडल मैं लाधी लो ।
इहि[8] लागि रह्या[9] परिवार हमारा[10], लेइ निरंतरि बांधी[11] लो ।३।
कानां पूछां सींग विवरजित[12], वर्न[13] विवरजित गाइ लो ।
मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, तहां रहै[14] ल्यो लाइ लो ।४।।२१।।

अवधू ऐसा ग्यांन विचारी, ता मैं झिलमिलि जोति उजाली[15]।।टेक।।
जरां जोग तहां रोग न व्यापैं, ऐसा परषि गुर करनां[16] ।
तन मन सूं जे परचा[17] नांहीं, तौ काहे को पचि मरनां[16] । १ ।

ममत्व) के बिना उसके बच्चे (षड्रिपु) भी मर गये । इस प्रकार जाति (जन्म) से हीन होकर लाल ग्वालिया (? गोरखनाथ ?) रात दिन गोरू चराता रहता है, इंद्रियों को संयत मार्ग में लगाये रहता है)। अनाहत शब्द का संख बजा कर ललकारते हुए उसने काल की बड़ी सेना को दलित कर दिया है । इससे काया के भीतर ही आकाश मंडल में सहज रूप से स्वामी पर-ब्रह्म हो गया है ।

हमारे घर के दरवाजे पर ऐसी गाय (गायत्री) बँधी है जिसे हमने आकाश मंडल (ब्रह्मरंध्र) में प्राप्त (लाधा, लब्ध, लब्ध) किया । मेरा सारा परिवार (सकल इन्द्रियों सहित मन) इसी गाय की सेवा में लगा रहता है अथवा इसी के प्रभाव से पलता है क्योंकि सब कुछ का अधिष्ठान ब्रह्म ही है । इसे लेकर निरंतर में बाँध दिया है । यह गाय कान, सींग पूंछ से रहित है और रंग से भी रहित है । यती गोरखनाथ कहता है कि मछन्दर के प्रसाद से हम वहाँ (इस गाय में अर्थात् ब्रह्मानुभूति में लवलीन रहते हैं ।) ।। २१।।

हे अवधूत ! ऐसे ज्ञान का विचार किया है जिसमें ज्योति का झिलमिल

---

१. (क) काल । २. (घ) दलीया, मिलीया । ३. (क) के । (घ) अंतर । ५. (घ) स्वामी । ६. (घ) ऐसी । ७. (घ) सुन । ८. (घ) तिहि । ९. (घ) रह्यो । १०. (घ) माहरो । ११. (घ) ल्यो निरंजन बांधी । १२. (घ) सींग कांन खुर पूंछ भरम्‍ब विन । १३. (घ) बरन । १४. (घ) रहा । १५. (क) पुरी में झलामलि उजवारी । १६. (घ) करणां···मरणां । १७. (घ) मेरी परचा ।

काल न मिट्या जंजाल न छुट्या[1], तप करि हूवा न[2] सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै[3] गुर मिलै न पूरा[4]। २।
सप्त धात का काया पींजरा[5], ता मांहि जुगति बिन[6] सूवा।
सतगुरु मिलै तो ऊबरै बावू[7], नहीं तौ[8] परलै हूवा[9]। ३।
कंद्रप रूप काया का मंडण, अँबिरथा[10] कांइ[11] उलींचौ[12]।
गोरष कहै सुणौं रे भौंदू[13], अरंड अँमीं कत[14] सींचौ।४॥२२॥

प्रकाश दिखायी देता है। जहाँ योग है वहाँ रोग नहीं व्यापता। ऐसा परख करके गुरु करना चाहिए कि योग की जगह रोग न हो जाय। यदि योगाभ्यास के द्वारा तन मन से ब्रह्म-साक्षात्कार (परिचय) न हुआ तो योगाभ्यास के द्वारा व्यर्थ का कष्ट क्यों झेला जाय। यदि पूर्ण (योगी) गुरु न मिला तो कोई अपने कुल का नाश न करे, कुल को छोड़ कर जोग न ले, (क्योंकि अधूरे को गुरु बनाने से काल नहीं मिटता और जगत का जंजाल नहीं छूटता। ऐसा अधूरा तप करने से साधक शूर नहीं होता)

यह शरीर सात धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) से बना हुआ पिंजरा है जिसमें जीव युक्ति को न जाननेवाले सुए के समान बन्द है।

सद्गुरु के मिलने से ही उद्धार हो सकता है, नहीं तो निश्चय प्रलय (नाश) हुआ समझो। (परमात्मा ने मनुष्य शरीर की इतनी सुन्दर सजावट की है, मनुष्य को कामदेव का सा सुन्दर रूप दिया है। इसे व्यर्थ (अँबिर्था) क्यों फेंकते हो ? हे मूर्ख ! अधकचरे गुरुओं से सीखे योग पर इस शरीर को लगाना वैसा ही है जैसा रेंडी के पेड़ को अमृत से सींचना॥ २२॥

---

१. (घ) चूका। (घ) भयामन। ३. (घ) जे। ४. (घ) में इसके आगे इतना और है—'बसती मैं सुनि सुनि मैं बस्ती अगम अगोचर ऐसा। गिगन मडल में बालक पेलै ताका नांव धरौगे कैसा।' जो थोड़े अन्तर से पहली सबदी है। ५. (घ) अष्टधात का बण्या प्यंजरा। ६. (घ) जतन का। ७. (घ) ऊबरै। ८. तर। ९. (घ) में इसके आगे इतना और है—"नाभि कँवल तैं लहरि उतपनी झिलिमिलि सोपै बाई। पुध्या त्रिषा ताहि न व्यापै ता पदि रह्या समाई॥" १०. (क) अबृथा। ११. (घ) कांय। १२. (घ) उलीचौ १३. (घ) नर भौंदू। १४. (घ) अमीं एरंड कांय।

आऊं नहीं जाऊं निरंजन नाथ की दुहाइ।
प्यंड ब्रह्मंड षोजंता[2], अम्हे सब सिधि पाई ॥ टेक ॥
काया गढ़ भींतरि नव लष खाई।
दसवैं[3] द्वारि अवधू ताली लाई। १।
काया गढ भींतरि देव देहुरा कासी।
सहज सुभाइ[4] मिले अविनासी। २।
बदंत गोरपनाथ सुणौ नर लोई।
काया गढ जीतैगा[5] विरला कोई। ३ ॥२३॥

पवनां रे तूं जासी कौनैं बाटी।
जोगी अजपा जपै त्रिवेणीं कै घाटी ॥ टेक ॥
चंदा गोटा टीका करिलै, सूरा करिलै बाटी।
मूंनीं राजा लूगा धोवै, गंग जमुन की घाटी। १।

निरजन नाथ की दुहाई है। मेरा आवागमन मिट गया है। हमने पिंड में ब्रह्मांड को ढूंढ कर सब सिद्धि प्राप्त कर ली है। काया रूप गढ़ के भीतर नौ लाख खाइयाँ हैं। (नवरंध्र) अथवा चौरासी लाख योनियों के संस्कार जिन्हें पाट कर, विजय कर दशम द्वार ब्रह्मरंध्र) तक पहुँचा जाता है जिस पर ताला लगा हुआ है। (जिसे कुंडलिनी शक्ति के द्वारा खोलना आवश्यक है।) देव देवालय और तीर्थ (त्रिकुटी, काशी) इसी शरीर रूपी गढ़ के भीतर हैं, वहीं अविनाशी परमात्मा सहज स्वभाव से मुझे मिले हैं गोरखनाथ कहते हैं कि हे नर लोगो, काया गढ़ को कोई विरला ही जीत सकता है ॥ २३ ॥

हे पवन (प्राण !) तुम किस रास्ते जाओगे। त्रिवेणी (त्रिकुटी में योगी अजपा जाप कर रहा है, (वह मार्ग बन्द है।) चन्द्रमा को तो बनाओ साबुन की टिकिया और सूरज को पाटी जिस पर पटक कर धोबी कपड़े धोता है। इस प्रकार सुषुम्ना में स्थित होकर योगिराज शरीर रूपी कपड़े को धोता है।

---

१. (प) पिंड। २. (प) षोजतां। (प) दसवैं। ४. (प) सहाज सुभाय।
५. (प) जीतैगा।

अरधैं उरधैं लाइलै कूंची, थिर होवै मन तहां थाकीले पवनां।
दसवां द्वार चीन्हिले, छूटै आवा गवनां। २।
भणत गोरषनाथ मछिंद्र ना पूता, जाति हमारी तेली।
पीड़ी गोटा काढ़ि लीया; पवन षलि दीयां ठेली[1]। ३ ॥२१॥

अवधू गागर कंधै पांणींहारी[2], गवरी कंधै नवरा[3],
घरका[4] गुसांई कौतिग चाहै, काहे न बंधौ जौरा[5] ॥ टेक ॥
लूँण कहै अलूंणां बावू, घृत कहै मैं रूषा[6]।
अनल[7] कहै मैं प्यासा मुवा[8], अंन[9] कहै मैं भूखा। १।

अधः और ऊर्ध्व (निःश्वास और प्रश्वास) दोनों को ताली लगाकर (केवल कुम्भक के द्वारा) मन स्थिर होता है और पवन थक जाता है। दशम द्वार में परमात्मा का परिचय प्राप्त करने से आवागमन छूट जाता है। मछन्दर का पुत्र-शिष्य गोरखनाथ कहता है कि हम तेली हैं। गोटा (पिसे तिलों का पिंडा) पेर कर के (तेल अर्थात् आत्म तत्त्व) हमने निकाल लिया है और पवन रूप खली को फेंक दिया है ॥ २४ ॥

घर का स्वामी (आत्मा) कौतुक (तमाशा) देखना चाहता है, इसलिए यमराज (जौरा) बांधा क्यों नहीं जायगा। अर्थात् आत्मा यमराज को बांध कर वैसे ही नचाने लगा है जैसे बन्दर को मदारी नचाता है।

---

१. (घ) में यह पद इस प्रकार है—
पवनां रे तू जाइगो कौंणै बाटा, मन राजा बैठो त्रिवेणी कै घाटा।
उनमिनि भौंरा बोलै सलिअल बाटा, पीवै अमीरस षुले हैं कपाटा ॥
अरधैं उरधैं ताली लागी, थकि गया पवनां।
सति संजम रहणां तौ आवा न गवनां ॥
तिलां मधे तेल काढ्या काष्ट कूटि आगा।
दून्यूं मिलि दीपक जोया, तत्रै सूझण लागा ॥
बदत गोरषनाथ जाति मेरी तेली, तेल गोटा पीड़ि लीया षलि दीवी मेली।
२. (घ) गगरी कंपै पांणीहारी। ३. (घ) गौरी कांधै गौरा। ४. (घ) कौ।
५. (घ) बधौ जौरा। ६. (घ) लहुषा। ७. (घ) अनील। ८. (घ) मूंवा।
९. (क) अनाज।

पावक कहै मैं जाडण मूवा[1], कपड़ा कहै मैं नागा।
अनहद मृदंग[2] बाजै, तहां पांगुल नाचन[3] लागा। २।
आदिनाथ विहवलिया[4] बावा, मछिंद्रनाथ[5] पूता।
अभेद भेद भेदीले[6] जोगी, वदंत[7] गोरष अवधूता। ३ ॥ २५ ॥

अवधू अहूँठ[8] परबत मंझार[9], बेलड़ी माड्यौ विस्तार[10]।
बेली फूल बेली फल, बेलि अछै मोत्याहल[11] ॥ टेक ॥

वह (परमात्मा अथवा जिसने आत्म साक्षात्कार कर लिया है) सब कारणों का भी कारण है। सब कारणों को कारणत्व उसी से प्राप्त हुआ है। स्वयं उसके लिए उन कारणों में कोई कारणत्व नहीं। लवण उसके सामने कहता है कि मैं अलोना हूँ। अर्थात् उससे लोनापन माँगता है और कहता कि तुम्हे लोना स्वाद दे सकूँ ऐसी सामर्थ्य मुझमें नहीं। घी कहता है, मैं रूखा हूँ जल कहती है मैं प्यासी हूँ, (शोषण की शक्ति मुझमें नहीं रह गयी।) अन्न कहता है मैं भूखा हूँ। अग्नि कहती है कि मैं जाड़े से मर रही हूँ। और कपड़ा कहता है कि मैं नंगा हूँ। जिन वस्तुओं का जो आकर्षण तथा प्रभाव है, उनका आत्मा के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन पंक्तियों का भाव कुछ कुछ वही है जो गीता के प्रसिद्ध श्लोक 'नैनं छिंदंति शस्त्राणि' आदि का।

(यह अवस्था तब प्राप्त होती जब) अनाहत रूप मृदंग बजता है और (उसके ताल में सम मिला कर) पंगु (आत्मा, जो इन्द्रियों से अपने को भिन्न समझने लगा है इसलिए अंगहीन है तथा इसलिए भी पंगु है कि साक्षात्कार के विह्वलकारी आनन्द से उसकी इन्द्रियाँ बेकाम हो गई हैं) नाचने लगा।

विह्वल जोगी (पूर्ण ब्रह्मानन्द-प्राप्त) आदिनाथ जिसका दादा गुरु है और मछन्दर का जो पुत्र-शिष्य है, वह गोरखनाथ अवधूत कहता है कि मैंने अभेद (अद्वैत) के भेद (रहस्य) को बेध (भेद) किया है ॥२५॥

हे अवधूत ! साढ़े तीन (हाथ के) पर्वत (शरीर) में (मायारूप बेल खूब फैल गई है। वह खूब फूल फल गयी है। (किंतु इतना ही नहीं) मुक्ताफल

---

१. (प) सीट मूंवा। २. (प) अनहद सबद मृदंग। ३. (प) [illegible] [illegible] ४. (प) विहवलिया। ५. (प) मछींद्र ना। ६. भेदी ॥। ७. (प) [illegible] नहीं है। ८. (प) अहूठे। ९. (प) मंझारि। १०. (प) बेलड़ी [illegible] विस्तार। ११. (प) में [illegible] मोत्याहल' नहीं है।

सिष्टि उतपनीं वेली[1] प्रकास, मूल न थी, चढ़ी आकास,
उरध गोढ कियौ विसतार[2], जांण नै[3] जोसी[4] करै विचार[5]। १।
आईसौ[6] भील पारधी हाथ नहीं,पाई[7] प्यंगुलो[8] मुष दांत न काहीं[9]
ह्यों ह्यों[10] मृघलौ धुणहीं न तहीं[11],घंटा सुर तिहां[12] नाद नाहीं[13] ।२।
भीलड़ै तिहां[14] ताणियौ[15] बांण मन हीं मृघलौ वेधियौ प्रमांण[16] ।
ह्यौ ह्यौ मृगलौ वेधियौ बांण[17], धुण ही बांण न थी सर तांण ।३।
भीलड़ी मातंगी रांणी[18], मृघलौ आंणीं ठांणीं[19] ।
चरण[20] विहूँ णौं मृघलौं आंण्यौं[21] सीस सींग मुष जाइ[22] न जांण्यौ[23] ।४

(मुक्ति रूप मुक्ता) भी इसी बेल पर (लगते) हैं। इसी बेल के प्रकाश (विस्तार से सृष्टि उत्पन्न हुई है। इस बेल का मूल नहीं है (वास्तव में वह सत्य नहीं मिथ्या है) फिर भी वह आकाश तक चढ़ गई है। ऊपर की गोठ (गोस्थान) तक (ब्रह्मरंध्र तक) उसका विस्तार हो गया है (जिससे ब्रह्मानुभूति पर आवरण पड़ गया है।) हे जानने वाले ज्योतिषियो इस बात पर विचार करो।

एक ऐसा भील (आत्मा) शिकारी है, जिसके हाथ नहीं हैं। पाँवों का पंगु है। उसके मुख में कहीं दाँत भी नहीं हैं। (मांस खाने के लिए शिकारी के मुख में दाँत चाहिए।) उसके पास धनुष (धनुही, धुणही) भी नहीं है। फिर भी उसने मृग (मन) को मार डाला। मृगों को वश में करने के लिए न उसके पास कोई सुर (सुरीला राग) है। और न हाँक के लिए कोई नाद या घंटा आदि का शब्द ही।

फिर भी भील ने बांण ताना और इच्छा करते ही (मन ही से) मृग को प्रामाणिक रूप से वेध दिया। बाण ने मृग को वेध दिया। वह मारा गया, मारा गया, जो शर उसने ताना था, वह भी बाण नहीं था अर्थात् बिना धनुष

१. (घ) उतपनी वेलि। २. (घ) कीयौ विस्तार। ३. (घ) नांणे नैं। ४(घ) जोगी। ५. (घ) करौ विचार। ६, (घ) ऐसौ। ७. (घ) पाव। ८. (घ) पिंगुल ६. (घ) 'न काहीं' के स्थान पर 'नाहीं।' १०. (घ) ह्यौ ह्यौ। ११. (घ) नाहीं···नाही। १२. (घ) सुरति तहां। १३. (घ) तहां। १४. (घ) काणींणौ। १५. (घ) वेधी प्रांण। १६. (घ) वेधीयौ। १७. (घ) रांणी। १८. (घ) आंणीयौ ठांणी। १६. (घ) चलण। २० (घ) विहुणौ मृघलौ आंण्यौ। २१. (घ) जाय। २२. (घ) जांण्यौ।

क कहै मैं जाडण मूवा[1], कपड़ा कहै मैं नागा।
हद मृदंग[2] बाजै, तहां पांगुल नाचन[3] लागा। २।
दनाथ विहबलिया[4] बाबा, मछिंद्रनाथ[5] पूता।
द भेद भेदीले[6] जोगी, बदंत[7] गोरप अवधूता। ३ ॥ २५ ॥

अवधू अहूँठ[8] परबत मंझार[9], बेलड़ी माड्यौ बिस्तार[10]।
फूल वेली फल, बेलि अछै मोत्याहल[11] ॥ टेक ॥

वह (परमात्मा अथवा जिसने आत्म साक्षात्कार कर लिया है) सब कारणों
ी कारण है। सब कारणों को कारणत्व उसी से प्राप्त हुआ है। स्वयं
े लिए उन कारणों में कोई कारणत्व नहीं। लवण उसके सामने कहता है
ं अलोना हूँ। अर्थात् उससे लोनापन माँगता है और कहता कि तुम्हें
स्वाद दे सकूँ ऐसी सामर्थ्य मुझमें नहीं। घी कहता है, मैं रूखा हूँ।
कहती है मैं प्यासी हूँ, (शोषण की शक्ति मुझमें नहीं रह गयी।) अन्न
ा है मैं भूखा हूँ। अग्नि कहती है कि मैं जाड़े से मर रही हूँ। और कपड़ा
ा है कि मैं नंगा हूँ। जिन वस्तुओं का जो आकर्षण तथा प्रभाव है, उनका
ा के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इन पंक्तियों का भाव कुछ कुछ वही
गीता के प्रसिद्ध श्लोक 'नैनं छिंदंति शस्त्राणि' आदि का।
(यह अवस्था तब प्राप्त होती जब) अनाहत रूप मृदंग बजता है और
सके ताल में सम मिला कर) पंगु (आत्मा, जो इन्द्रियों से अपने को भिन्न
झने लगा है इसलिए अंगहीन है तथा इसलिए भी पंगु है कि साक्षात्कार के
त्कारी आनन्द से उसकी इन्द्रियाँ बेकाम हो गई हैं) नाचने लगा।
भिद्ल जोगी (पूर्ण ब्रह्मानन्द-प्राप्त) आदिनाथ जिसका दादा गुरु है और
न्द्र का जो पुत्र-शिष्य है, वह गोरखनाथ अवधूत कहता है कि मैंने अभेद
र्शन) के भेद (रहस्य) को बेध (भेद) किया है ॥२५॥
हे अवधूत ! साढ़े तीन (हाथ के) पर्वत (शरीर) में (मायारूप बेल
फैल गई है। वह खूब फूल फल गयी है। (किंतु इतना ही नहीं) मुक्ताफल

---

१. (घ) सीद मूवा। २. (घ) अनहद सबद मृदंग। ३. (घ) [illegible]
[illegible] ४. (घ) बिह्वलिया। ५. (घ) मछींद्र ना। ६. भेदी [illegible]। ७, (घ)
[illegible] नहीं है। ८. (घ) अहुंठ। ९. (घ) मंझारि। १०. (घ) बेलड़ी
[illegible] बिस्तार। ११. (घ) में [illegible] मोत्याहल' नहीं है।

सिष्टि उतपनीं वेली[1] प्रकास, मूल न थी, चढ़ी आकास,
उरध गोढ कियौ विसतार[2], जांण नै[3] जोसी[4] करै विचार[5]। १।
आईसौ[6] भील पारधी हाथ नहीं,पाई[7] प्यंगुलो[8] मुष दांत न काहीं[9]
हयों हयों[10]मृघलौ धुणहीं न तहीं[11],घंटा सुर तिहां[12]नाद नाहीं[13] ।२।
भीलड़ै तिहां[14] ताणियौ[15] बांण मन हीं मृघलौ वेधियौ प्रमांण[16] ।
हयौ हयौ मृगलौ वेधियौ बांण[17], धुण ही बांण न थी सर तांण ।३।
भीलड़ी मातंगी रांणीं[18], मृघलौ आंणीं ठांणीं[19] ।
चरण[20]विहूँणौं मृघलौं आंणयौं[21]सीस सींग मुष जाइ[22]न जांणयौ[23]।४

(मुक्ति रूप मुक्ता) भी इसी बेल पर (लगते) हैं। इसी बेल के प्रकाश (विस्तार से सृष्टि उत्पन्न हुई है। इस बेल का मूल नहीं है (वास्तव में वह सत्य नहीं मिथ्या है) फिर भी वह आकाश तक चढ़ गई है। ऊपर की गोठ (गोस्थान) तक (ब्रह्मरंध्र तक) उसका विस्तार हो गया है (जिससे ब्रह्मानुभूति पर आवरण पड़ गया है।) हे जानने वाले ज्योतिषियो इस बात पर विचार करो।

एक ऐसा भील (आत्मा) शिकारी है, जिसके हाथ नहीं हैं। पाँवों का पंगु है। उसके मुख में कहीं दाँत भी नहीं हैं। (मांस खाने के लिए शिकारी के मुख में दाँत चाहिए।) उसके पास धनुप (धनुही, धुणही) भी नहीं है। फिर भी उसने मृग (मन) को मार डाला। मृगों को वश में करने के लिए न उसके पास कोई सुर (सुरीला राग) है। और न हाँक के लिए कोई नाद या घंटा आदि का शब्द ही।

फिर भी भील ने बाण ताना और इच्छा करते ही (मन ही से) मृग को प्रामाणिक रूप से वेध दिया। बाण ने मृग को वेध दिया। वह मारा गया, मारा गया, जो शर उसने ताना था, वह भी बाण नहीं था अर्थात् बिना धनुप

१. (घ) उतपनी वेलि। २. (घ) कीयौ विस्तार। ३. (घ) जांणे नैं। ४(घ) जोगी। ५. (घ) करौ बिचार। ६, (घ) ऐसौ। ७. (घ) पाव। ८. (घ) पिंगुल ६. (घ) 'न काहीं' के स्थान पर 'नाहीं।' १०. (घ) हयौ हयौ। ११. (घ) नाहीं…नाही। १२. (घ) सुरति तहां। १२. (घ) तहां। १४. (घ) काणीणीं-यौ। १५. (घ) वेधी प्रांण। १६. (घ) वेधीयौ। १७. (घ) रांणी। १८. (घ) आंणीयौ ठांणी। १६. (घ) चलण। २० (घ) विहुणौ मृघलौ आंण्यौ। २१. (घ) जाय। २२. (घ) जांण्यौ।

भणत गोरषनाथ मछिंद्र नां[1] पूता, मारथो[2] मृघ भया अवधूता।
याहि हियाली[3] जे कोई[4] बूझै, ता जोगी कौं त्रभुवन[5] सूझै।५॥२६॥

अवधू ऐसा नम हमारा[6], तिहाँ जोवौ[7] ऊजू द्वारं।
अरघ उरघ बजार मड्या[8] है, गोरष कहै विचारं॥ टेक॥
हरि प्रांण पातिसाह[10], साह विचार काजी।
पंच तत ते उजहदारं[11] मन पवन दोऊ[12] हस्ती घोड़ा गिनांन ते अपै भंडारं।१।
काया हमारैं सहर बोलिये[13], मन बोलिये[13] हुज दारं।
चेतनि[14] पहरै कोटवाल बोलिये[13], तौ चोर न झंकै द्वारं।२।
तीनिसै साठि चोरा गढ़[15] रचीले, सोलह पणिलै पाई।
नव दरवाजा प्रगट दीसैं, दसवां लष्या न जाई।३।

के धनुष से बिना प्राण के बाण द्वारा व्याधे ने मृग (मन) को मार दिया।

मदमाती भीलनी रानी उस चरण हीन मृग को अपने स्थान पर ले आयी। उसके सिर, सींग और पूंछ कुछ नहीं जाने जाते थे। मछन्दर का शिष्य गोरख कहता है कि मारा हुआ मृग (मन) अवधूत (विरक्त योगी) हो गया। इस को हृदय में जो कोई समझ जायगा, उसको त्रिभुवन का ज्ञान हो जायगा॥२६

हे अवधूत! हमारे नगर का यह जो द्वार है उसे देखो। गोरख इस बात को विचार पूर्वक कहता है, हमारा ऐसा नगर है कि उसमें श्वास-प्रश्वास (अरघ उरघ) का बाजार सजा हुआ है। प्राणों के स्वामी हरि (ब्रह्म) यहाँ के राजा (शाह) हैं, विचार काजी है, पंच तत्व वजीर हैं। मन पवन हाथी घोड़े हैं। ज्ञान अक्षय भंडार (कोष) है।

यह नगर काया का नगर है, मन है, चैतन्य पहरे पर बैठा हुआ कोतवाल है। (यदि पहरेदार जागते रहें) तो चोर दरवाजे झाँक भी नहीं सकता। काया रूप नगर गढ़ का तीन सौ साठ हड्डी रूप पत्थरों से निर्मित है। साथ दीपिका का विश्वास है कि शरीर में ३६० हड्डियाँ हैं—'गूढ़ गर्भोपनिषद् ग्रन्थ'। सोलह आधार (पाँव का अंगूठा, मूल, गुदा, मेढ़्र, उड्डियान, नाभि, हृदय, कंठ,

---

१. (प) ना। २. (प) मारया। ३. (प) हियाली। ४. (प) का। ५. (प) त्रिभवन। ६. (प) हमारं। ७. (प) तहां जोवौ जोवौ। ८. (प) मंड्या। ९. (प) कहै विचारं। १०. (प) पातिसाह। ११. (प) उजहदारं। १२. (प) ते। १३. (प) बोलिए। १४. (प) चेतन। १५. (प) गढ़।

अठारह[1] भार कोट कठंजरा लाइलै[2], बहत्तर कोठडी[3] निपाई ।
नव सुत्र ऊपरै[4] जंत्र फिरै, तब काया गढ़ लिया न जाई ।४।
अनहद घड़ी घड़ियाल[5] बजाइ लै, परम जोति दुइ[6] दीपक लाई[7] ।५
काम क्रोध दोइ गरदनि मारिलै, ऐसी अदली पातिसाही, बाबै आदम[8] चलाई ।
तहां सत्य[9] बीबी संतोष साहिजादा, षिमां भगति[10] ह्वै[11] हाई ।
आदिनाथ नाती मछिंद्र नाथ[12]पूता, काया नगरी गोरष[13]बसाई ।६।२७

घंटिका, जिह्वामूल, तालु, ऊर्ध्व दंत मूल, नासिकाग्र, नासिकामूल, भ्रूमध्य, ललाट और नेत्र) सोलह खाइयाँ हैं। जैसे खाइयों को पार करना गढ़ में प्रवेश करने के लिए आवश्यक है वैसे ही योग सिद्धि के लिए आधारों का ध्यान आवश्यक है। इस गढ़ के नौ दरवाजे (नव रंध्र) तो स्पष्ट दिखाई देते हैं, दशमद्वार (ब्रह्मरंध्र) नहीं दिखाई देता।

कोट पर नाना प्रकार के वृक्षों की लकड़ी का कठंजरा (काष्ठ पंजर) लगाया और बहत्तर कोठड़ियाँ बनाईं (निपाई=उत्पन्न कीं) जिस प्रकार पुराने काल में लकड़ी कमरों को छाये रहती थी उसी प्रकार इस काया को नाड़ी-जाल छाये रहता है। 'अठारह' और 'अठारह भार' संत और योग साहित्य में वनस्पतियों के लिए कई बार आया है। (देखिए आगेवाला पद और कबीर—अठारह भार बनासपती कहिये गिर परवत से भारे।' कोटा संग्रह, पद ४३९) नाड़ियां ७२००० मानी जाती हैं किन्तु ७२ प्रधान हैं। नव द्वारों पर जंजीरें (सूत्र) चढ़ी हैं और यंत्र लगे हैं इस लिए कायागढ को कोई छीन नहीं सकता अर्थात् नवरंध्र रुद्ध कर दिये गये हैं उनके द्वारा विषय भीतर प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

अनाहत नाद रूपी घड़ी को घड़ियाल बजाता है अर्थात् घड़ी घड़ी पर लोगों को सावधान करता है। परम ज्योति के दो दीपक (सगुण और निर्गुण ज्ञान) बल गये। काम और क्रोध की गर्दन मारी गयी। बाबा आदम ने ऐसी बादशाही हुकूमत चलायी।

---

१. (घ) अठाहरै। २. (घ) लायलै। ३. (घ) बहतरि केटड़ी। ४. (घ) ऊपरि। ५. (घ) घड़ावलि। ६. (घ) दोय। ७. (घ) जलाई। ८. (घ)आदमि ९. (घ) सति। १०. (घ) भक्ति। ११. (घ) होय। १२. (घ) ना। १३. (घ) गोरषनाथ।

ईकीस[1] ब्रह्मंड भाठी चिगावै[2], पीवत सदा मतिवालं,
मनसा कलालिनि[3] भरि भरि देवै आछा आछा[4] मद नां प्यालं[5] ॥टेक॥
अमृत[6] दाषी भाठी भरिया[7], ता मधैं गुड़[8] झकोल्या।
मन महुवा[9] तन धाहुवा[10], बनासपती अठारै मोल्यां[11] ।१।
भ्रमर[12] गुफा मैं मन थरि ध्यानैं, बैस्या[13] आसण वाली।
चेतनि[14] रावल यह भरि छाक्या[15], जुग जुग[16] लागो ताली ।२।
तृकुटी संगम[17] कूपा भरिया[18], मद नीपज्या[19] अपारं।
कुसमल होता ते झड़ि पड़िया[20], रहि गया[21] तहाँ तत सारं ।३।

सत्य बादशाह की बीबी है, संतोष शाहज़ादा है और क्षमा तथा भक्ति दो दाई हैं। आदिनाथ के नाती-शिष्य और मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र-शिष्य गोरखनाथ ने इस प्रकार यह काया-रूप-नगरी बसाई है ॥ २७ ॥

इक्कीस ब्रह्मांड में भट्टी चुआई जाती है (अमृत-स्राव होता है) जिसे पीकर (योगी) सदा मतवाला रहता है। इच्छा-रूप कलालिनी अच्छा अच्छा प्याला मदिरा का भर कर देती है। अमृतानुभव की दाख भट्टी (पर के पात्र में) भरी गयी। उसमें गुड़ भी डाला गया। मन ने महुए का स्थान लिया, तन ने धाहुड़ का। और भी अठारह प्रकार की वनस्पतियाँ उसमें डाली गयीं।

ब्रह्मरंध्र में आसन लगाकर (बाला योगी) अचल ध्यानस्थ बैठ गया। इस प्रकार चेतन (आत्मा) रूप रावल ने भर भर कर मद छका और युग युग तक ताली रहने वाला ध्यान (समाधि; ताड़ी=नशा) लग गयी।

त्रिकुटी संगम (जहाँ इड़ा पिंगला मिलती हैं)—रूप कूपी मद से भर गयी। अपार मद तय्यार हुआ।

---

१. (घ) यकवीसवै। २. (घ) चिगाई। ३. (घ) कलालणि; (क) कलानि (!) ४. (घ) आछे आछे। ५. (घ) मदन पयालं। ६. (घ) यंम्रत। ७. (घ) भरीया। ८. (घ) मध्ये गुल। ९. (क) जन्म हुवा; (घ) मन महुड़ा। १०. (घ) धाहड़्या। ११. (घ) मेल्या। १२. (घ) भवर। १३. (घ) बैठा। १४. (घ) चेतन। १५. (क) छिक्या। १६. (घ) जुगि जुगि। १७. (घ) संजम। १८. (घ) कूपी भरीया। १९. (घ) नींपज्या। २०. (घ) पड़ीया। २१. (घ) गईया।

एहवां[1] मद श्री गोरष[2]केवस्या, बदंत मछींद्र ना पूता ।
जिनि[3]कैवस्या तिनि[4]भरि भरि पीया, अमर भया अवधूता ।४।।२८।।

सति सति[5] भाषंत श्रीगोरष जोगी, अमे[6] तौ रहिबा रंगै ।
अलेष पुरिस जिनि गुर मुषि चीन्ह्यां, रहिबा तिसकैं संगैं ॥ टेक ॥
सतजुग मधे जुग एक रचीला, बिसहर एक[7] निपाया ।
ग्यांन बिहूणां गण गंध्रप अवधू, सब हीं डसि डसि षाया ।१।
त्रेता जुग मधे जुग दोइ रचीला, राम रमाइंण[8] कीन्हां ।
नर बंदर सब लड़ि लड़ि मूये[9], तिन भी ग्यांन न चीन्हां ।२।
द्वापर जुग मधे जुग तीनि रचीलै, बहु डम्बर बहु भार ।
कैरौं पांडौं लड़ि लड़ि मुये[10], नारद कीया संघारं ।३।
कलिजुग मधे जुग चारि रचीला[11], चूकिला चार विचारं ।
घरि घरि दंदी[12] घरि घरि वादी, घरि घरि कथण हारं ।४।
चौहु जुग मधे जुग चारि थापिला, ग्यांन निरालंब रहिया ।
मछींद्र प्रसादैं जती गोरष बोल्या, कोई बिरला पार उतरिया[13] ।५।।२९।।

जो कुछ मल था वह तो अलग हो गया केवल सार मात्र मदिरा के रूप में उतरा । श्रीगोरखनाथ ने ऐसी मदिरा उतारी ।

मछंदरनाथ के पुत्र-शिष्य कहते हैं कि जिसने यह मदिरा उतारी उसने भर भर कर पी और (जिसने पी) वह अवधूत अमर हो गया ॥ २० ॥

श्रीगोरख जोगी सत्य सत्य कहते हैं कि हम तो (अपने) रङ्ग में मस्त रहते हैं । जिसने गुरुमुख शिक्षा के द्वारा अलक्ष्य पुरुष (ब्रह्म) को पहचाना है, उसी के साथ रहना चाहिए ।

---

१. (क) एहां या एह्वा; (घ) एइवा । २. (घ) जती गोरषनाथ । ३. (घ) जिणि · तिणि । ५. (क) सत्य सत्य । ६. (घ) हम । ७. (घ) विसहरण ८. (क) रसाइंण । ९. (घ) मूवा । १०. (घ) मूवा । ११. रचीलै...चूकिले । १२. (घ) नादी; । १३. (क) उतरिया पारं ।

ऐसा जाप जपौ[१] मन लाई[१], सोहं सोहं अजपा गाई[१] ॥ टेक ॥
आसण दिढ करि धरौ धियानं[२], अह निस सुमिरौ[३] ब्रह्म गियानं[२] ।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहार, काम क्रोध अहंकार निवारं[४] ।१।
नासा अग्र निजु ज्यौ वाई[५], इड़ा प्यंगुला[६] मधि समाइ[७] ।२।
छसै संहस इकीसौं[८] जाप, अनहद उपजै आपहि[९] आप[१०] ।
वं :: नालि मैं ऊगै[१३] सूर, रोम रोम धुनि बाजै तूर ।३।
उलटै कमल[११] सहंस्रदल[१३] बास, भ्रमर गुफा महि[१३] जोति प्रकास ।
सुणि मथुरा सिव गोरष कहै, परम तत ते साधू लहै[१५] ।।४।।३०।।

(कर्ता ने) चारों युगों के लिए अलग अलग विशेषताएँ बनाईं । एक, दोइ, तीन, पहिला, दूसरा, तीसरा के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

मन लगा कर ऐसा जाप जपो कि 'सोऽहं' 'सोऽहं' का वाणी के उपयोग के बिना अजपा गान (अजपा-जाप) हो जाय ।

दृढ़ आसन पर बैठ कर ध्यान करो और रात दिन ब्रह्म ज्ञान का स्मरण करो । निद्रा में जागरण करो । (जगत की ओर सोकर अध्यात्म में जागो ।) भोजन थोड़ा करो । काम, क्रोध, और अहंकार का निवारण करो ।

इड़ा और पिंगला में समाई हुई नासाग्र तक जिसका विस्तार है (प्राण वायु का निवास नासा रंध्रों से बाहर बारह अंगुल तक माना जाता है इसी से वायु को द्वादशांगुल भी कहते हैं) ऐसी वायु के द्वारा जब २१६०० जाप होने लगते हैं (अर्थात् श्वास क्रिया स्वयं जप-क्रिया ही हो जाती है, तब अनाहत नाद

---

१. (घ) लाय···गाय । २. (घ) धियान···गियांन । ३. (घ) षोजौ । ४. (घ) में 'जाग्रत · निवारं' नहीं । ५. (घ) नाभि कंवल मन सुरति लगाइ । ६. (घ) यला पिंगुला । ७. (घ) समाय । ८. (घ) यकीसूं । ९. (घ) आपै । १०. (घ) में यह पंक्ति अधिक है—षट चक्र मैं हंसा सार अहनिस हंसा जै जै कार । (घ) में आगे की दो पंक्तियों का स्थान परस्पर बदला हुआ ! ११. (घ) ऊगा । १२. (घ) कंवल । १३. (घ) सहंसदस । १४. (घ) भवर गुफा मैं । १५. (घ) में अन्तिम चरण यों—मछिंद्र प्रताप जती गोरष रहै । परम तत्त कोई विरला लहै ॥

जागा[1] जोगी कनक रावलिया, गुरुदेव मेंहलौ वूठौ।
षोजतां षोजतां सतगुर पाया, सहजै नैं भावै तूठौ[2] ॥ टेक ॥
उतर देस मैं मेंह धड़क्या, दक्षिण आचल छाया।
पूरब देस थीं पाणिग बिछूटी, पछिम खेत्र मैं पाया ।१।
मन पवना धोरी जोतावो[3], सतनां सांतीड़ा समधावो[4]।
दया धर्म[5] नां बीज अणावो[4], इणीं परि षेत्रे जावो[4] ।२।
पातां[6] न षूटै देतां न निठै, जम बारै नहीं जाइ[7]।
मछींद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या, नित नवेरड़ौ थाइ ।३॥२१॥

अपने आप उत्पन्न हो जाता है। तब सुषुम्णा (बंकनालि) में सूर्योदय हो जाता है और रोम रोम में तुरी बजने लगती है अर्थात् अनाहत का अनुभव होने लगता है। (सहस्रार ही से चेतन तत्व नीचे की ओर गया है। योगाभ्यास से वह फिर) उलट कर सहस्रार ही में वास पा जाता है, और अमर गुफा (ब्रह्मरंध्र) में ज्योति प्रकाशमान हो जाती है। इस प्रकार हे मथुरा (?) सुनो वे साधु (ऊपर कहे अनुसार साधना करने वाले) परमतत्व को प्राप्त करते हैं ॥२०॥

कनक रावल जोगी जागा। (रावल जोगियों का एक भेद है। कनक स्वर्ण के अर्थ में श्रेष्ठता का अथवा रसायनी (कीमियागर) का भी द्योतक हो सकता है और खाली जोगियों की भाँग धतूरा पीने की आदत का परिचायक भी।) गुरुदेव मेह के रूप में बरस पड़े हैं, (उनकी दया प्रकट हुई है।) वे सहज भाव से तुष्ठ हो गये हैं। उत्तर देश (त्रिकुटी या ब्रह्मरंध्र) में मेघ गरजे, दक्षिण दिशा (स्वाधिष्ठान) में अच्छी तरह छा गये। पूर्व देश (इला पिंगला) से पानी की धारा छूटी और पश्चिम क्षेत्र अर्थात् सुषुम्णा में पहुँच गयी। मन पवन रूप बैल (सुफेद, धौले) जोतवाओ। सत का सांतीड़ा (संभावतः सींता या सेंता (गढ़वाली अर्थात् बिगड़ैल बैलों को नाथने का रस्सा) ठीक करो (जिससे बैल वश में रहें।)

---

१. (घ) जागो नै। २. (क) रूठो (?) संभवतः प्रति के लिपिकार ने प्रमाद से 'त' को 'न' (र) पढ़ लिया है। ३. (घ) जोतावै; (क) जोत्रावो। ४. (घ) समदावौ, अणावौ, जावौ। ५. (क) ध्रंम। ६. (क) पांतां। ७. (घ) द्वारै नहि जावै।

जीव सीव ना[1]संगे[2]बासा, ना[3]बधि षाइबा[4] रे रुध्र मासा ॥ टेक॥
घाव न घातिबा[6] हंस गोतं, बंदत गोरषनाथ निहारि[7] पोतं ।१।
मारिबा रे नरा मन द्रोही[8], जाकै बप बरण नहीं मास लोही[9] ।२।
सब जग ग्रासिया[10] देव दाण ,सो[11] मन मारीबा रे गहि गुरु ग्यांन बांण ।३।
बसू क्या हतिये रे प्यंड[12] धारी,
मारिये[13] पंच भू मृघला जे चरै बुधि बाड़ी[14]
जोग का मूल है दया दांनं ।
भणत[15] गोरषनाथ ये[16] ब्रह्म ग्यांनं ।४।।३२।।

दया धर्म का बीज मँगाओ तब खेत में जाओ। फिर तो वह खेती पैदा होगी कि खाने से खतम नहीं होगी, देने से नष्ट नहीं होगी और यम द्वार में न जाना होगा।

मछंदर के प्रसाद से गोरख यती का कहना है कि वह खेती नित्य नवीन ही बनी रहेगी।

जीव और सीव (शिव=ब्रह्म) एक ही स्थान के निवासी हैं। इसलिए हत्या करके रुधिर और मांस नहीं खाना चाहिए। अपने सगोत्री (एक ही कुल के) आत्मा (हंस) पर प्रहार न करो। (उस पर प्रहार करते हुए) अपने बच्चे को देखो। वह तुम्हारे बच्चे ही के समान है। हे मनुष्यो ! (जीवों के बदले द्रोही मन को मारना चाहिए, जिसके न शरीर है, न वर्ण है, न मांस है, न रक्त है। इस मन ने देव दानव आदि सारे संसार को ग्रस लिया है। ऐसे इस मन को गुरु के दिये ज्ञान का बाण मारना चाहिये। शरीर धारी पशुओं का बध क्या करते हो पंचभूतात्मक मन-मृग को मारिए जो बुद्धि रूपी वाटिका (क्यारी) को चर लेता है। योग का मूल दया दान है गोरखनाथ यह ब्रह्मज्ञान कहते हैं ॥३२॥

---

१. (घ) ना। २. (घ) संगे। ३. (घ) नां। ४. (घ) षइबा। ५. (क) रूधर्मासा। ६. (क) घलिवा। ७. (क) नहारि। ८. (घ) दोही। ९. (घ) बरणन नांहीं मांस···। १०. (घ) ग्रास्या। ११. (क) सौ। १२. (घ) हतीए रे पिंड। १३. (घ) मारीए। १४. (घ) बारी। १५. बदंत। १६. (घ) ए।

[राग असावरी]

ऐसा रे उपदेस दाषै श्री गोरष राया,
जिनि जग चतुर बरन रह[1] लाया ॥ टेक ॥
पढ़िलै ससंवेद[2] । करिलै बिधि नषेद ।
जांणिलै भेदांनभेद[3] । पूरिलै आसा उमेद । १ ।
बिषमी[4] संधि मंझारी[5] । संझया पंचौं बषत्त सारि ।
रहिवा दसवैं दुवारि[6] । सेइवा[7] पद निराकार । २ ।
जपिलै अजपाजाप । बिचारिलै आपै आप[8] ।
छुटिला सबै[9] बियाप । लिपै नहीं[10] तहाँ पुनि[11] पाप । ३ ।
अहो निसि समा ध्यांन[12] । निरंतर रमेवा[13] राम ।
कथै गोरषनाथ[14]ग्यांन । पाइया[15] परम निधांन ।४।।३३।।

श्री गोरखराय जिन्होंने चारों वर्णों को अपने मार्ग पर लगाया, इस उपदेश की दीक्षा देते हैं कि (वेद के स्थान पर) स्वसंवेद्य को पढ़ो (अर्थात् अपरोक्षानुभूति को प्राप्त करो ।) (यही) विधि निषेध का अनुगमन करना है, रहस्यों का रहस्य जानना है, सब आशाओं को पूर्ण करना है ।

विषमी संधि (बंक नालि, सुषुम्णा जहाँ इला-पिंगला दोनों प्रवाहों की संधि है) में पाँचों समय संध्या (नमाज) करो । दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) में रहना चाहिए और निराकार पद का सेवन करना चाहिए । अजपा जाप को जपो । आत्म-तत्व का बिचार करो । इससे सभी व्यापने वाली व्याधियाँ या उपाधियाँ छूट जाती हैं । पुण्य और पाप कोई वहाँ लिप्त नहीं होता है । रात-दिन एक

---

१. (घ) जुगि जुगि च्यत्र बरण राह । २. (घ) सुसमवेद । ३. (घ) पाईला मेदानिभेद । ४. (क) बिषिमी; (घ) में 'बिषमीं…निराकारा' तथा 'जपिलै… पुंनि पाप' का स्थान परस्पर बदला हुआ है । ५. (क) मझारि । ६. (घ) दसवै द्वारि । ७. (घ) सेयवा । ८. (घ) आपो आप । ९. (घ) छूटीला सकल । १०. (घ) नाहीं । ११. (घ) पुनि । १२. (घ) समो घ्यान । १३. (घ) रमईया १४. (घ) 'नाथ' नहीं है । १५. (घ) पाईला ।

गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला,
गुर बिन[1] ग्यांन न पायला रे भाईला[2] ॥ टेक ॥
दूधैं धोया कोइला[3] उजला[4] न होइला,
कागा कंठैं पहुप[5] माल हंसला न भैला[6] ।१।
अभाजै सी रोटली[7] कागा ले जाइला[8],
पूछौ म्हारा[9] गुरू नै[10] कहां वैसि षाइला[11] ।२।
उतर[12] दिस आविला[13], पछिम दिस जाइला[14],
पूछौ म्हारा सत गुरु[14]नै[10], तिहां वैसि षाइला[11] ।३।

सम ध्यान में लगा रहना चाहिए अथवा शंका रहित समाधान अवस्था में रहना चाहिए और निरंतर राम में रमना चाहिए। गोरखनाथ वह ज्ञान कहते हैं जिससे (स्वयं उन्हें) परम-निधान ब्रह्म-पद) प्राप्त हुआ है।

हे अहिल गुरु धारण करो, निगुरे न रहो। हे भाई बिना गुरु के ज्ञान नहीं प्राप्त होता। दूध से धोने पर भी कोयला उज्ज्वल नहीं होता। कौवे के गले में फूलों की माला पहनाने से वह हंस नहीं हो जाता। गहला=अहिल, जो व्याधि, भूतावाधा या मानसिक विकार से ग्रस्त हो, यहाँ पर मानसिक विकार से ग्रस्त इस लिए मूर्ख। तुलना, गढ़वाली भाषा का 'गयेल=उपेक्षा, असावधानी और उदासीनता की एक साथ भावना।

कौवा (जीव) बे तोड़ी सी (संपूर्ण) रोटी (आध्यात्मिक परिपूर्णता) ले जाता है। स्वांतस्थ गुरु से पूछो कि वह उसे कहाँ बैठ कर खाता है। (अभाजै सी=अविभक्त सी)।

वह उत्तर दिसा (ब्रह्मपद, ब्रह्मरंध्र) से आया है (ब्रह्म उसका मूल वा अधिष्ठान है) और पश्चिम दिशा (सुषुम्णा मार्ग से वह जायगा (अर्थात्

---

१. (घ) बिण। २. (क) प्रामियेरे। 'भाईला' नहीं है। ३. (घ) कोयला। ४. (घ) ऊजला। ५. (घ) कउओ कै गलि पहौप। ६. (घ) थायला। ७. (घ) आभा जैसी रोटली; (क) अभाजेसी ह्वीटली (?)। ८. (घ) कऊवा ले जाइला ९. (क) माझा या माह्या। १०. (घ) कूं। ११. (घ) बैठि षायला। १२. (घ) पूरव। १३. (घ) आंविला। १४. (घ) डालिला।

चीटी केरा[1] नेत्र मैं गज्येंद्र[2] समाइला,
गावडी के[3] मुष मैं बाघला बिवाइला[4] ।४।
बारें बरसैं बंझ[5] ब्याई, हाथ पाव टूटा,
बदंत[6] गोरषनाथ मछिंद्र ना[7] पूता ।५।।२४।।
कहा बुझैं अवधू राइ[11] गगन[12] न धरनीं[13],
चंद न सूर दिवस[14] नहीं रैंनीं[15] ।। टेक ।।
ॐकार निराकार सूछिम न अस्थूलं[16], पेड़ न पत्र फलै नहीं फूलं[17]।।१।।

पुनः ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करेगा। और वहाँ बैठकर (जहाँ यह मार्ग ले जाता है अर्थात् ब्रह्मरंध्र में वह उस रोटी (ब्रह्मानुभूति) का भोग करता है।

इस प्रकार चींटी की आँखों में गजेन्द्र समा जाता है। (अर्थात् सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप में स्थूल भौतिक रूप समा गया। गाय के मुँह में बाघिन बिआ जाती है अर्थात् इसी भौतिक जीवन से उसको नाश करने वाला आध्यात्मिक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

बारह वर्ष में बांझ ब्यायी है पर इस प्रसूति में उसके हाथ पांव टूट गये हैं, वह निकम्मी हो गई है :—यह मछन्दर के शिष्य गोरखनाथ का कथन है। मायिक जीवन निष्फल होता है, इस लिए उसे बाँझ कहा है। परन्तु बड़ी साधना के अनन्तर इसी मायिक जीवन में ज्ञान की भी उत्पत्ति हो जाती है, यही बाँझ का बिआना है। जब ज्ञानोदय हो जाता है तब माया शक्ति-हीन हो जाती है, यही उसके हाथ पांव टूटना है ।। २६ ।।

हे अवधूत-राज पूछते क्या हो ? (परमार्थ रूप से) न आकाश है न पृथ्वी, न चन्द्रमा न सूर्य, न दिन न रात। ॐकार (परब्रह्म) तो निराकार है। (निर्विशेष है, उस पर कोई विशेषण नहीं लग सकता।) वह न सूक्ष्म है न स्थूल, उसके न पेड़ (तना) है न पत्ते। न वह फलता है न फूलता। उसकी

---

१. (घ) में 'सत' नहीं है। २. (घ) कूं। ३. (घ) तहां। ४. (क) के। ५. (घ) गजिंद्र। ६. (घ) का। ७. (घ) ब्याईला। ८. (घ) बारां बरसां बांझ। ९. (घ) कथंत। १०. (घ) का। ११. (घ) कैसे बोलूँ अवधू राय। १२. (घ) गिगन। १३. (घ) धरणी। १४. (घ) वाकै द्यौस। १५. (घ) न रैंणी। १६. (घ) नहीं थूला; (घ) में निराकार के पहले ॐकार नहीं। १७. (घ) 'साषा पत्र कली नहिं फूल।'

डाल[1] न मूल न वृष न वेला, साषी[2] न सब्द[3] गुरू नहीं चेला ।२।
ग्यांनें न घ्यानें जोगे न जुक्ता[4], पापे न पुंने मोषे न[5] मुक्ता[6] ।३।
उपजै न बिनसै आवै न जाई, जुरा न मरण[7] वाकै बाप न माई ।४।
भणत गोरषनाथ मछींद्र नां[8] दासा,
भाव[9] भगति और आस[10] न पासा ।५।।३५।।

आवो[11] माई धरि धरि जावो[12], गोरष बाला भरि भरि खावो[13] ।।टेक।।
झरै न पारा वाजै नाद, ससि हर सूर न बाद बिबाद ।१।

न शाखाएँ हैं न मूल। न वह वृक्ष है न बेल, उसकी न साखी है न शब्द। वह न गुरु है न चेला। वह न ज्ञान में है न ध्यान में है, न योग में है न युक्ति में है। वह न पाप में है न पुण्य में है, न मोक्ष में है और न मुक्त ही है। (ज्ञान इत्यादि के द्वारा वह प्राप्त होता है पर परमार्थ रूप में ये सब साधन माया ही के अंतर्गत हैं, इस लिए वह इनसे बाहर है।) वह न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, वह न आता है न जाता है (आवागमन से परे है।) उसके न जरा (बुढ़ापा) है न मरण और न बाप है न माँ। मछन्दर का शिष्य गोरख कहता है कि वह न भाव-भक्ति में है और न आशा के जाल में ॥३५॥

हे माताओ आओ (मेरे सामने भिक्षा) घर घर जाओ। (इस आदेश के साथ कि) हे बालक गोरख पेट भर करके भोजन करो। (संसार की सब स्त्रियां गोरख के लिए माता के समान हैं, जो भरण-पोषण करती हैं, उससे दूसरी दृष्टि से वह किसी को नहीं देखता कि उसका बिन्दु-क्षरण हो। इसलिए) उसका पारा (शुक्र) स्थिर है, झड़ता नहीं है। (उसके अन्तर में अनाहत) नाद बजता है। शशधर (चन्द्रमा) और सूर्य में मेल है (वाद-विवाद या

१. (घ) गरभ न मूल विरष नहीं। २. (घ) साषा। ३. (घ) में 'न शब्द' के स्थान पर 'सबद'; (घ) में आगे की पंक्ति में एकरांत के स्थान पर ऊकारांत रूप हैं। ४. (घ) जुगता ५. (घ) पाप न पुनि मोछि नहीं। ६. (क) (घ) मुकता। ७. (घ) न जनम; (क) में 'न' नहीं केवल 'मरण' है। (घ) में चौथी पंक्ति का स्थान टेक के बाद पहला है। ८. (घ) का। ९. (घ) भाव की। १०. (घ) आसा। ११. (घ) आवौ हो। १२. (घ) जावै। १३. (घ) षावै।

पवन गोटिका रहणि[1] अकास, महियल[2] अंतरि गगन कविलास ।२।
पयाल नीं[3] डीबी सुनि[4] चढ़ाई, कथंत[5] गोरषनाथ मछींद्र[6] बताई ।३६ .

कैसैं बोलौं पंडिता देव कौंनै ठांई[7],
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें[8] नाहीं[9] ॥टेक॥
पषांणची देवली पषांण चा देव[10],
पषांण पूजिला कैसैं फीटीला सनेह[11] ।१।
सरजीव तेड़िला[12] निरजीव पूजिला[12],
पाप ची[13] करणीं कैसैं दूतर तिरीला[14] ।२।
तीरथि तीरथि सनांन[15] करीला,
बाहर[16] धोये कैंसैं भीतरि[17] भेदीला ।३।

खटपट नहीं है। पवन रूप गुटिका के बल से आकाश (ब्रह्मरंध्र) में उसकी रहनि (निवास) है। कैलास के समान ऊँचा ब्रह्मरंध्र (आकाश) उसके लिए पृथ्वीतल (शरीर) में है। इस प्रकार पाताल की (स्वाधिष्ठान में निवास करने वाली) कुण्डलिनी शक्ति को उसने शून्य (ब्रह्मरंध्र) में चढ़ा दिया है— गोरख कहते हैं कि मछन्दर ने मुझे (यह सब बात) बताई है ॥३७॥

हे पंडितो कैसे बताऊँ कि देवता किस स्थान में रहता है ? निज तत्त्व को देख लेने पर हम और तुम नहीं रह जाते (सब एक हो जाते हैं, भेद मिट जाता है।) पत्थर के मन्दिर में पत्थर के देवता की प्रतिष्ठा (करते हो।) (तुम्हारे लिए) स्नेह (दया) का प्रस्फोट कैसे हो सकता है ? (पत्थर का देवता कहीं पसीज सकता है ?)

१. (घ) रहणी। २. (घ) महियरं। ३. (घ) पाताल की। ४. (घ) आकास। ५. (घ) वदंत। ६. (घ) मछिंद्र। ७. (घ) हूँ तोहिं पूछूं पांड्या देव, कौंणे ठांय रे। ८. (क) हमें तुम्हें। ९. (घ) नाहिं रे। १०. (घ) पाषांण का देहुरा पाषांण का देव। ११. (घ) पाषांण कूंपूजि फीटीला सनेह रे। १२. (घ) तोड़ीला, पूजीला। १३. (घ) की। १४, (घ) 'कैसें दूतर तिरीला के स्थान पर 'पारि कैसैं उतरीला'। १५. (घ) तीरथि तीरथि जाईला असनांन; (क) तीरथ तीरथ सनांन। १६. (घ) बाहरि कै। १७. (क) कैसें भीतर; (घ) भीतरि कैसैं।

आदिनाथ नाती मछींद्रनाथ पूता,
निज तत निहारै गोरष अवधूता ।४॥३७॥

पंडित जण जण बाद न होई, अणबोल्या[1] अवधू सोई ॥टेक॥
पत्र[2] ब्रह्मा कली बिसना, फल मधे रुद्रम्[3] देवा ।
तीनि देव का[4] छेद किया[5], तुम्हें करहु[6] कौंन[7] की सेवा ।१।
येक[8] डंडी दुडंडी[9] त्रियडंडी[10] भगवांन हूवा ।
बिष्न कौ तिन पार न पायौ, तीरथां[11] भ्रमि भ्रमि मूवा[12] ।२।
येक काल मुहां[13] जटा धारी, त्यंग उपासिक हूवा ।
महादेव कौ[14] तिन पार न पायौ[15], राष रौलि रौलि[16] मूवा[17] ।३।

तुम सजीव फूल पत्तियों को तोड़ कर निर्जीव मूर्ति को पूजते हो । इस प्रकार पाप की करनी (कृत्यों) से दुस्तर संसार को कैसे तर सकते हो ? तीर्थ तीर्थ में स्नान करते हो । बाहर धोने से जल भीतर प्रवेश कर आत्मा को कैसे निर्मल कर सकता है ? (पानी तो केवल शरीर को निर्मल बनाता है ।) आदि नाथ का नाती-शिष्य और मछन्दरनाथ का पुत्र-शिष्य गोरख केवल निज तत्त्व (आत्मा) का दर्शन करता है ॥३७॥

हे पंडित, योगी के यहाँ जन जन से शास्त्रार्थ (वाद) नहीं होता । (योगी हर किसी से शास्त्रार्थ नहीं ठान बैठता) अवधूत वह है जो अनबोला है, (बोलता नहीं है । क्योंकि समाधि के आनन्द का वर्णन बोलकर किया ही नहीं जा सकता है ।)

पत्ते में ब्रह्मा है, कली में विष्णु और फल में रुद्र देवता (महादेव) इस प्रकार 'पत्रं पुष्पं फलं' जब देवता को चढ़ाते हो तब तीनों का छेद होता है । बताओ तुम किस देवता के भक्त हो ? ॥ १ ॥

भगवान = संन्यासी जिसे 'सोऽहं' की अनुभूति हो गई है, स्वयं ब्रह्म है । परन्तु यहाँ उन्होंने इस अनुभूति को ब्रह्मपरक न मान कर विष्णुपरक माना है ।

---

१. (घ) यूं बोल्या । २. (घ) पेड़े । ३. (क) रुद्रम (घ) रुद्र । ४. (क) प्रथमे तीनि त्यंग का । ५. (घ) कीया । ६ (घ) तुम्ह करौ । ७. (घ) कौंण । ८. (घ) यक ९. (क) दोइ । १०. (क) तृय डंडी । ११. (घ) प्रषडे । १२. (घ) मूवां । १३. (घ) 'काल मुहां' के पहले 'येक' नहीं है, उसके बाद 'अर' है । १४. (घ) का । १५. (घ) पाया । १६. (घ) रोलि रोलि । १७. (घ) मूवां ।

चारि महाधर बारह[1] चेला, येकंकारी[2] हूवा ।
क़ायम कौ[3] तिन पार न पायौ[4], जोति बालि बालि मूवा[5] । ४ ।
चौदसियां नै पूनमियां[6], जैंन व्रतधारी हूवा ।
अरहंत कौ[7] तिन पार न पायौ[8], केस लौंचि लौंचि[9] मूवा[10] । ५ ।
येक मुलांनमूं[11] दोइ कुरांनमूं[12], ग्यारह षुरसाणी[13] हूवा ।
अलह[14] कौ[7] तिन पार न पायौ[8], बङ्ग देइ देइ[15] मूवा[5] । ६ ।
नौ[16] नाथ नै चौरासी सिधा, आसणधारी हूवा ।
जोग कौ[7] तिन पार न पायौ[8], बन षंडां[18] भ्रमि भ्रमि मूवा[5] ॥७॥
पंच तत्त की काया बिनसी[19] राषि न सक्या कोई ।
काल दवन[20] जब ग्यांन प्रकास्या, बदंत गोरष सोई ॥ ८ ॥ ३८ ॥

चार महाधर और बारह चेलों के अन्तर्गत कौन कौन माने गये हैं, निश्चय-रूप से नहीं कहा जा सकता संभवतः चार महाधुरंधर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार हैं । छांदोग्य में सनत्कुमार ने नारद को निवृत्ति मूलक अद्वैत की शिक्षा दी है । अन्य तीन भी उन्हीं के समान समझे जा सकते हैं । बारह चेले नारद, जनक, याज्ञवल्क्य, लोमश, मार्कंडेय, व्यास, वसिष्ठ, शुक, जड़भरत दत्त, गौड़पाद और शंकर माने जा सकते हैं ।

जोति = ब्रह्मज्योति । कायम = स्थिर सत्तत्व ।

मौला, अल्लाह एक हैं, किंतु कुरान के माननेवालों ने उसे दो बना दिया है और मुसल्मान शिया सुन्नी दो प्रधान संप्रदायों में बट गये हैं । ग्यारह खुरा-सानियों से संभवतः नबियों से अभिप्राय है । किंतु नबी बारह हुए हैं और उनमें से एक ही खुरासान के निवासी थे ।

---

१. (घ) बाराह । २. (घ) एकंकारी । ३. (घ) का । ४. (घ) पाया । ५. (घ) मूवां । ६. (घ) अमावसिया नै चौदसिया । ७. (घ) का । ८. (घ) पाया । ९. (घ) लूंचि लूंचि । १०. (घ) मूंवा । ११. (घ) मुलांणां । १२. (घ) कुरांणां । १३. (घ) षुरांसांणी । १४. (घ) अल्हा । १५. (घ) बांग दे दे । १६. (घ) नव । १७. (घ) पांच तत्व । १८. (घ) तीरथां । १९. (घ) बिणसै । २०. (घ) दवणि ।

भणंत[1] गोरषनाथ काया गढ़ लेबा[2] ,

काया गढ़ लेबा[2] जुगे जुगी[3] जीबा[2] ॥ टेक ॥

काया गढ़ भींतरि नौ[3] लख[4] षाई, जंत्र[5] फिरै गढ़ लिया[6] न जाई ।१।

ऊचे नीचे[7] परबत झिलमिलि षाई, कोठड़ी[8] का पांणीं[9] पूरण गढ़ जाई ।२।

इहां नहीं उहां[10] नहीं त्रिकुटी मंझारी, सहज सुंनि[11] मैं रहनि[12] हमारी ।३।

आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ[13] पूता, कायागढ़ जीतिले[14] गोरषअवधूता ।४।२६

बदंत गोरष राई परसि ले केदारं, पांणीं पीओ पूता त्रिभुवन सारं ॥टेक

ऊँचे ऊँचे परबत विषम के घाट, तिहां गोरषनाथ कै लिया सेबाट ॥१॥

गोरखनाथ कहते हैं कि काया गढ़ लेना चाहिये और इस प्रकार जुग जुग जीना चाहिए। इस काया रूप दुर्ग के भीतर नौ लाख खाइयां (नव रंध्र) हैं जो भीतर पहुँचने में बाधा डालती हैं। यंत्र से गढ़ की रक्षा होती है। यह गढ़ लिया नहीं जा सकता। दुर्ग बड़े दुर्गम स्थान पर है। वहां बहुत ऊँचे नीचे पर्वत हैं। (वह स्थान बड़ा ऊबड़ खाबड़ है। वह पानी जो सारे गढ़ में पहुँचता है बहुत सुरक्षित (कोठड़ी में रक्खा गया है। (यही त्रिकुटी या ब्रह्मरंध्र है जहाँ से अमृत की धार सारे शरीर को पुष्ट करती है।) यहाँ नहीं, वहाँ नहीं त्रिकुटी के मध्य सहज शून्य में हमारा निवास है। (अर्थात् हमने सारे गढ़ को पानी पहुँचाने वाली कोठड़ी पर अधिकार कर लिया है।) (इस प्रकार) आदिनाथ के नाती शिष्य और मछन्दर के पुत्र-शिष्य गोरख ने सारे गढ़ को जीत लिया है ॥ २६ ॥

गोरखनाथ कहते हैं कि केदार का स्पर्श कर लो (परब्रह्म-स्पर्शी हो जाओ, शिवजी के केवल दर्शनों का ही महत्व नहीं है, स्पर्श भी किया जाता है।) (और ब्रह्मरंध्र में पहुँच कर हे पुत्र ! त्रिभुवन में सार स्वरूप जल (अमृत) का पान करो।

---

१. (घ) वदंत। २. (घ) लीजै···लीजै···जीजै । ३. (घ) औधू जुगि जुगि। ४. (घ) नव। ५. (घ) चक्र। ६. (घ) लीयौ। ७. (घ) ऊँचा नीचा। ८. (घ) कोटड़ी। ९. (घ) पांणी। १०. (घ) यहां···वहां। ११. (घ) 'सहज सुंनि' के स्थान पर 'मुनि मंडल'। १२. (घ) रहणि। १३. (घ) मछिंद्र ना। १४. (घ) जीत्या।

काली गङ्गा धौली गङ्गा झिलिमिलि दीसै,
काउरू का पांणीं पुनि र गिर पईसैं ।२।
अरधैं जोगेस्वर उरधैं केदारं,
भोला लोक न जानैं मोष दुवारं ।३।
आदि नाथ नाती मछींद्र नाथ पूता,
काया केदार साधीले गोरष अवधूता । ४ ॥४०॥

कासौं झूझौं[1] अवधू राइ, विपष न दीसै[2] कोई ।
जासौं अब झूझौं रे[3] आतमा राम सोई ॥ टेक ॥
आपण[4] हीं मछ कछ अपण हीं जाल,
आपण हीं धीवर[5] आपण हीं काल । १ ।

(वहाँ पहुँचने के लिए बड़ा कठिन मार्ग है ।) वहाँ बहुत ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं और बहुत कठिन घाटियां हैं । लेकिन उनको भी गोरखनाथ ने सपाट (मैदान) कर लिया है । काली गंगा (यमुना, पिंगला नाड़ी) और धौली गंगा (गंगा, इला नाड़ी) दोनों (त्रिकुटी स्थान में सुषुम्ना से मिलकर) प्रकाशमान रूप धारण कर रही हैं । गंगोत्री जमनोत्री का जो पानी कावड़िए वितरित करने के लिए ले गये थे (अर्थात् अमृत की जो धारा नीचे गिर कर नष्ट होती रहती है, वह फिर पर्वत में (अर्थात् जहाँ से निकली है वहीं) प्रविष्ट हो जाती है । (नीचे से वहकर सूर्य से सोख लिया जाने वाला अमृत फिर ऊर्ध्वगामी हो जाता है ।) जीव (जो योग साधन से योगेश्वर हो सकता है, उसका स्थान नीचे (अधः, अरध) है और केदार (शिव, ब्रह्म) का स्थान ऊपर ब्रह्मरंध्र में । भोले (मूर्ख) लोग मोक्ष के द्वार को जानते ही नहीं हैं । परन्तु आदिनाथ के नाती-शिष्य और मछंदर के पुत्र-शिष्य गोरख अवधूत ने काया में स्थिर केदार को साध (सिद्ध कर) लिया है ॥ ४० ॥

हे अवधूत-राज किससे युद्ध करूँ ? विपक्षी तो कोई दिखाई ही नहीं

१. (घ) कासूं झूझूं अवधू राय । २. (क) में 'दीसै' नहीं है । ३.(घ) जासूं झूझण जायए आतम मेर सोई । ४. (घ) आपण हीं के स्थान पर सर्वत्र आपही । ५. (घ) झींवर ।

आपण हीं स्यंघ[1] बाघ आपण हीं गाइ[2],
आपण हीं मारीला[3], आपण हीं षाइ । २ ।
आपण हीं टाटीं[4] फड़िका, आपण हीं बंध,
आपण हीं मृतग[5], आपण हीं कंध । ३ ।
न्हाइबे कौं[6] तीरथ न पूजिबे कौं देव[7],
भणंत गोरषनाथ अलष अभेव[7] ।४। ॥४१॥

मेरा गुरु तीनि छंद गावै,
ना जाणौं गुर कहां गैला, मुझ नींद्‌डी न आवै ॥टेक॥
कुम्हरा कै घरि हांडी आछै, अहीरा कै घर सांडी ।
बमना कै घरि रांडी आछै, रांडी सांडी हांडी ।१।

देता । जिससे युद्ध करता हूँ वही तो आत्म स्वरूप राम है । (यह आत्मा ही) स्वयं कच्छप (कछुआ) और मच्छ (मछली) है और स्वयं ही (उनको बंधन में डालने वाला जाल (अर्थात् स्वयं जीव है और स्वयं उसे बंधन में डालने वाला माया-पाश) स्वयं धीवर (मछमार) है और स्वयं काल है । स्वयं सिंह और व्याघ्र (माया) है, और स्वयं गाय (जीव) जिसे वे ग्रसने जाते हैं । अपने ही को मारता है और स्वयं खाता है । स्वयं ही बांस के ठट्ठर का ढाँचा है और स्वयं ही उस पर बांधा जाने वाला फरका (फलक) या छाजन और स्वयं ही उनको बाँधने वाला बंधन । स्वयं मारने वाला है और स्वयं ही शरीर है । (जो मारा जाता है ।) (आत्मा के बाहर) न कोई तीर्थ है जहाँ के पवित्रता के लिये नहाया जाय और न कोई देवता है जिसकी पूजा की जाय । गोरखनाथ कहते हैं कि (यह आत्मा) अलक्ष्य है जो आँखों से दिखायी नहीं देता, अभेव है, जिसका किसी को भेद अथवा रहस्य नहीं ज्ञात है ।

कंध=स्कंध, कंधा, यहाँ पर शरीर ॥ ४१ ॥

मेरा गुरु तीन छन्द गाता है । (एक ही बात को तीन प्रकार से कहता

---

१. (घ) सिंघ । २. (घ) गाय…षाय । ३. (घ) मौर । ४. (घ) ताटी । ५. (क) भारीला । ६. (घ) न्हायवे कूं । ७. (घ) कूं देवा…अभेवा ।

राजा कै घरि सेल आछै, जंगल मधे बेल।
तेली के घरि तेल आछै, तेल बेल सेल ।२।
अहीर कै घरि महकी आछै, देवल मध्ये ल्यंग।
हाटी मधे हींग आछै, हींग ल्यंग स्यंग ।३।
एकैं सुन्नैं नाना वणियां, बहु भांति दिखलावै।
भणंत गोरषि त्रिगुणीं माया सत गुरु होइ लषावै ।४। ॥४२॥
गुरूजी[1] ऐसा करम[2] न कीजै, ताथैं अमीं[3] महारस छीजै ॥टेक॥
दिवसैं बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि घरि बाघणी पोषै ॥
नदी तीरै बिरषा[4] नारी संगै पुरषा अलप जीवन[5] की आसा,
मनथैं उपज[6] मेर षिसि पड़ई[7] ताथैं कंध बिनासा[8] ।१।

है।) मुझे पता नहीं कि मेरे गुरु कहाँ चले गये, उनके बिना मुझे नींद नहीं आती। (वही माया) कुम्हार के घर में हाँडी के रूप में है, अहीर के घर मलाई के रूप में और ब्राह्मण के घर उसकी स्त्री (राँड) के रूप में। (इस प्रकार रांड (रांडी), सांडी और हांडी एक ही चीज़ हैं।)

माया ही राजा के बरछे (सेल-शल्य, भाले की तीखी नोक या बरछा) जंगल में बेल के रूप में और तेली के घर में तेल के रूप में विद्यमान है। इस प्रकार तेल बेल सेल एक ही हैं।

वही अहीर के घर में भैंस है, देवालय में लिंग है, और दूकान में हींग है। हींग लिंग और भैंस (शृंगिन्, सींगवाला पशु, यहाँ पर भैंस) तीनों एक ही हैं।

एक ही सुन्न से नाना रूप बने हुए हैं जो बहुत प्रकार से देखने में आते हैं। गोरखनाथ गुण रहित (सद्गुणों से रहित, निंदनीय) माया का यह वर्णन करते हैं। सद्गुरु ही ऐसी माया का विवेक करा सकता है॥ ४२ ॥

कहते हैं कि मछंदरनाथ सिंहल की पद्मिनियों के बीच योग सिद्धि के लिए गये थे और वहीं रम गये। उन्हीं को सम्बोधित कर गोरख कहते हैं—]

---

१. (घ) गुरदेव। २. (क) क्रम। ३. (घ) अमी। टेक के बाद की २ पंक्तियां (क) में नहीं है। ४. (क) वृषा। ५. (घ) जीवण। ६. (घ) मनकी उपजनि। ७. (घ) पड़िई। ८. विणास।

आपण हीं स्यंघ[1] बाघ आपण हीं गाइ[2],
आपण हीं मारीला[3], आपण हीं षाइ । २ ।
आपण हीं टाटीं[4] फड़िका, आपण हीं बंध,
आपण हीं मृतग[5], आपण हीं कंध । ३ ।
न्हाइबे कौं[6] तीरथ न पूजिबे कौं देव[7],
भणंत गोरषनाथ अलष अभेव[7] ।४। ॥४१॥

मेरा गुरु तीनि छंद गावै,
ना जाणौं गुर कहां गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ॥टेक॥
कुम्हरा कै घरि हांडी आछै, अहीरा कै घर सांडी ।
बमना कै घरि रांडी आछै, रांडी सांडी हांडी ।१।

देता । जिससे युद्ध करता हूँ वही तो आत्म स्वरूप राम है । (यह आत्मा ही) स्वयं कच्छप (कछुआ) और मच्छ (मछली) है और स्वयं ही (उनको बंधन में डालने वाला जाल (अर्थात् स्वयं जीव है और स्वयं उसे बंधन में डालने वाला माया-पाश) स्वयं धीवर (मछमार) है और स्वयं काल है । स्वयं सिंह और व्याघ्र (माया) है, और स्वयं गाय (जीव) जिसे वे ग्रसने जाते हैं । अपने ही को मारता है और स्वयं खाता है । स्वयं ही बांस के ठट्टर का ढाँचा है और स्वयं ही उस पर बांधा जाने वाला फरका (फलक) या छाजन और स्वयं ही उनको बाँधने वाला बंधन । स्वयं मारने वाला है और स्वयं ही शरीर है । (जो मारा जाता है ।) (आत्मा के बाहर) न कोई तीर्थ है जहाँ के पवित्रता के लिये नहाया जाय और न कोई देवता है जिसकी पूजा की जाय । गोरखनाथ कहते हैं कि (यह आत्मा) अलक्ष्य है जो आँखों से दिखायी नहीं देता, अभेव है, जिसका किसी को भेद अथवा रहस्य नहीं ज्ञात है ।

कंध=स्कंध, कंधा, यहाँ पर शरीर ॥ ४१ ॥

मेरा गुरु तीन छन्द गाता है । (एक ही बात को तीन प्रकार से कहता

---

१. (घ) सिंघ । २. (घ) गाय···पाय । ३. (घ) मौर । ४. (घ) ताटी । ५. (क) भारीला । ६. (घ) न्हायबे कूं । ७. (घ) कूं देवा···अभेवा ।

राजा कै घरि सेल आछै, जंगल मधे बेल।
तेली के घरि तेल आछै, तेल बेल सेल।२।
अहीर कै घरि महकी आछै, देवल मध्ये ल्यंग।
हाटी मधे हींग आछै, हींग ल्यंग स्यंग।३।
एकैं सुत्रैं नाना वर्णियां, बहु भांति दिखलावै।
भणंत गोरषि त्रिगुणीं माया सत गुरु होइ लषावै।४। ॥४२॥

गुरूजी[1] ऐसा करम[2] न कीजै, ताथैं अमीं[3] महारस छीजै ॥टेक॥
दिवसैं बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि घरि बाघणी पोषै॥
नदी तीरै बिरषा[4] नारी संगै पुरषा अलप जीवन[5] की आसा,
मनथैं उपज[6] मेर षिसि पड़ई[7] ताथैं कंध बिनासा[8]।१।

है।) मुझे पता नहीं कि मेरे गुरु कहाँ चले गये, उनके बिना मुझे नींद नहीं आती। (वही माया) कुम्हार के घर में हाँडी के रूप में है, अहीर के घर मलाई के रूप में और ब्राह्मण के घर उसकी स्त्री (राँड़) के रूप में। (इस प्रकार रांड (रांडी), सांडी और हांडी एक ही चीज़ हैं।)

माया ही राजा के बरछे (सेल-शल्य, बाण की तीखी नोक या बरछा) जंगल में बेल के रूप में और तेली के घर में तेल के रूप में विद्यमान है। इस प्रकार तेल बेल सेल एक ही हैं।

वही अहीर के घर में भैंस है, देवालय में लिंग है, और दूकान में हींग है। हींग लिंग और भैंस (शृंगिन्, सींगवाला पशु, यहाँ पर भैंस) तीनों एक ही हैं।

एक ही सूत्र से नाना रूप बने हुए हैं जो बहुत प्रकार से देखने में आते हैं। गोरखनाथ गुण रहित (सद्गुणों से रहित, निंदनीय) माया का यह वर्णन करते हैं। सद्गुरु ही ऐसी माया का विवेक करा सकता है॥ ४२ ॥

कहते हैं कि मछंदरनाथ सिंहल की पद्मिनियों के बीच योग सिद्धि के लिए गये थे और वहीं रम गये। उन्हीं को सम्बोधित कर गोरख कहते हैं—]

---

१. (घ) गुरदेव। २. (क) क्रम। ३. (घ) अमी। टेक के बाद की २ पंक्तियां (क) में नहीं है। ४. (क) बृषा। ५. (घ) जीवण। ६. (घ) मनकी उपजनि। ७. (घ) पड़िई। ८. विणास।

गोड़ भए डगमग पेट भया[1] ढीला, सिर बगुलां[2] की पंषियां[3]
अमीं महारस बाघणीं सोष्या[4] घोर मथन जैसी[5] अषियां[6] ।२।
बाघनी[7] कौं[8] निंदिलै बाघनीं कौं[8] बिंदिलै[9] बाघनीं हमारी काया
बाघनीं घोषि घोषि सुंदर[10] षाये भणत[11] गोरष राया ।३। ॥४३॥

भोगिया सूते अजहूँ[12] न जागे । भोग[13] नही रे रोग अभागे ॥ टेक
भोगिया कहैं[14] भल भोग हमारा । मनसइ नारि[15] किया तन[16] छारा ।१।
एक बूँद नर नारी रीधा । ताही मैं[17] सिध साधिक सीधा ।२।

हे गुरुदेव ऐसा कर्म न कीजिए, इससे महारस अमृत क्षीण होता है। स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी किनारे के पेड़ के जैसी होती है। उसके जीवन की कम आशा होती है। माया नारी रूप मन को मोहती है और रात्रि को शुक्र स्खलन द्वारा अमृत सरोवर को सोखती है। इस प्रकार मूर्ख लोग जान बूझ कर घर घर में बाघिन को पालते पोसते हैं। मन में ज्योंही मनसिज पैदा हुआ त्योंही मेरु (शिखर) (सुषुम्ना के ऊर्ध्व-मुख ब्रह्मरंध्र से अमृत) नीचे गिर पड़ता हैं। इससे शरीर का नाश होता है। अथवा ज्योंही मनमें स्त्री के सम्बन्ध में ममत्व (मेरी है, यह) भाव उत्पन्न हुआ त्योंही अमृत नीचे स्खलित होने लगता है। मन का घोर मथन कर देने वाली आँखों से युक्त बाघिन (माया) जब महारस अमृत को सोख लेती है तो पैर डगमग, पेट ढीला और सिर के बाल बगुले के पंखों की भाँति सफेद हो जाते हैं ॥४३॥

भोगी लोग सो ही रहे हैं, अब भी नहीं जागे। हे अभागे यह वास्तविक आनन्द भोग नहीं है, अरे यह तो रोग है। भोगी कहते हैं कि हमारा भोग अच्छा है। नारी इच्छा करके (मनसना इच्छा करना) उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर डाला है। इसी एक बूँद के (आनन्द में) नर नारी पच मरे

---

१. (घ) भये। २. (घ) बगलै। ३. (घ) पंषीयां। ४. (घ) बाघणि पाया। ५. (घ) भई। ६. (घ) अंषीयां। ७. (घ) 'बाघणी' आगे सर्वत्र। ८. (घ) कूं। ९. (घ) बांदि लै। १०. (घ) सुरनर। ११. (घ) वंदत (? बदत)। १२. (घ) भोगीया सूता बाबा अजहुँ। १३. (क) भोगि। १४. (घ) भोगीया कहै। १५. (घ) मन समी नारी। १६. (घ) तन कीया। (घ) में इस चरण के बाद इतना अधिक है—भोगीया कहै भल भोग-विलास। भोग नहीं यों कथ-बिनास। १७. (घ) तहि राध्यां।

भोगिया[1] सोइ जो[2] भगथैं न्यारा । राजस तामस[3] झरै न द्वारा[4] ।३।

भणत[5] गोरखनाथ सुणो[6] नर लोई । कथणीं बदणीं[7] जोग न होई ।४।४४।

मारौ मारौ स्रपनीं[8] निरमल[9] जल पैठी,

त्रिभुवन[10] डसती गोरषनाथ दीठी ॥टेक॥

मारौ[11] स्रपणीं[8] जगाइल्यौ भौरा,

जिनि मारी स्रपणीं[8] ताकौ कहा करै जौंरा ।१।

स्रपणीं[8] कहै मैं अबला बलिया[12],

ब्रह्मा विष्न महादेव छलिया[13] ।२।

और उसी को साधना से सिद्ध कर साधकों को सिद्धि प्राप्त हुई । जो भग से अलग रहता है वही वास्तविक आनन्दी है । (वह सात्विक जीव है) राजस-तमस् उसके ऊपर प्रभाव नहीं डाल सकते और इस लिए उसके इन्द्रिय-द्वार से अमृत अथवा शुक्र झरता नहीं है । पाठांतर का पारा और भी स्पष्ट है ॥ ४४ ॥

निर्मल जल (अमृत सरोवर) में प्रवेश कर सर्पिणी माया को मारो । गोरखनाथ ने उसे त्रिभुवन को डसते देखा है । कहते हैं जल में साँप का विष नहीं चढ़ता है । अमृत में प्रविष्ट साधक पर भी माया का कोई भी प्रभाव नहीं हो सकता । सर्पिणी को मारो और सहस्र-दल कमल के रस के इच्छुक, भ्रमर-गुहा (ब्रह्म-रंध्र) के निवासी भ्रमर (ब्रह्म, आत्मा को जगा लो । जिसने सर्पिणी को मार डाला है । उसका यमराज (यमराज, जौंरा क्या कर सकता है ? सर्पिणी कहती है कि मैं बलवती अबला (स्त्री) हूँ । मैंने ब्रह्मा विष्णु महादेव सबको छल लिया है । इस प्रकार मतवाली सर्पिणी (माया) दसों दिशाओं में दौड़ती रहती है किन्तु गोरखनाथ कहते हैं कि गारुड़ी पवन उसे शीघ्र (इधर उधर से खींच कर यथा स्थान) ले आता है या गोरखनाथ

---

१. (घ) भोगीया । २. (घ) ज । ३. (क) राज्स तामस । ४. (घ) पारा । ५. (घ) बदंत । ६. (घ) सुणौं । ७. कथली बदणी । ८. (घ) श्रपणी । ९. (क), (घ) नृमल । १०. (घ) त्रिभवन । ११. (घ) मारिल्यौ । १२. (घ) अमला मलीया । १३. (घ) छलीया ।

माती माती सपनीं[1] दसौं दिसि[2] धावै,
गोरषनाथ गारड़ी पवन वेगि ल्यावै ।३।
आदिनाथ नाती मछिंद्र नाथ[2] पूता,
सपणीं[1] मारिलै गोरष[3] अवधूता ।४। ॥४५॥

थान दे[4] गोरीए गोरष बाला माई[5] बिन प्याले[6] प्याला[7] ।
गिगांन ची डाल्हीला[8] पालंषू[9] गोरषबाला पौढ़िला[10] ॥ टेक ॥
देव लोक ची[11] देव कंन्या[12], मृत्त लोक ची नारी[11],
पाताल लोक ची नाग कन्या[12], गोरषबाला भारी ।१।
माया मारिली मावसी[13] तजीली, तजीला कुटंब बन्धू,
सहंसर[14]कवल[15]तहां गोरषवाला[16]जहां मन मनसा सुर संधू[17] ।२।

गारुड़ी पवन को शीघ्र ले आता है जिसके द्वारा सर्प वश कर लिया जाता है । आदिनाथ के नाती-शिष्य और मछंदरनाथ के पुत्र-शिष्य गोरख अवधूत ने सर्पिणी को मार लिया है । या गोरख अवधूत कहता है कि इस प्रकार तुम भी सर्पिणी को मार डालो ॥ ४५ ॥

हे गोरी ! गोरख बाल के लिए जगह छोड़ो, (उसको स्थान दो ।) उसने बिना प्याले का प्याला, (बिना मदिरा की मदिरा पी रक्खी है ।) ज्ञान की पालकी डाली है या रक्खी है जिस पर गोरखनाथ लेटे हैं । देवलोक की अप्सराओं, मृत्यु लोक की स्त्रियों और पाताल लोक की नाग कन्याओं के लिए गोरख बाल (को प्रभावित करना) भारी काम है । उसने माया को मार दिया है, घर-बार छोड़ दिया है, कुटुंब और भाई-बंधु त्याग दिये हैं । सहस्र-दल कमल में गोरख का निवास है, जहाँ मन, इच्छा (मनसा) और माया (सुर) की

---

१. (घ) दसूं दिस । २. (घ) ना । ३. (घ) मारी गोरषि । ४. (घ) थीन दे । ५. (घ) माय । ६. (घ) बिनां थान । ७. (घ) प्याला जी । प्रत्येक तुक के अंत में 'जी' । ८. (क) डीलि लावैला । संभवतः 'डोली लावैला' । ९. (घ) पालषू । १०. (घ) गोरषवाल पहुड़लाजी । ११. (घ) ची या । १२. (घ) कन्यां । १३. माया रिली मवुसीया । १४. (घ) सहंश्रदल । १५. (घ) कंवल । १६. (घ) बालू । १७. (घ) जिहां मनूं नहीं दूजा भावैजी ।

आसा तजीला[1] तृसनां[2] तजीला[1] तजीला[1] मनसा[3] माई,
नौ[4] षंड पृथ्वी[5] फेरि नैं आलौं[6] गोरष रहीला मछिंद्र ठांई[7] ॥४६॥

नाथ बोलै अमृत बांणीं[8] बरिषैगी[9] कंवली[10] भीजैगा पांणीं[11] ॥टेक॥
गाड़ि पडरवा बांधिलै षूंटा, चलैं दमांमां बाजिले[12] ऊँटा ।१।
कउवा की डाली पीपल[13] बासै मूसा[14] कै सबद[15] बिलइया नासै ।२।
चले बटावा[16] थाकी[17] बाट, सोवै डुकरिया[18] ठौरै[19] षाट ।३।
ढूकिले कूकर भूकिले[20] चोर, काढै धणीं पुकारै ढोर ।४।

संधि है, (जहाँ यह तीनों अन्ततः लीन हो जाते हैं ।) गोरख ने आशा, तृष्णा और इच्छा रूप माया को छोड़ दिया है और नौ खंड पृथ्वी फिर-आकर वह मछन्दर के स्थान पर (उनकी शरण में अथवा सहस्रार में जो परमगुरु ब्रह्म का स्थान है) निवास करता है ॥ ४६ ॥

नाथ अमृत वाणी बोलता है—'कंबली (दैहिक मानसिक कर्म जो सामान्यतया जोगी को अमृत की वर्षा में भीगने से बचाते रहते हैं अब शुद्ध होकर अमृत (-मय कर्मों के रूप में) जल (-बिंदु निर्मित अस्तित्व के ऊपर) बरस रही है । पडरवा अर्थात् अविवेक को (जो माया रूप गाय या पशु की सन्तान है) गाड़ कर खूँटे को (अर्थात् माया जो जीव को बाँधने के लिए खूँटे का काम करती है) बांध लो (उसका निरोध कर लो) दमामा (अनाहत नाद) बजता है, बंद नहीं है, निरन्तर सुनायी दे रहा है जिससे ऊँट (स्थूल मन) पर तड़ातड़ मार पड़ रही है, वह बाजे की तरह बजाया जा रहा है । कौए (क्षुद्र, अविवेकी, ग्राह्याग्राह्य का विचार न रखने वाले मन) की शाखा (ऊँची अवस्था) पर बैठ कर ही पीपल (बड़ा पवित्र और छाया देने वाला वृक्ष अर्थात् ब्रह्मानुभव बोलता है ।) चूहे (सूक्ष्म अंतर्मुख जीवन) का शब्द सुनकर बिल्ली (माया, जो पहले अध्यात्मिक जीवन को भगाने में समर्थ थी अब

१. (घ) तजीली । २. (घ) तृष्नां । ३. (घ) मनछा । ४. (घ) नव । ५. (घ) पृथी । ६. (घ) आलू । ७. (घ) ठांई । ८. (घ) अमृत वांणी । ९. (घ) बरसैगी । १०. (घ) कंवलीयां । ११. (घ) पांणी । १२. (घ) बाजि है । १३. (घ) पीपल । १४. (घ) मूंसै । १५. (घ) सबदि १६. (घ) बटऊ । १७. (घ) सोकी । १८. (घ) डोकरिया । १९. (घ) ठौरै । २०. (घ) भुसिले ।

ऊजड़[1] षेड़ा नगर मझारी[2] तलि गागरि ऊपर पनिहारी[2] ।५।

मगरी परि[3] चूल्हा धूंधाइ[4], पोवणहारा कौं[5] रोटी खाइ[6] ।६।

कांमिनि[7] जलै अंगीठी[8] तापै, विचि बैसंदर थरहर[9] कांपै ।७।

एक जु रंढिया रढती[10] आइ, बहू बिवाई[11] सासू जाई ।८।

नगरी कौ पांणीं[12] कूंई[13] आवै, उलटी चरचा गोरष गावै[14] ॥४७॥

निर्बल पड़कर) भागने लगी है। चलता तो है (ज्ञान मार्ग का) बटोही किंतु थकता है (थक कर चलना बंद हो जाता है) मार्ग (का क्योंकि ज्ञान-मार्ग पर चलने से मोक्ष प्राप्त होता है और मोक्ष प्राप्त हो जाने पर कुछ करना शेष नहीं रह जाता, ज्ञानमार्ग पर चलना अथवा मार्ग भी नहीं।) डुकरिया अर्थात् माया अब तक जो अध्यात्मिक जीवन को खाट बनाकर उसे दबा कर सो रही थी अब स्वयं निर्बल पड़ गई है और अब उसे ठौर (लेटने की जगह) बना कर आत्मा (जो पहले खाट बना था) उसके ऊपर बैठ गया है। (अब तक मन कुत्ते की तरह रखवाली कर रहा था और आत्म-ज्ञान को चोर की तरह भगाता रहता था।) अब वही कुत्ता (द्रोही मन) छिप गया है और उसका स्थान ज्ञान ने ले लिया है जो भौतिक भावों को भगाता रहता है, यही चोर (आत्म-ज्ञान) का भौंकना है। लकड़ी (मगरी राजस्थानी में जंगल को कहते हैं) पड़ी है, अर्थात जल नहीं रही है (जीव जो पहले त्रय ताप से जला करता था अब अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर तापरहित हो गया है) और चूल्हा वह स्थान या वस्तु जिसमें रखकर लकड़ी जलाई जाती है, स्वयं धुँआधार जल रहा है (अर्थात् माया जिसके संसर्ग से जीव जलता था स्वयं जल रही है, नष्ट हो रही है।) इंद्रियों, नवरंध्र आदिकों से बसी हुई जो माया की नगरी थी वह अब उजड़ा गांव सी हो गयी है, इन्द्रियां इत्यादि अब विभव हीन हो गई हैं, अब उन्हें विषयों का खाद्य नहीं मिलता है। इन नगरी (शरीर) में गागर नीचे और पनिहारी ऊपर है। आत्मा (पनिहारिन) का निवास ब्रह्म-

---

१. (घ) ऊझड़। २. (घ) मझार···पनिहारि। ३. (घ) ऊपरि। ४. (घ) धूंधाय। ५. (घ) कूं। ६. (घ) षाय। ७. (घ) कांमणि। ८. (घ) अंगींठी। ९. (घ) थर-थर। १०. (घ) रंडीया यहु रंडती। ११. (घ) बहु बियाई। १२. (घ) का पांणी। १३. (घ) कूंपै! १४, सर्वांगी में भी यह पद उद्धृत है। इसमें अंतिम पंक्ति नहीं है। उसके स्थान पर यह पंक्ति है—

भग राकसि[1] लो, भग राकसि[1] लो, बिणं दंतां[2] जग[3] षाया लो।
ग्यानी हूता[4] सु[5] ग्यांन सुष[6] रहिया, जीव लोक आपैआप गंवाया[7] लो ॥टेक॥
दिन दिन बाघिनीं[8] सींया[9] लागी, राति सरीरै[10] सोषै।
विषै लुवधी तत न बूझै, घरि लै[11] बाघनीं[8] पोषै।१।

रंध्र है और कुंडलिनी (गागर) जिसके द्वारा ब्रह्मानन्द रस का अनुभव होता है वह मूलाधार में। जितने विभेद हैं वे सब माया के बनाये हैं और उन विभेद वस्तुओं को बनाकर माया फिर नष्ट कर देती है जैसे रोटी पकाने वाली रोटी को खा जाती है। किंतु अब अवस्था बदल गई है। पोने वाली (माया) को रोटी (जीव, जिसका ब्रह्म से विभिन्न रूप माया कृत है) खा रही है। ब्रह्मानुभूति होने पर माया नष्ट हो जाती है।

सामान्य अवस्था में अँगीठी (जीवात्मा भयताप से) जलती है और कामिनी (माया) तापती है किंतु अब (ब्रह्म साक्षात्कार के कारण) कामिनी (माया) जल रही है और अँगीठी ताप रही है, (जीवात्मा को ब्रह्मसुख प्राप्त हो रहा है।) जलती हुई माया ब्रह्माग्नि में थर थर काँप रही है, क्योंकि उसे पूर्णतया नष्ट होने का भय है। बैसंदर=बैश्वानर। एक हठ करने वाली दृढ़ निश्चय (आत्मा) हठ करती हुई आयी तो ऐसी अवस्था आ जाती है कि बहू सास को जन्म देती है। मायिक उलझन बहू है। वह अपने पति जीवात्मा को मोहित किये रहती है। जीवात्मा ब्रह्मसत्ता का पुत्र है इसलिए ब्रह्मसत्ता माया अथवा मायिक उलझन की सास हुई। दृढ़ लगन और साधना से यह मायिक उलझन (संसर्ग) भी ब्रह्मानुभूति (ब्रह्मसत्ता) को जन्म दे देता है। यही बहू का सास को जनना है।

जैसे पानी कुएं से निकाल कर नगर में पहुँचाया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र (या ब्रह्मरंध्र) से निकलकर योगशक्ति कुंडलिनी मूलाधार चक्र में स्थित है। योग अपनी साधना के द्वारा उसे उलटकर फिर मूल स्थान पर पहुँचा देता है। यही नगर के पानी को कुंए में पहुँचाना है। गोरख ऐसी उलटी चर्चा गाता है ॥४७॥

भणंत गोरषनाथ द्वै कर जोड़ी। भिड़ैं आगैं चावड़ तोड़ी॥

१. (घ) राकस। २. (घ) विण दांतां। ३. (घ) जुग। ४. (घ) वे। ५. (घ) सुषि। ६. (घ) रहीया। ७. (घ) जीव लै आपगमाया। ८. (घ) बाघणी। ९. (घ) सेनीयां। १०. (घ) राति सरीरैं। ११. (घ) ले।

चांमैं चांम[1] घसंता लोई[2], दिन दिन छीजै काया,
आपा परचै गुर[3] मुषि न[4] चिन्हैं, फाड़ि फाड़ि बाघणीं[5] षाया ।२।
बाघनीं[6] उपाया बाघनी[6] निपाया बाघनीं[6] पाली[7] काया ।
बाघनीं[6] डाकरै जौरियों पाषरैं[8], अनभुइ[9] गोरष राया ।।४८।।

रूपे रूपे[10] करूपे गुरदेव, बाघनीं[11] भोले भोले[12],
जिन जननीं[13] संसार दिषाया[14], ताकौं[15] ले सूते षोले ।।टेक।।

भग राक्षसिन है, भग राक्षसिन है। उसने जगत को बिना दांतों के खा डाला है। जो ज्ञानी होता है, वह ज्ञान का आश्रय लेकर रहता है (और भग का भोजन बनने से बच जाता है।) किंतु जगत के सामान्य जीव समूह अपने आप (आत्मा) को अपने आप गँवा देता है (नष्ट कर देता है।) दिन में बाघिन (माया=कामिनी) सोयी रहती है अर्थात् शत्रुता का काम नहीं करती और रात में शरीर का शोषण करती है। विषय भोग का लोभी जीव इस तत्व को नहीं जानता, इसलिए वह बाघिन (माया) को घर में रक्खे उसका पोषण करता रहता है। संभोग के कारण लोक (लोगों) का शरीर दिन दिन क्षीण होता चला जाता है। उन्होंने गुरु के मुख से आत्मज्ञान (आत्मा परिचय) नहीं प्राप्त किया है। इसलिए बाघिन (माया) उन्हें फाड़ फाड़ कर खाया करती है। बाघिन ही ने काया को उपजाया है, उसी ने इसे पाला है। (पाठांतर से बाघिनी ही काया है।) यमराज के बगल में वह दहाड़ती रहती है, यह गोरख राय का अनुभव है।

उपाया=उत्पादित किया, निपाया=निष्पादित किया; डाकरै=गर्जन करती है। डुकरना गढ़वाली में बैल और रीछ के शब्द करने को कहते हैं ।।४८।।

रूप रूप में यहाँ तक कि कुरूप में भी, हे गुरुदेव (मत्स्येन्द्रनाथ) बाघिन (माया) भोले रूप में विद्यमान रहती है। (बाहर से देखने में वह भोली

---

१. (घ) चांमै चांव। २. (घ) में 'लोई' नहीं। उसके स्थान पर इतना और है—आलिंगण चूंवतां। ३. (घ) गुरू। ४. (घ) नहीं। ५. (घ) बाघणि। ६. (घ) हमारी। ७. (घ) टाकरूं जौंरीया पापरे। ८. (घ) अनभवी। १०. (घ) रूपे रूप। ११. (घ) बागर। १२. (घ) भूले भोले। १३. (घ) जननी। १४. (घ) दिपाल्या। १५. (घ) ताकूं।

गुरू षोजौ गुरदेव[1] गुरूषोजौ[2], बदंत गोरष ऐसा,
मुषते[3] होइ तुम्हें बंधनि पड़िया[4], ये[5] जोग है कैसा ।१।
चांम[6]हीं चांम[6] षसंतां गुरदेव दिन दिन छीजै काया,
होठ कंठ तालुका सोषी[7] काढ़ि[8] मिजालू षाया ।२।
दीपक[9] जोति पतंग[10] गुरदेव[11], ऐसी भग की छाया,
बूढ़े होइ तुम्हे[12] राज कमाया नां तजी मोह माया[13] ।३।
बदंत गोरषनाथ सुनहु[14] मछंदर तुम्हें[15] ईश्वर के[16] पूता,
ब्रह्म झरंता जे नर राषैं, सो बोलौ[17] अवधूता ।। ४६ ।।

भाली लगती है, उसका भयंकर रूप इस बाहरी भोलेपन के कारण छिपा रहता है, और यह अनौचित्य तो देखिए—) जिस माता ने संसार दिखाया, संसार में जन्म दिया (स्त्री से उत्पन्न होने के कारण गोरखनाथ स्त्री-मात्र में मातृभाव मान रहे हैं—) उसी को गोद में चिपका कर लोग (अथवा आप) सोते हैं ।

हे गुरुदेव वास्तविक गुरु की ढूँढ कीजिए—यह गोरखनाथ का कथन है । मुक्त होकर भी आप बंधन में पड़ गये, यह कैसा योग है । (योग तो मोक्ष का कारण होता है बंधन का नहीं ।) संभोग से तो शरीर दिन दिन क्षीण होता चला जाता है । (उसके द्वारा माया) ओठ, कंठ और तालू को शोष लेती है और मज्जा तक को निकाल कर खा जाती है । कामुक जीवन मनुष्य को वैसे ही नष्ट कर डालता है जैसे दीपक की शिखा पतंग को । हे मछंदर गोरखनाथ का वचन सुनो—तुम तो ईश्वर आदिनाथ के पुत्र-शिष्य हो, (क्यों अपने आप को भूल गये हो ? नहीं जानते कि—) झड़ते हुए बिंदु (ब्रह्म) की जो नर रक्षा करता है वही अवधूत है ।

पोले=झोड़े, कांरै (व्रज), कोलि और खुखली (गढ़वाली) । मिजालू= मज्जा+खा (लू) ।। ४६ ।।

---

१. (घ) गुरूदेव । २. (घ) गुर । ३. (घ) पुषता; (क) पुषते (? मुषता, मुषते) । ४. (घ) होय तुम्हे बंधन पड़ीया । ५. (घ) ए । ६. (घ) चाम । ७. (घ) तालूका सोष्या । ८. (घ) काटि ९. (घ) दीपग । १०. (घ) पतंगा । ११. (घ) गुरुदेव । १२. (घ) बूढ़ा होय तुम्ह । १३. (क) में 'नां... माया' नहीं है । १४. (घ) सुणौ । १५. (घ) तुम्हे । १६. (घ) का । १७. (घ) बोलूं ।

चांमैं चांम[1] घसंता लोई[2], दिन दिन छीजै काया,
आपा परचै गुर[3] मुषि न[4] चिन्हैं, फाड़ि फाड़ि बाघणीं[5] षाया ।२।
बाघनीं[6] उपाया बाघनी[6] निपाया बाघनीं[6] पाली[7] काया ।
बाघनीं[6] ढाकरै जौरियों पाषरैं[8], अनभुइ[9] गोरष राया ।।४८।।
रूपे रूपे[10] करूपे गुरदेव, बाघनीं[11] भोले भोले[12],
जिन जननीं[13] संसार दिषाया[14], ताकौं[15] ले सूते षोले ।।टेक।।

भग राक्षसिन है, भग राक्षसिन है। उसने जगत को बिना दांतों के खा डाला है। जो ज्ञानी होता है, वह ज्ञान का आश्रय लेकर रहता है (और भग का भोजन बनने से बच जाता है।) किंतु जगत के सामान्य जीव समूह अपने आप (आत्मा) को अपने आप गँवा देता है (नष्ट कर देता है।) दिन में बाघिन (माया = कामिनी) सोयी रहती है अर्थात् शत्रुता का काम नहीं करती और रात में शरीर का शोषण करती है। विषय भोग का लोभी जीव इस तत्त्व को नहीं जानता, इसलिए वह बाघिन (माया) को घर में रक्खे उसका पोषण करता रहता है। संभोग के कारण लोक (लोगों) का शरीर दिन दिन क्षीण होता चला जाता है। उन्होंने गुरु के मुख से आत्मज्ञान (आत्मा परिचय) नहीं प्राप्त किया है। इसलिए बाघिन (माया) उन्हें फाड़ फाड़ कर खाया करती है। बाघिन ही ने काया को उपजाया है, उसी ने इसे पाला है। (पाठांतर से बाघिनी ही काया है।) यमराज के बगल में वह दहाड़ती रहती है, यह गोरख राय का अनुभव है।

उपाया = उत्पादित किया, निपाया = निष्पादित किया; ढाकरै = गर्जन करती है। ढुकरना गढ़वाली में बैल और रीछ के शब्द करने को कहते हैं ।।४८।।

रूप रूप में यहाँ तक कि कुरूप में भी, ऐ गुरुदेव (मत्स्येन्द्रनाथ) बाघिन (माया) भोले रूप में विद्यमान रहती है। (बाहर से देखने में वह भोली

---

१. (घ) चांमै चांव। २. (घ) में 'लोई' नहीं। उसके स्थान पर इतना और है—आलिंगण चूंबतां। ३. (घ) गुरू। ४. (घ) नहीं। ५. (घ) बाघणि। ६. (घ) हमारी। ७. (घ) टाफरूं जौंरीया पापरै। ८. (घ) अनभवी। १०. (घ) रूपे रूप। ११. (घ) बागर। १२. (घ) भूले भोले। १३. (घ) जननी। १४. (घ) दिपाल्या। १५. (घ) ताकूं।

गुरू षोजौ गुरदेव[1] गुरूषोजौ[2], बदंत गोरष ऐसा,
मुषते[3] होइ तुम्हें बंधनि पड़िया[4], ये[5] जोग है कैसा ।१।
चांम[6]हीं चांम[6] घसंतां गुरदेव दिन दिन छीजै काया,
होठ कंठ तालुका सोषी[7] काढ़ि[8] मिजालू षाया ।२।
दीपक[9] जोति पतंग[10] गुरदेव[11], ऐसी भग की छाया,
बूढ़े होइ तुम्हे[12] राज कमाया नां तजी मोह माया[13] ।३।
बदंत गोरपनाथ सुनहु[14] मछंदर तुम्हें[15] ईश्वर के[16] पूता,
ब्रह्म झरंता जे नर राषैं, सो बोलौ[17] अवधूता ॥ ४६ ॥

भाली लगती है, उसका भयंकर रूप इस बाहरी भोलेपन के कारण छिपा रहता है, और यह अनौचित्य तो देखिए—) जिस माता ने संसार दिखाया, संसार में जन्म दिया (स्त्री से उत्पन्न होने के कारण गोरखनाथ स्त्री-मात्र में मातृभाव मान रहे हैं—) उसी को गोद में चिपका कर लोग (अथवा आप) सोते हैं ।

हे गुरुदेव वास्तविक गुरु की ढूँढ कीजिए—यह गोरखनाथ का कथन है । मुक्त होकर भी आप बंधन में पड़ गये, यह कैसा योग है । (योग तो मोक्ष का कारण होता है बंधन का नहीं ।) संभोग से तो शरीर दिन दिन क्षीण होता चला जाता है । (उसके द्वारा माया) ओठ, कंठ और तालू को शोष लेती है और मज्जा तक को निकाल कर खा जाती है । कामुक जीवन मनुष्य को वैसे ही नष्ट कर डालता है जैसे दीपक की शिखा पतंग को । हे मछंदर गोरखनाथ का वचन सुनो—तुम तो ईश्वर आदिनाथ के पुत्र-शिष्य हो, (क्यों अपने आप को भूल गये हो ? नहीं जानते कि—) झड़ते हुए बिंदु (ब्रह्म) की जो नर रक्षा करता है वही अवधूत है ।

पोले=कोढ़े, कारे (ब्रज), कोलि और खुखली (गढ़वाली) । मिजालू=मज्जा+वा (लू) ॥ ४६ ॥

---

१. (घ) गुरूदेव । २. (घ) गुर । ३. (घ) पुषता; (क) पुषते (? मुषता, मुषते) । ४. (घ) होय तुम्हे बंधन पड़ीया । ५. (घ) ए । ६. (घ) चाम । ७. (घ) तालूका सोष्या । ८. (घ) काटि ९. (घ) दीपग । १०. (घ) पवंगा । ११. (घ) गुरुदेव । १२. (घ) बूढ़ा होय तुम्ह । १३. (क) में 'नां··· माया' नहीं है । १४. (घ) सुणौ । १५. (घ) तुम्हे । १६. (घ) का । १७. (घ) बोलूं ।

सरवा रे सरवा त्रिभुवन[1] ते गरवा। पांणीं तैं[2] पतला[3] पहुप तैं[4] हलवा ॥टेक
काया थैं[5] मन जांन[6] न देह। राति दिवस[7] अभि अंतरि लेह।
मन मुद्रा कै रूप न रेष। जगत रूप मन हीं मन देषि ।१।
उलटैगा पवनां[8] तब[9] काया कौं[10] गहैगा। काच गहै[11] कंचन ह्वै रहैगा
यहु तन साच साच का घरवा। रुध्र पलट अमींरस भरवा[12] ।२।
अतीत पुरस[13] ग्यांन पद परसै। अविचल होइ सरीरं दरसै[14]।
जुरा मृतु[15] काल का भक्षिण[16]। निसपति जोगी जोगी का लक्षिण[17] ।३।

सर्व रूप आत्मा त्रिभुवन में सबसे भारी अथवा श्रेष्ठ है। वह पानी से भी पतला है और फूल (संभवतः सुगंधि अथवा पुष्प की प्रफुल्लता) से भी हलका है।

मन को काया से बाहर नहीं जाने देना चाहिए। (उसकी बहिर्मुख वृत्ति रोकनी चाहिये।) रात दिन उसे अंतर्मुख बनाये रखना चाहिये। (शारीरिक मुद्रा किसी काम की नहीं, मन की मुद्रा करनी चाहिए) शरीर के छिद्रों को मूँदने से योग सिद्ध नहीं होता मन को मूँदने से योग सिद्ध होता है (क्योंकि योग चित्त-वृत्ति के निरोध को कहते हैं।) जब पवन उलटा जावेगा अर्थात् पाताल जाने के बदले प्राणायाम के द्वारा ब्रह्मांड में प्रवेश करेगा तब काया को ग्रहण करेगा (अर्थात् शरीर वश में होगा। ऐसा यती व्यक्ति काच को भी हाथ से छुएगा तो वह कंचन होकर रहेगा।

यह तन सचमुच सत्य का घर है जिसमें का रुधिर बदल गया है और उसके स्थान पर अमृत भर गया है। अतीत पुरुष परब्रह्म जो सर्वोच्च ज्ञान-पद को छूता है (अर्थात् सर्वोच्च ज्ञान द्वारा जाना जा सकता है) वह भी शरीर के अविचल (अटल) होने पर दिखाई देने लगता है। (इस प्रकार जब योगी) जरा, मृत्यु और काल का भक्षण कर लेता है तब निष्पत्ति योगी का लक्षण समझना चाहिए।

---

१. (घ) त्रिभुवन। २. (घ) पांणी थे। ३. (घ) पातला। ४. (घ) फूल थे ५. (घ) दे। ६. (घ) जांण ७. (घ) दीस। ८. (घ) पवन। ९. (घ) जब। १०. (घ) कूं। ११. (घ) पलटि। १२. (घ) रुध्र भया फिर पीरं भरिया। १३. (घ) पुरिस। १४. (घ) होय सरीरं द्रसै। १५. (घ) जुरामृत। १६. (घ) भषिण। १७. (क) का लक्षिन।

गरड़ भुवंगम समि[1] करि सूता। देव द्वारे रस मरदौं[2] पूता।
मर्दत मर्दत ह्वै है[3] पीठी। ते बात गोरष[4] प्रतषि दीठी ।४।।५०।।

बांधौ बांधौ बछरा पीओ पीओ षीर[5]। कलि अजरावर होइ सरीर[6] ।।टेक
आकास की धेन बछा जाया। ता धेन कै पूछ न पाया[7] ।१।
बारह बछा[8] सोलह गाई। धेन[9] दुहावत[10] रैनि[11] बिहाई ।२।

अब प्राण और कुण्डलिनी (गरुड़ और सर्पिणी) के ब्रह्मांड में सामंजस्य स्थापित हो जाने पर मन सो जाता है तब ब्रह्मरंध्र में पहुँच कर बच्चे का (मन का) मैं रस अमृत के साथ मर्दन करूँगा। इस प्रकार मर्दन करते करते पीठी के समान सूक्ष्म हो जावेगा—इस बात को गोरखनाथ ने प्रत्यक्ष देखा है, उसका उसे अनुभव है। रुद्र=रुध्र, रुधिर ॥ ५० ॥

बछड़े (मूलाधार चक्र में स्थित सूर्य, जो अमृत का शोषण करता रहता है। यह मन के निम्न, चंचल, द्रोही स्वभाव का भी द्योतक है। जब तक सूर्य अमृत का शोषण करता है तभी तक मन की बहिर्मुख प्रवृत्ति रहती है।) को बाँध लो और दूध (अमृत) को स्वयं पी जाओ। इससे कलिकाल में तुम्हारा शरीर अजर और अमर हो जायगा। जब योगाभ्यास द्वारा सहस्रार स्थित चन्द्र और मूलाधार स्थित सूर्य का मेल हो जाता है तब अमृत का शोषण रुक जाता है और साधक उसका स्वयं पान कर सकता है जिससे शरीर अजर अमर हो जाता है। बीज रूप से ब्रह्म का निवास सभी चक्रों में है अतएव एक प्रकार से मूलाधारस्थ सूर्य जो ऊपर बछड़ा कहा गया है उस ब्रह्म-पद अथवा सहस्रारस्थ चंद्र ही से उद्भूत हुआ है। इसलिए वह ब्रह्मरूप या चन्द्ररूप गाय का बछड़ा है। मन का भी मूल अधिष्ठान आत्मा ही है।

आनंद का उपभोग (दूध पीना) आसान हो जायगा। यह चन्द्रस्राव-पान, ब्रह्मानुभूति या समाधि त्रिकुटी या ब्रह्मरंध्र (आकाश) ही में सम्भव है। इस धेनु के न पूँछ है न पाँव। (क्योंकि वह कोई स्थूल वस्तु नहीं।)

---

१. (घ) भुयंगम समि। २. (घ) औदम्र। ३. (घ) मरदत मरदत होई है
४. (घ) श्रीगोरखनाथ। ५. (घ) पीवौ पीवौ षीर···। ६. (घ) अजरांवर होयसरीरं
७. (घ) आकास की धेन त्रिभवन के राया। सींग न पूँछ वाकै पुर नहीं काया। सर्वांगी में ये दो चरण नहीं हैं। (घ) में इनका स्थान टेक के बाद तीसरा है।
८. (घ) बछड़ा। ९. (घ) 'सर्वांगी; धेनि। १०. (घ) दुहांवत। ११. (घ) रैंणि।

अखरा न[1] चरै धेन कट्रा[2] न षाई। पंच ग्वालियां कौं[3] मारण धाई[4] ।३

याही धेन[5] का दूध जु[6] मींठा। पीवै गोरषनाथ गगन[7] बईठा ॥४॥५१॥

आवै संगैं जाइ[8] अकेला। तार्थैं गोरष रांम रमेला ॥ टेक ॥

काया हंस संगि ह्वै आवा[9]। जाता जोगी किनहूँ[10] न पावा[9] ।१।

जीवत जगमैं[11] मूवां[12] मसांणं। प्रांण पुरिस कत[13] कीया पयाणं ।२।

जांमण मरणां वहुरि बिओगी[14]। तार्थैं[15] गोरष भैला[16] जोगी ।३॥५२॥

बारह (कला वाला सूर्य) बछड़ा है और सोलह (कला वाला चन्द्रमा) गाय। (गोरख का वचन है—'बारह कला सूरज, सोलह कला चंद। गुरु जिसका लषावै नहीं, चेला तिसका अंध'-'रोमावली ग्रन्थ')।

इस गाय को दुहाते दुहाते रात बीत गयी (अर्थात् प्रभात हो गया है, अज्ञानांधकार मिट गया है और ज्ञान का प्रभात हो गया है।)

यह गाय अचर है (स्थिर है। ब्रह्मानुभूति चंचल नहीं होती।) पांच ज्ञानेन्द्रिय रूप पाँच ग्वालों को (जो इस ब्रह्मानुभूति अथवा अमृत पान) रूप गाय को अपने अधीन रखना चाहते हैं, वह मारने दौड़ती है। इस धेनु का दूध (अमृत) मीठा होता है। गोरखनाथ उसे आकाश में बैठा बैठा पीता है ॥५१॥

जीवात्मा इस जगत् में (शरीर के) साथ आता है किन्तु जगत से जाता है वह अकेले ही। इसी से गोरख राम में रम रहा है (दुनिया के जंजाल में नहीं फँसा)। काया के साथ तो हंस (आत्मा) आता है, किन्तु जाते हुए इस जोगी (आत्मा) को कोई पाता नहीं अर्थात् कोई यह नहीं जान पाता कि शरीर को छोड़कर आत्मा कहाँ और किस रूप में चला गया है। जीविता-वस्था में जो जगत में था और मरने पर जो श्मशान (बन गया) उस प्राण पुरुष ने कहाँ प्रयाण किया! (इसको कोई नहीं जानता।) इसलिए गोरख-नाथ जोगी हो गया है। और जन्म मरण से विमुक्त हो गया है ॥५२॥

---

† सर्वांगी अंग ११५, पद ५, राग भैरौं।

१. (घ) और सर्वाङ्गी में 'न' नहीं। २. (घ) कचरा। ३. (घ) ग्वालिया कूं ४. (घ) ध्याई। ५. (घ) बन सुरही। ६. (घ) जे। ७. (घ) गिगन। ८ (घ) जाया। ६. (घ) आया⋯पाया। १०. (घ) किनहुं। ११. (घ) जुग। १२. (घ) मूंवां। १३. (घ) कित। १४. (घ) बहोड़ि बिवोगी। १५. (घ) तार्यैं। १६. (घ) भईला।

चेला सब सूता नाथसतगुर जागै। दसवै द्वारि अवधू मधुकरी मांगै ॥टेक
सहजैं षपरा सुषमनि डंडा। पांच संगाती मिलि षेलैं नव षंडा।
गंग जमन मधि आसण बालौ। अनहद नाद काल भै टालौ।
गगन मंडल मैं रमूं अकेला। उरध मुषि बंक नालि अमीरस मेला।
कथंत गोरषनाथ गुरु उपदेसा, मिल्यां संत जन टल्या अंदेसा* ॥५३॥

रे मन हीरै हीरा बेधिला, तौ काया केणैं जाई।
गिगन सिषर चंदा रहिबौ समाई ॥ टेक ॥
सात पांच तीनि नव धरि लै उपाई।
बिपरति करणी करिलै ज्यूं थिर ह्वै बाई ॥

सारा संसार नाथ (परमब्रह्म) का चेला है। ब्रह्मसाक्षात्कार ही ज्ञान प्राप्त करना है। इसलिए नाथ को सद्गुरु कहा है। केवल परब्रह्मनाथ ही जागता है। मनुष्य भी जाग जाते हैं, पर जाग जाने पर वे भी परब्रह्म हो जाते हैं, वे संसार के अंतर्गत नहीं गिने जाते, गुरु चेले का भेद नहीं रह जाता। इसलिए नाथ ही जागते हैं, सारा संसार सोता रहता है। वह नाथ अवधूत दुनिया में भीख माँगने को नहीं फिरता। वह तो ब्रह्मरंध्र में मधुकरी मांगता है, अमृत का रसास्वादन करता है। इस नाथ रूप योगी के पास सहज ज्ञान का तो खप्पर है। सुषुम्णा का दंड है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी विरोधी नहीं हैं, साथी हैं। वे आत्मानुभूति (ब्रह्मज्ञान) में बाधा नहीं डालतीं। उनके साथ मिल कर नाथ नव खंड अर्थात् नव द्वारों में (जो सामान्य लोगों के लिए आत्मानुभूति का मार्ग बंद किये रहते हैं,) खेलते रहते हैं, इन्द्रियाँ भी सुसंस्कृत होकर ब्रह्मानंद में भागी होती हैं। तुम भी उनकी तरह इड़ा और पिंगला के बीच में आसन (जमाये, धुनी) जलाये रहो। अनाहत नाद को सुनकर काल के भय को टालो। (मैं उनके उपदेश से) आकाश मंडल त्रिकुटी या ब्रह्मरंध्र में अकेले रमता रहता हूँ। और ऊर्ध्व मुखी बंकनाल सुषुम्णा से अमृत रस को निकालता (अर्थात् उसका उपभोग करता रहता हूँ। इस प्रकार गोरखनाथ गुरु का दिया हुआ उपदेश दुहराता है। संत जनके मिलने से संशय का नाश हो जाता है ॥ ५३ ॥

हे मन ! जब हीरे ने हीरे को बेध लिया अर्थात् जब आत्मा का परमात्मा

* पद ५३ से ५८ तक केवल (घ) के आधार पर।

बाई जब थिरि है महारस सीभै ।
कोट्यां मधे गुरू देवा गोटा एक बूझै ।१।
कांने रातां डोरौं गाटा किणि मीर मूले[1] ।
सदा अभ्यास रहै जोगी गंगा जमुन कूंले ॥
गंगा जमुना कूंले पैसि करिले असनांनं ।
चांपीला मूले अवधू धरीला धियांनं ।२।
मेर डंड थिरि करै स्यौ सक्ती जोड़ै ।
कोई गुरू आराधीला जो ब्रह्म गांठि छोड़ै ॥

से परिचय हो गया, आत्मा ब्रह्म में मिल गयी तब काया में क्यों या कौन जाय अर्थात् अंतर्मुख वृत्ति हो जाने पर बहिर्मुख वृत्ति नहीं रही। आकाश के शिखर अर्थात् ब्रह्मरंध्र में रहने वाले चंद्रमा में आत्मा को लीन किये रहो। उपाय पूर्वक पाँच तत्त्व, तन्मात्रा या इन्द्रियों के तथा तीन गुणों और नव द्वारों पर अपना अधिकार कर लो। इनके अधिकार में न रहो। विपरीत करणी मुद्रा का अभ्यास करो जिससे वायु स्थिर होगी। वायु के स्थिर होने से महारस (अमृत) सिद्ध होगा। हे गुरुदेव करोड़ों में से किसी एक को उस गुटिका का ज्ञान होता है जिसके प्रयोग से महारस (अमृत-मदिरा) सिद्ध होता है। कानों में अनुरक्त होना अर्थात् दर्शन (मुद्रा) पहनना और डोरों से गठा होना अर्थात् सेली धारण करना ही क्या है प्रभु! मूल वस्तु या योग साधन है? (इन बाहरी बातों में न पड़ कर) योगी को गंगा यमुना के कूल पर अर्थात् इड़ा और पिंगला में (प्राणायाम रूप) स्नान से शुद्ध हो जाना चाहिए। मूलाधार को दबा कर अर्थात् संकोचन कर (—स्थिर होने के लिए यह आवश्यक है—) ध्यान धरो।

मेरु दंड को स्थिर करके शिव और शक्ति को जोड़ो। किसी ऐसे पहुँचे हुए सिद्ध और योगी की आराधना करो जो तुम्हारी ब्रह्म-ग्रंथि को छुड़ा दे। मेरु या

---

१ संभवतः शुद्ध पाठ यह हो—

कांनें रातां डोरौं गाटा किमि वीर भूले ।

कान से अनुरक्त और डोरी से गठे हुए अर्थात् मुद्रा और सेली धारण को ही योग साधन समझकर हे शूर तुम भूले हुए क्यों हो? लाक्षणिक अर्थ में योगी शूर कहलाता है। माया के दलों से उसका युद्ध होता है।

छूटै जब ब्रह्म गांठि भरिये मेर नाला।
सहजैं पांचै चूरा भया पूरण कला।३।
चंदा गोटा फूटा करि लै सूरिज[1] करि लै पाटी।
अह निसि धोबी धोवै त्रिबेणी की घाटी।
तलै एक चंदा गोटा पाटी गोटा आछै।
भौजल नदी पारि उतरीया सिध गोरष भाछै॥ ५४॥

जागौ हो जोगी अध्यातम लागौ जागतड़ा मूल म हारौ म्हारा भाई रे
अंदरि बैठौ अपणौ साहिब, देषै सोधै सकल कमाई रे॥ टेक॥
दासी नैं नारी अरु घर द्वारी, तुम्हे वेस्यां न करम न कीन्यो रे।
बिधवा नारी नो संग करेस्यौ, तौ रोमि रोमि नरक पड़ीस्यो रे।

सुमेरु अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी (नाला) के भर जाने पर अर्थात् इड़ा पिंगला जब सुषुम्णा में समा जाती है, सुषुम्णा मार्ग में प्राणायाम के द्वारा श्वास चला जाता है तब ब्रह्मग्रंथि छूटती है और पांचों तत्व या तन्मात्राएं या ज्ञानेंद्रियाँ चूर्ण हो जाती हैं, उनका हम पर प्रभाव नहीं रह जाता और पूर्ण कला (चन्द्र) प्रकट हो जाता है। सहस्रारस्थ चन्द्र खूंटा है और मूलाधारस्थ सूर्य पाटी जिस पर पटक पटक कर धोबी कपड़े धोता है, साधक माया का मैल छुड़ाता है। ये गोटा पाटी इत्यादि नीचे अर्थात् इसी मनुष्य योनि में, इसी शरीर में हमें उपलब्ध हैं। इस प्रकार सिद्ध गोरख कहता है कि वह संसार रूपी नदी से इस प्रकार पार उतर गया है ॥५४॥

हे योगी जागो अध्यात्म की सिद्धि में लगो। जागृति के मूल को हे मेरे भाई, भूलो मत। हमारे ईश्वर हमारे ही अन्दर बैठे हुए हमारे कामों की जांच पड़ताल करते रहते हैं। हे योगी, दासी, स्त्री, घरबार और मकान रखना योगी के लिए वैसे ही हैं जैसे वेश्याकर्म में प्रवृत्त होना। अगर विधवा नारियों का (—वे ही अधिकतर जोगिन बनती हैं—) संग करोगे तो तुम रोम रोम करके नरक में पड़ जाओगे अर्थात् तुम्हारे रोम रोम में नरक की यन्त्रणा हो जावेगी। एक बूँद शुक्र के लिए स्वार्थवश तुम्हें बालहत्या का सा

---

१ हस्त लेख में 'सूरिज' और 'करि' के बीच में 'करिज' है जो स्पष्ट ही 'सूरिज' के कारण लिखने का प्रमाद है।

बाई जब थिरि ह्वै महारस सीझै।
कोट्यां मधे गुरू देवा गोटा एक बूझै ।१।
कांने रातां डोरौं गाटा किणि भीर मूले[1] ।
सदा अभ्यास रहै जोगी गंगा जमुन कूंले ॥
गंगा जमुना कूंले पैसि करिले असनांनं ।
चांपीला मूले अवधू धरीला धियांनं ।२।
मेर डंड थिरि करै ग्यौ सक्ती जोड़ैं ।
कोई गुरू आराधीला जो ब्रह्म गांठि छोड़ैं ॥

से परिचय हो गया, आत्मा ब्रह्म में मिल गयी तब काया में क्यों या कौन जाय अर्थात् अंतर्मुख वृत्ति हो जाने पर बहिर्मुख वृत्ति नहीं रही। आकाश के शिखर अर्थात् ब्रह्मरंध्र में रहने वाले चंद्रमा में आत्मा को लीन किये रहो। उपाय पूर्वक पाँच तत्त्व, तन्मात्रा या इन्द्रियों के तथा तीन गुणों और नव द्वारों पर अपना अधिकार कर लो। इनके अधिकार में न रहो। विपरीत करणी मुद्रा का अभ्यास करो जिससे वायु स्थिर होगी। वायु के स्थिर होने से महारस (अमृत) सिद्ध होगा। हे गुरुदेव करोड़ों में से किसी एक को उस गुटिका का ज्ञान होता है जिसके प्रयोग से महारस (अमृत-मदिरा) सिद्ध होता है। कानों में अनुरक्त होना अर्थात् दर्शन (मुद्रा) पहनना और डोरों से गठा होना अर्थात् सेली धारण करना ही क्या है प्रभु! मूल वस्तु या योग साधन है? (इन बाहरी बातों में न पड़ कर) योगी को गंगा यमुना के कूल पर अर्थात् इड़ा और पिंगला में (प्राणायाम रूप) स्नान से शुद्ध हो जाना चाहिए। मूलाधार को दबा कर अर्थात् संकोचन कर (—स्थिर होने के लिए यह आवश्यक है—) ध्यान धरो।

मेरु दंड को स्थिर करके शिव और शक्ति को जोड़ो। किसी ऐसे पहुँचे हुए सिद्ध और योगी की आराधना करो जो तुम्हारी ब्रह्म-ग्रंथि को छुड़ा दे। मेरु या

[1] संभवतः शुद्ध पाठ यह हो—

कांनें रातां डोरौं गाटा किमि वीर भूले।

कान से अनुरक्त और डोरी से गठे हुए अर्थात् मुद्रा और सेली धारण को ही योग साधन समझकर हे शूर तुम भूले हुए क्यों हो? लाक्षणिक अर्थ में योगी शूर कहलाता है। माया के बलों से उसका युद्ध होता है।

छूटै जम ब्रह्म गांठि भरिये मेर नाला ।
सहजैं पांचै चूरा भया पूरण कला ।३।
चंदा गोटा घूटा करि लै सूरिज[1] करि लै पाटी ।
अह निसि धोबी धोवै त्रिबेणी की घाटी ।
तलै एक चंदा गोटा पाटी गोटा आछै ।
भौजल नदी पारि उतरीया सिध गोरष भाछै ॥ ५४ ॥

जागौ हो जोगी अध्यातम लागौ जागतड़ा मूल म हारौ म्हारा भाई रे
अंदरि बैठौ अपणौ साहिब, देषै सोधै सकल कमाई रे ॥ टेक ॥
दासी नैं नारी अरु घर द्वारी, तुम्हे वेस्यां न करम न कीज्यो रे ।
बिधवा नारी नौ संग करेस्यौ, तौ रोमि रोमि नरक पड़ोस्यो रे ।

सुमेरु अर्थात् सुषुम्णा नाड़ी (नाला) के भर जाने पर अर्थात् इड़ा पिंगला जब सुषुम्णा में समा जाती है, सुषुम्णा मार्ग में प्राणायाम के द्वारा श्वास चला जाता है तब ब्रह्मग्रंथि छूटती है और पांचों तत्व या तन्मात्राएं या ज्ञानेंद्रियाँ चूर्ण हो जाती हैं, उनका हम पर प्रभाव नहीं रह जाता और पूर्ण कला (चन्द्र) प्रकट हो जाता है । सहस्रारस्थ चन्द्र खूंटा है और मूलाधारस्थ सूर्य पाटी जिस पर पटक पटक कर धोबी कपड़े धोता है, साधक माया का मैल छुड़ाता है । ये गोटा पाटी इत्यादि नीचे अर्थात् इसी मनुष्य योनि में, इसी शरीर में हमें उपलब्ध हैं । इस प्रकार सिद्ध गोरख कहता है कि वह संसार रूपी नदी से इस प्रकार पार उतर गया है ॥५४॥

हे योगी जागो अध्यात्म की सिद्धि में लगो । जागृति के मूल को हे मेरे भाई, भूलो मत । हमारे ईश्वर हमारे ही अन्दर बैठे हुए हमारे कामों की जांच पड़ताल करते रहते हैं । हे योगी, दासी, स्त्री, घरबार और मकान रखना योगी के लिए वैसे ही हैं जैसे वेश्याकर्म में प्रवृत्त होना । अगर विधवा नारियों का (—वे ही अधिकतर जोगिन बनती हैं—) संग करोगे तो तुम रोम रोम करके नरक में पड़ जाओगे अर्थात् तुम्हारे रोम रोम में नरक की यन्त्रणा हो जावेगी । एक बूँद शुक्र के लिए स्वार्थवश तुम्हें बालहत्या का सा

---

१ हस्त लेख में 'सूरिज' और 'करि' के बीच में 'करिज' है जो स्पष्ट ही 'सूरिज' के कारण लिखने का प्रमाद है ।

एक बूँदि के कारणि आप सवारथि, तुम्हें बाल हत्या फल लेस्यौ रे।
नर नारी दोन्यूं नरकि पड़िस्यौ, घाणी घालि पड़ेस्यौ रे।
अंजनि भूला निरंजन चूका तुम्हे लीयां सालि म बालौ रे।
मछिंद्र प्रसादै जती गोरष बोल्या जीती सारि न हारौ रे ॥५५॥

चलि रे अबिला कोयल मौरी, धरती उलटि गगन कूँ दौरी ॥टेक॥
गईयां बपड़ी सिंघ नै घेरै। मृतक पसू सूद्र कूं उचरै।
काटै ससत्र पूजै देव। भूप करै करसा की सेव।

फल (दंड) मिलेगा। नर नारी दोनों नरक में पड़ोगे और एक घान में डाले जाओगे। (अर्थात् दोनों को एक सा दंड मिलेगा। एक बार में जितनी चीज तय्यार की जाती है जैसे चने भूजने, धान कूटने इत्यादि में उसको एक घान कहते हैं।) माया में भूल कर, निरंजन को त्याग कर, प्राप्त की हुई फसल (धान) को न जला डाला। मत्स्येन्द्र के प्रसाद से यती गोरखनाथ कहते हैं कि जीती हुई बाजी को न हारो ॥५५॥

आम माया है। जब आम (माया) फूलता-फलता है तब कोयल (मनसा या मनोवृत्ति) आनंद के लिए आम्र वृक्ष के पास जाती है किन्तु जब ज्ञानोदय होता है तब यह परिस्थिति उलट जाती है। ज्ञान के उदय होने पर मन की बहिर्मुख वृत्ति रुक जाती है और आनंद को बाहर खोजने के बदले वह उसे अपने ही में प्राप्त करता है। वह स्वयं आनन्द का केन्द्र हो जाता है क्योंकि अधिष्ठान जिस पर उपाधियों के आरोप से मन-मनसा बनी है वह आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही है। यही कोयल का बौरना है। अब ब्रह्मानंदोपभोगी की मायिक प्रवृत्ति (आम्र भी) मन के इस पुष्पित होने से, ब्रह्मानुभव से, आनन्द प्राप्त करती है। गगन, आकाश, शून्य ही से यह सारी सृष्टि उत्पन्न होती है और शून्य में ही यह ब्रह्मानुभवी के लिए विलीन हो जाती है। धरती या सृष्टि का प्रतीक कुंडलिनी शक्ति है जिसका निवास मणिपूर में है। योगाभ्यास से कुंडलिनी जागरित होकर ब्रह्मरंध्र की ओर उठती है। अज्ञानी मनुष्य की बहिर्मुख अर्थात प्रवृत्ति ही सिंह है जो अहंकार आदि पशुओं के द्वारा उसकी शुद्ध सच्ची प्रकृति (गाय) को घेरे हुए रहता है। परन्तु अब साधना सफल होने पर यह सिंह रूप मायिक प्रवृत्ति निर्बल पड़ गयी है और आध्यात्मिकता के घेरे में बंध गई है, उसका पराजय हो गया है। जिन्हें आत्मानुभूति नहीं वे

तलि करि ढकणी ऊपरि झाल । न छीजैगा महारस बंचैगा काल ।
दीपक वालि उजाला कीया । गोरष कै सिरि परवत दीया ॥२६॥

सांभलि राजा बोल्या रे अवधू । सुणौ अनोपम बांणी जी ।
निरगुण नारी सूं नेह करंतां । झबकै रैणि विहांणी जी ॥टेक॥
डाल न मूल पत्र नहिं छाया । विण जल पिगुला सींचै जी ।
विण ही मढीयां मंदला बाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।१।

मृतक पशु के समान हैं। यमराज (शूद्र) उन्हें घसीटते ले जाता है किंतु अब वह मृतक पशु अपने भीतर पशुत्व (अहंकार) को काट कर जीवन्मृत (जीवन्मुक्ति) होकर यमराज को घसीटे ले जा रहा है; यमराज उसके बन्धन में है, उसका कुछ नहीं कर सकता। ब्रह्मानुभूति होने पर किसी देवता की पूजा की आवश्यकता नहीं रहती बल्कि सब लौकिक देवता उसकी पूजा करते हैं क्योंकि ब्रह्म सबसे बड़ा है और ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही है। अब बलि पशुओं को काटने की आवश्यकता नहीं रह गई प्रत्युत शस्त्र ही काटे गये हैं, बेकाम हो गये हैं। ढक्कन नीचे कर बर्तन को औंधा करने से तो पात्र की वस्तु गिर जावेगी। और उलटे पात्र के ऊपर आग के बलते रहने से भी कोई व्यञ्जन सिद्ध नहीं हो सकता। परंतु यहाँ विशेष परिस्थिति है। यहाँ विपरीतकरणी मुद्रा के द्वारा सिर (ढक्कन) को नीचे और ज्वाला (कुंडलिनी) को ऊपर करने का उपदेश दिया गया है। इससे महारस (अमृत) का क्षय होना रुक जायगा और काल वञ्चित हो जावेगा। नाथों की विद्या इसीलिये कालवंचिनी विद्या कही जाती है। इस प्रकार ज्योति (ब्रह्म) को दीप्त कर गोरख ने ज्ञान का प्रकाश किया। पर इससे उस के सिर का भार हलका होने के बदले बढ़ गया। उसके सिर पर पहाड़ ही रख दिया गया, क्योंकि उसे जान पड़ा कि मैं स्वयं सृष्टि का मूल कारण परब्रह्म हूँ और स्वयं मुक्त हो जाने पर मुझे अब समस्त संसार को मुक्त करना है ॥२६॥

जोगी ने उपदेश दिया, हे राजा सँभलो। हमारा अनुपम उपदेश सुनो। तुमने तो गुणहीन (निर्गुण यहाँ ब्रह्म-परक नहीं है) स्त्री माया से प्रेम कर सोते ही रात (जीवन) बिता दी है। माया ऐसे वृक्ष के समान मिथ्या है जिसके न शाखा है, न जड़ है, न पत्ते हैं, न छाया है, सींचता भी उसे पंगु है और वह भी बिना जल के। फिर भी लोग उसके फल के लिये लालायित रहते

चींट्यां परबत ढोल्या रे अवधू। गायां बाघ बिडारयाजी।
मुसलै समदां लहरि मनाई, मृघां चीता मारया जी।२।
ऊफड़ मारगि जाता रे अवधू, गुर विण नहीं प्रकासा जी।
जीत्या गोरष अब नहीं हारै, समझि ररालै पासा जी।।५७।।

तुझि परि वारी हो अणघड़ीया देवा।
घड़ी मूरति कूं सब कोई सेवै, ताहि न जांणैं भेवा।।टेक।।
तू अविनासी आदू कहीए, मोहि भरोसा पड़ीया।
सब संसार घड़्या है तेरा, तू किनहूँ नहिं घड़ीया।१।
दस औतार औतिरीया तिरिया, बै पणि राम न होई।
कमाई अपणी उनहूँ पाई, करता औरै कोई।२।
तूं पूरण ब्रह्म पुरष प्रिथमी का, सूरति मूरति सारा।
श्रवणां सुण्यां न नैनां देष्या, तेरा घड़णँ हारा।३।
तूं तौं आप आप तैं हूवा, तूं देष्यां उजियारा।
गोरष कहै गुरू कै सबदां तूं हीं घड़नै हारा।४।। ५८।।*

हैं। यह ऐसा मृदंग है जिसके दोनों ओर के परत मढ़े नहीं हैं। उसका सुख-विलास वैसे ही मिथ्या है जैसे बिना मढ़े मृदंग की ध्वनि। इस प्रकार लोग माया पर रीझते हैं। हे अवधू, इस प्रकार चींटी (तुच्छ माया) ने पर्वत (परमोच्च आत्मा) को गिरा डाला। गाय (निर्बल माया) ने बाघ (सबल आत्मा) की दुर्दशा कर दी है। मूसे (तुच्छ माया) ने समुद्र की लहरों को मना लिया। अपनी इच्छा के अनुकूल बना दिया। मृगों (इंद्रियों) ने चीते (आत्म तत्त्व) को मार डाला है। इंद्रियाँ बलवती हो रही हैं और आत्मा 'नहीं' जैसी हो रही है। माया के वशीभूत लोग जा तो रहे हैं उच्च साधक मार्ग से पर गुरु के बिना उन्हें उजाला नहीं मिलता, वे अंधकार ही में रह जाते हैं। गोरखनाथ तो अब समझ करके पांसे डालेगा, जीती हुई बाजी को हारेगा नहीं। मुसलै=मूस+ला।

---

* दादू का एक पद इससे थोड़ा बहुत मिलता है, देखो 'दादूदयाल की बानी', पृ० ८२, पद ५१; सर्वांगी, अंग ४२, पद ७।

[राग रामगरी]

मन रे राजा राम होइलै नृदंद, मूलै कमलै साजि लै रविचंद ॥टेक॥
अनहद भौरौ भवैं त्रुवेणीं कै घाट,
पीयलै महारस फाटिलै कपाट ।१।
चंदा करिले पूटा, सूरजि करिलै पाट,
नित उठ धोवी धोवै, त्रुवेणीं के घाट ।२।
भरिलै नाड़ी षोड़ी, पूरिलै बंक नालि ।
बदंत गोरषनाथ अवधू, इम उतरिबौ पारि। ३ ॥५६॥

गोरष[1] बालूड़ा बोलै[2] सतगुरु बांणीं रे ।
जीवता न परण्यां तेन्हैं[3] अगनि[4] न पांणीं ॥ टेक ॥
षीलो दूझै भैंसि बिरोलै, सासूड़ी पालनड़ै[5] बहुड़ी हिंडोलै[6] ।१।

हे मन परमब्रह्म होकर निर्द्वन्द्व हो जा । मूलाधार चक्र में रहनेवाले सूर्य को सहस्त्रार चंद्रमा में सजा अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा का योग कर । त्रिकुटी में अनाहत रूप भ्रमर गुंजार कर रहा है । वहाँ ब्रह्मरंध्र के कपाट खोल कर महारस अमृत का पान कर । चन्द्रमा को तो पना ले पीटने की लकड़ी और सूर्य को वह तख्ता या शिला जिस पर धोबी कपड़े पीटता है । इस प्रकार धोबी (साधक) नित्य प्रति उठकर कपड़े धोवे अर्थात् जीवात्मा का मैल छुड़ावे, माया को दूर करे । सढ़ोष (खोड़ी) नाड़ियों को वायु से भरकर शुद्ध करते हुए बंक नालि सुषुम्ना को वायु से भरो । गोरखनाथ कहते हैं कि हे अवधूत इस प्रकार पार उतरो ॥५६॥

बालक गोरख सद्गुरु की (सद्गुरु से प्राप्त की हुई) वाणी बोलता है । (गोरख ने) जीते को (परमब्रह्म तत्व को जो सब जीवों में सार है) परिणीत किया है, (उससे गठजोरी की है ।) इसी से (इसके लिए) न आग है, न पानी (वह अग्निभय और जलभय दोनों से बाहर हो गया है ।)

(पहले माया की कीली पर बँधी हुई मनसा रूप भैंस ही लौकिक आनन्द

---

* केवल (क) में ।

१. (क) गोर्ष । २. (क) में 'बोलै' नहीं । ३. (घ) तानैं । ४. (क) अग्नि
५. (घ) पालयौं । ६. (घ) बहूड़ी हीडोलै ।

कोयल मोरी आंबो[1] बास्यौ[2] गगन मछलड़ी[3] बगलौ[4] ग्रास्यौ[5] ।२।
करसन पाकु[6] रषवालू षाधू[7], चरि गया मृघला पारधी बांधू[8] ।३।
सींगी नांदै जोगी पूरा, गोरषनाथ परन्यां[9] तिहां[10] चंद न सूरा ॥६०॥

रूप दूध देती जान पड़ती थी।) किंतु अब माया रुपी कोली का तामसिक रूप हट गया है और वह सात्विक रूप धारण कर विद्या रूप दूध देने लगी है, जिसमें से मनसा अथवा बुद्धि रूप भैंस उसे बिलो रही है, (तथा तत्व या ब्रह्म रूप मक्खन निकाल रही है।) माया सास है। जहाँ तक व्यावहारिक अथवा मायिक क्षेत्र का सम्बन्ध है जीव माया का पुत्र है। उसने सहजानुभूति अथवा ब्रह्मानुभूति से परिणय कर लिया है। इसलिए वह सास (माया) की बहू है। इस ब्रह्मानुभूति के पूर्ण रूप से प्रकट होने पर माया वैसी ही निर्बल पड़ जाती है जैसे बच्चा। नाथयोग के अनुसार ब्रह्मानुभूति (अमृत पान) शरीर को भी उसी तरह पुष्ट करती है जैसे माता बच्चे को। यही बहू (ब्रह्मानुभूति) का सास को पालने में हिंडोला खिलाना है। मनसा (कोयल) जो पहले माया (आम) के बौरने, पुष्पित होने पर आनन्द मनाती थी अब अन्तर्मुख वृत्ति हो जाने के कारण स्वयं ब्रह्मानुभूति से पुष्पित तथा सुरभित है, और साधक का मायिक अस्तित्व भी उस आनन्द में मग्न हो रहा है। यही आम का बासना; बोलो बोलना है। आकाश में पहुँची हुई मछली (चेतना) ने जो पहले जल प्रकृति के अन्तर्गत थी बगुले अर्थात् मायिक अहंकार को निगल लिया है जो पहले चेतना या आत्मा को निगले हुए था। समाधि ही योगी की पकी खेती है। इसमें न घुसने देनेवाला अहङ्कार इत्यादि हैं जो समाधि अवस्था के सिद्ध हो जाने पर नष्ट हो गया है। इस प्रकार खेती ने रखनेवाले को खा डाला। चरने वाले मृग (मन अथवा कर्मेंद्रियाँ) ने जो पहले इतना चंचल था या थे अब अनुभव हो जाने पर अपनी चंचलता को छोड़कर पारधि (काल) को भी बाँध लिया है। अब तक तो जोगी सींगी नाद पूरता था अब सींगीनाद (अर्थात् अनाहत नाद) जोगी को पूर रहा है, पूर्ण कर रहा है। पहले ब्रह्मानुभूति के बिना वह खोखला था, अब अनाहत नाद के साथ आनेवाली अनुभूति से पूर्ण हो गया है। गोरखनाथ ने जहाँ अर्थात् परम ज्योति के साथ, स्नेह बंधन है, वहाँ न सूर्य है, न चन्द्रमा ॥६०॥

१. (घ) आबिलो। २. (क) बास्यौ। ३. (घ) गिगन की मछली। ४. (घ) बुगलौ। ५. (घ) गरास्यौ। ६. (घ) करसण पाको। ७. (घ) रषवाली षावै। ८. (घ) बाधौ। ९. (क) प्रन्यां। १०. (घ) तहां।

[आरती]

नाथ निरंजन आरती गाऊं । गुरदयाल अग्यां जो पाऊं ॥टेक॥
जहां अनंत सिधां मिलि आरती गाई । तहां जम की बाव न नेड़ी आई
जहां जोगेसुर हरि कूं ध्यांवैं । चंद सूर तहां सीस नवांवैं ।
मछिंद्र प्रसादे जती गोरषनाथ आरती गावै ।
नूर झिलमिलि दीसै तहां अनत न आवै ॥६१॥*

नाथ निरंजन आरती साजै । गुर के सबदूं झालरि बाजै ॥ टेक ॥
अनहद नाद गगन मैं गाजै । परम जोति तहां आप बिराजै ॥
दीपक जोति अषंडत बाती । परम जाति जगै दिन राती ।
सकल भवन उजियारा होई । देव निरंजन और न कोई ।
अनत कला जाकै पार न पावै । संष मृदंग धुनि बेनि बजावै ॥
स्वांति बूंद ले कलस बंदाऊं । निरति सुरति ले पहुप चढ़ांऊँ ॥

यदि दयालु गुरु की आज्ञा पाऊँ तो मैं परब्रह्म निरंजननाथ की आरती गाऊँ । जहाँ अनन्त सिद्ध ईश्वर-प्रणिधान में लगे रहते हैं, वहाँ यम की हवा भी निकट नहीं आती । जहाँ योगीश्वर ध्यान में मग्न रहते हैं वहाँ चंद्रमा और सूर्य भी शीश नवाते हैं, अर्थात् ये दोनों भी ईश्वर के वश में हैं और अंततः दोनों चन्द्र और सूर्य नाड़ी अथवा अमृतस्रावक चंद्र और मूलाधारस्थ अमृत-शोषक सूर्य दोनों योगी के वश में हो जाते हैं। मत्स्येन्द्र के प्रसाद से गोरखनाथ आरती गाता है । उसे परमब्रह्म का झिलमिल प्रकाश दिखायी देता है । उस अवस्था में वह एक रस स्थित है, अन्यत्र (दूसरी अवस्था में) नहीं आता-जाता ॥६१॥

नाथ निरंजन परब्रह्म की आरती सजते हैं । गुरु के शब्द रूप झाँझ बज रहे हैं । ब्रह्मरंध्र या गगन में अनाहत नाद बज रहा है । वहीं ज्योति स्वरूप निरंजन ब्रह्म विराजमान हैं । वह अखंड बत्तियों की ज्योति है, कभी बुझ नहीं सकती, रात दिन जलती रहती है । सब लोकों में उससे उजाला होता रहता है । (उस प्रकाश में दिखाई देता है कि) निरंजन ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई

---

*पद ६१ और ६२ केवल (घ) के आधार पर ।

निज तत नांव अमूरति मूरति । सब देवां सिरि उदबुदि सुरति ॥
आदिनाथ नातीं मछेंद्र ना पूता । आरती करै गोरष औधूता ॥६२॥

नहीं है ! उसकी कलाएँ अनंत हैं । उसका कोई पार नहीं पा सकता । वहाँ शंख, मृदंग, बांसुरी आदि की ध्वनि हो रही है । स्वाति बूँद अर्थात् मुक्ता रूप ज्ञान से मैं इस कलश रूपी शरीर को पूर्ण कर बंदना करके उसे चढ़ाऊँ । निरति सुरति के फूल अर्पित करूँ । उस निरञ्जन की मूर्ति अमूर्त है, अर्थात् उसकी मूर्ति नहीं उसका निज तत्व नाम है । वह ज्ञानमूर्ति सब देवताओं में श्रेष्ठ है । इस प्रकार आदिनाथ का नाती-शिष्य और मत्स्येंद्रनाथ का पुत्र-शिष्य गोरख अवधूत आरती करता है ।

सिष्या दरसन

ॐ[1]। अविगत[8] उतपतते[2] ॐ। ॐ उतपतते[3] आकासं। आकासं उतपतते[2] बाई। बाई उतपतते[2] तेज[4]। तेज[4] उतपतते[2] तुया। तुया उतपतते[2] मही। मही रूप देवी का रंग। जल रूप ब्रह्मा का बरण। तेज रूप बिश्न[5] की माया[6]। पवन रूप ईश्वर की काया[7]। आकास रूप नाद की छाया। नाद रूप अविगत[8] उपाया। सुनि[9] निरंजन भूचर देव। भूचर का नहीं[10] पाया भेव। अगम अगोचर। अनंत तरवर। अनन्त साषा। ससंवेद[11] परम भेद। भेदां निभेद[12]। आत्मां[13] ग्यांन ब्रह्म-ग्यांन[14]। षेचरी मुंद्रा। भूचरी सिधि। चाचरी निधि। अगोचरी बुधि। उनमनीं[15] अवस्था। अनभै[16] करामाति। अतीत देवता। अविगत[8] पूजा। अतीत आश्रम[17]। अध्यातम बिद्या[18]। गगन आसन। अमृत[19] प्याला। मनसा माई[20]। पंचभू चेला। मन रावल, पवन भोगी। दसवें[21] द्वारि प्राणनाथ जोगी। सहजि[22] आंवणां। अवधू संजमे[23] जांणां[24]। सुषमनां नदी। निहिकेवल[25] जल। त्रिवेणीं सनांन[26]। त्रिकाल संध्या। अजपा गायत्री। अनूपम[27] मंत्र।

सिष्या दशेन = शिक्षा दर्शन। (क), (घ) और (अ) के आधार पर।

१. (घ) में ॐ नहीं। २. (घ) ॐ उतपतिते। ३. (घ) ॐ उत्पतित्ते; (क) में नहीं। ४. (क) रवी। ५. विष्न। ६. (क) काया। ७. (क) माया। ८. (घ) अवगति। ९. (घ) सुन। १०. (घ) निहि। ११. (घ) सतमवेद। १२. (घ) भेदानिभेद। १३. (घ) आत्मा। १४. (घ) गियांन। १५. (घ) उनमनी। १६. (घ) अभै। १७. (क) आश्रम। १८. (क) बांया। १९. (घ) अमृत। २०. (घ) माया। २१. (घ) दसवें। २२. (घ) सहजैं। २३. (घ) संजम। २४. (अ) में 'अवधू संजमें जाणां' का अनुवाद नहीं है। २५. (घ) न्यहि केवल। २६. (घ) स्यान। २७. (घ) अनूंपम।

निरंजन माला, निराकार ज्वाला। कवल गरजै सबद उजियाला[१]।
छसै सहंस इकवीस[२] मेला। नष सष पवन ले[३] बन्धिबा भेला।
नाद अनाहद निहसबद बांणीं[४]। जीव थैं सीव होइबा प्रांणीं[५]।
देही बदेही[६] अबिचल थीरं। रुंध्र उलटि फिरि होइबा षीरं[७]।
दिष्टि बिदिष्ट[८] जोइबा नैनं। पवन[९] निरंजन बोलिबा बैनं।
सबद निहसबद तब होइबा[१०]थूलं। आदिका आदि, सो होइबा[११]मूलं।
नाद ब्यंद[१२]गांठिबा पवन अकासं[१३]। पड़ै[१४] घट न होइबा[१५]नासं।
धरणि गगन[१६]परि माघ न कोइ[१७]। जंत्र चलै तहं काल न होई[१८]।
अषंड मढी तहां जोतिबा[१९]ध्यांन[२०], जुग जुग[२०]ताली, कथिबा ग्यांनं[२१]
मूल चक्र तहां प्रगटै ज्यंदू[२२], पलटै काया थिर होइ कंधू[२३]।
मूत्र बन्ध बज्र[२४]कछोटा पकड़िबा थीरं, सत उडियांणीं, बंधिबा बीरं।
जत जगोटा[२५] आसण पूरं, अमृत धारा कमंडल होइबा सूरं[२६]।
कुंभ[२७]पात्रे पीयबा नीरं, चेतनां विभूति[२८] अंगि[२९] सरीरं।

छसै सहंस इकवीस मेला=२१६०० सांसें जो योगियों के अनुसार दिन भर में आती जाती हैं। भेला=बेड़ा, नौका, जहाज़। रुध्र=रुधिर, रक्त। सीव=शिव, कैवल्यावस्था या ब्रह्म। गांठिबा=ग्रथित करना चाहिए। माघ=(अ) मार्ग, सम्भवतः मांग, 'कौन जाता?' इसके उत्तर की मांग, रोक। जोतिबा=जोतना, जोड़ना, लगाना चाहिए; (अ) योजनीयं। बज्र कछोटा=बज्रकोपीन। उड़ियाणी=उड्डीयान बंध। कुम्भ=कुंभक, केवल कुंभक।

---

१. यह चरण (घ) में नहीं है। २. (घ) यकु ईस करि। ३. (घ) में नहीं है। ४. (घ) निहि सबद बांणी। ५. (घ) होयबा प्रांणी। ६. (क) बधई। ७. (घ) रुध्र पलटि करि होयबा षीरे; (क) रुध्र उलटि फिरिबा षीरं। ८. (क) दृष्टि विवदृष्टि तक, ९. (अ) मन। १०. (घ) सब दिनसबद होयबा। ११. (घ) आदि का अनादि होयबा। १२. (घ) विंद। १३. (घ) गगन आकासं। १४ (घ) ना पड़ै। १५. (घ) नां होयबा। १६. (घ) गगनि। १७. (क) होई। १८. (क) कोई। १९. (घ) जोयबा। २०. (घ) ध्यांन···ग्यांन। २१ (घ) जुगि जुगि। २२. (घ) पलटैजिंदु २३. (घ) थिरि हुै कंधु। २४. (घ) जब र। २५. (घ) जोगोटा। २६. (घ) कमंडल होयबा सूर। २७. (घ) कुंभं। २८. (क) बिसूति (?) २९. (घ) अंग।

अजर कथा नहीं बाद विवादं । अनाहद सींगी वाइबा[1] नादं ।
संतोष तिलक तहां[2]पद नृवांणं[3] । ब्रह्म कवल[4]टोपीं पहरिबा त्रांणं[5] ।
मन बैराग[6] मुंद्रा जोइ[7] रूपं । बदंत गोरष ए[8] तत अनूपं ।
दया दंड[9]तहाँ तृकुटी ध्यांनं । छिमा[10]लाठी टेकिबा × मांनं ।
चंद सूर भाटी उजेबा धारं[11] । झुरै[12] गगन तहां होइ[13] मतिवारं ।
सो जोग्यंद्र[14]जोग जुगता अविचल[15]सारं । छछंद मुक्ता[16]भै भ्रमपारं ।
दोइ[17]पछि※ ब्रह्म बिचवा सूलं[18] । गुर बचन[19]अनाहद मांनिबा मूलं[20]

ब्रह्म कवल = सहस्त्रार ।

मुद्रा जोइ रूपं = रूप का दर्शन (ज्योति दर्शन) ही मुद्रा है ।

उजेबा = (अ)–प्रज्वाजनीयं (यथावत्, प्रज्वालनीयं ।) संभवतः भबके से उठा कर चुआना चाहिये । उझरना (उत्सरण) । शराब उतारने में पहले वाष्प-प्रक्रिया से मदिरा ऊपर उठती हैं और तब फिर नली के द्वारा दूसरे पात्र में गिरती है ।

जरै ··भ्रम···पारं = इस प्रकार आकाश में झरते हुए महारस अमृत रूप मदिरा) का पान कर जो मतवाला हो जाता है, वह योग से युक्त अर्थात् पूर्ण योगीन्द्र है । वह सार (अनुभव अर्थात् आत्मा में अचल रहता है) और भय और भ्रम को पारकर स्वच्छन्द मुक्त (विचरण करता है ।)

दोइ पछि···मूल = ब्रह्मांड द्वैत पक्षी है, द्वैत के ऊपर अवलम्बित है, इसे दुःख जानो । गुरु की शिक्षा के आधार पर अनाहत नाद को उसका मूल मानो अथवा जैसा संस्कृत अनुवाद कहता है, गुरु वचन को अनाहत मानो ।

निरालं = निराले या निरपेक्ष ।

---

१. (घ) बजायबा । २. (घ) में 'तहां' नहीं । ३. (क) नृवांणं; (घ) निरवांण । ४. (घ) कंवल । ५. (घ) त्राणं; (क) प्रांणं । ६. (घ) बैरागी । ७. (घ) जोयवा । ८. (घ) गोरषनाथ; (क) में 'ए' नहीं है । ९. (क) डंड । १०. (क) क्षिमां । ११. (घ) जायबा । १२. (घ) झरै । १३. (घ) हुँ । १४. (घ) ते जोगी; (क) सो जोग्यंद्र । १५. (क) अवचल । १६. (घ) छछंम मुक्ता १७. (घ) दोय । १८. (घ) वंदिबा पूरं । १९. (घ) सबद । २०. (घ) सूरं ।

× (अ) त्यागः । जिस प्रति से संस्कृत अनुवाद हुआ है संभवतः उसमें 'त्याभिया' या इसी प्रकार का कोई पाठ रहा हो । ※ (अ) वृक्षो ।

अनंत[1] सिधा तहां सारमसारं । निश्चल[2] थीरं तब होइ[3] निरालं ।
अजाचीक भिख्या[4] आइबि[5] थानं । गुरू मछींद्रनाथ नी सिछ्या[6] पहरिबा कानं
अकलप डीबी झोली निरासं । सजीवन मात्रा बीरजनासं ।
एकांति[7] रहीबा अवधू बेधिबा थूलं[8] । नहिं होवै आवागमन का मूलं ।
बारह[9] कला देवी सोलह[9] कला देवं । सुषमनां नारी[10] बंधिबा भेवं ।
नौ[11] सै जोगणीं[12] चालिबा[13] साथं । बुरिज[14] बहतरि[15] गाइबा[16] नाथं ।
नव षंड प्रिथमीं[17] मांगिबा भिखा[18] । त्रिलोकमधे न होइबी बिप्यष्या[19] ।
चवदह[20] ब्रह्मंड तहां जोइबा[21] द्वार[22] । षट दरसन ए पंथ तै सारं ।

अजाचीक = अयाचित ।

गुरू ''' कान = (कानों में मुद्रा पहरने की आवश्यकता नहीं ।) गुरु मत्स्येन्द्र नाथ की शिक्षा को कानों में पहनो ।

निश्चिंतता ही छप्पर है, किसी से आशा न रखना ही (नैराश्य ही) झोली है । ऊर्ध्वरेता होकर ब्रह्मरंध्र में वीर्य को खींचना ही संजीवन बूटी की मात्रा है ।

एकांत में रहना चाहिए । हे अवधूत स्थूल माया को वेधना चाहिये अर्थात् उसका रहस्य जानना चाहिये । ऐसा करने से आवागमन का मूल नष्ट हो जाता है, देवी (कुंडलिनी शक्ति जिस के साथ सूर्य का संपर्क है) की बारह कलाएँ और देव (शिव) की सोलह (चंद्र) कलाएँ हैं जिन को सुषुम्णा के द्वारा वश में करके उनका रहस्य जानना चाहिए । इस प्रकार नौ सौ जोगिनियों (नव नाड़ियों)

---

१. (घ) अनत । २. (घ) निहचल । ३. (घ) में 'तब होइ' के स्थान पर 'तत' । ४. (घ) भिछ्या । ५. (घ) आयबा । ६. (घ) मछिंद्रनाथ सिछ्या; (क) मछिन्द्रनाथनी भिष्या । ७. (घ) यकंतरि । ८. (घ) बंचिबा सूलं । ९. (घ) बाराह, सोलह । १०. (घ) नाड़ी । ११. (घ) नव । १२. (घ) जोगणी । १३. (घ) चलायबा १४. (घ) वरजि । १५. (घ) बहोतरि । १६. (घ) बजायबा । १७. (क) पृथमीं; (घ) प्रिथमी १८. (घ) भिछ्या । १९. (घ) होयगी उपछ्या । यह पंक्ति (अ) में अनुवादित नहीं है । २०. (घ) चौदा । २१. (घ) जोयबा । २२. (क) घारं ।

द्वार बहनीं[1]ज्यूं होइया[2]भेवं[3] । असंष दल पंषुडी गगन करि सेवं ।
बदंत गोरष[4]अविचल जापं[5] । लिपै नहीं तहाँ पुंन[6] न पापं[5],
सुंनि[7] ध्यांन सोलह कला सपूरण माला । आपण स्वंभू[8] श्रीगोरष[9] बाला ।

इती श्रीगोर्ष सिष्या पढ़ंते गुणंते, कथंते करंते, पापे न लिपंत, पुन्ने न हारंते, ॐ नमो सिवाइ, ॐ नमो सिवाइ, गुरु मछींद्रनाथ पादुका नमस्तते । एवं सिद्या दरसण जोग ग्रंथ शास्त्र संपूरण समाप्तः ।

को साथ चलाओ । बहत्तर कुजं अर्थात् बहत्तर (या बहत्तर कोटि) नाड़ियाँ नाथ ही का गान करेंगी । नौ खड पृथ्वी में भिक्षा माँगनी चाहिए । अर्थात् नवद्वारों पर अपना अधिकार रखना चाहिए । (इस प्रकार) त्रैलोक्य अथवा त्रिकुटी में तुम्हारी विपक्षता (पाठांतर के अनुसार उपेक्षा) न होगी, ब्रह्मरंध्र में प्रवेश पाने में रोक न होगी । वहीं चौदह ब्रह्मांडों का द्वार (अधिष्ठान) देखना चाहिये । क्योंकि षट दर्शनों से इस पंथ ने सार भाग ले लिया है । फिर जैसे लकड़ी में से गुप्त अग्नि प्रकट रूप धारण कर लेती है उसी प्रकार तुम में गुप्त ब्रह्मत्व भी प्रकट हो जायगा । असंख्य दल कमल की वहाँ सेवा करनी चाहिए । वहाँ गोरख स्थिर जाप जप रहा है, वहाँ पुण्य और पाप नहीं छूते । शून्य में सोलह कला की संपूर्ण माला वाले चंद्र का ध्यान कर (अमृत पान से) योग सिद्धि द्वारा बालक रूप प्राप्त गोरख स्वयं शम्भु हो गया है ।

---

१. (घ) बहनी । २. (घ) होयबा । ३. (घ) भेव । ४. (घ) गोरषनाथ । ५. (घ) जाप ''पाप । ६. (घ) पुनि । ७. (घ) सुनि । ८. (घ) आपन सिंभू । ९. (क) श्री गोर्ष । (घ) श्रीगोरषनाथ ।

प्रांण संकली

प्रथमे प्रणऊं गुरु के पाया । जिन मोहि आतम ब्रह्म लषाया ।
सत गुरु सबद कह्यां तैं बूझ्या । तृहूँ लोक दीपक मनि सूझ्या ॥१॥
पाप पुंन करम का बासा । मोष मुक्ति चेतहु हरि पासा ।
जोग जुक्त जब पाओ ग्याना । काया षोजौ पद न्रबाना ॥२॥
सप्त दीप नव षंड ब्रह्मण्डा । धरती आकाश देवा रविचंदा ।
तजिबा तिहुँ लोक निवासा । तहां निरञ्जन जोति प्रकासा ॥३॥
दिवस न रात्र बरषे न मासा । गरजै मेघ गगन कविलासा ।
अगम सुगम गढ़ रच्या बिनांणीं । अगनि पवन षेह[1] जल सांणीं ॥४॥
तीस पौलि तेरह प्रवांणीं । तीनि गुप्त दस प्रकट जांणीं ।
नौं नाटिका कोटड़ी बहत्तरि । चोर पचास पचीस पंच घरि ॥५॥

तृहूँ...सूझ्या=ज्ञान रूप मणि-दीप के प्राप्त होने से तीनों लोकों का ज्ञान होने लगता है ॥१॥

निर्वाण पद की खोज शरीर ही में करनी चाहिए । बाहर का रहना छोड़ो, बहिर्मुख वृत्ति को बाहरी वस्तुओं से समेट कर अंतर्मुख कर लो । (अपने भीतर निवास करो) वहाँ निरञ्जन ब्रह्म की ज्योति प्रकाशमान है । काल उसको छू नहीं सकता ॥३॥

वहाँ दिन, रात वर्ष मास आदि काल के परिणाम नहीं पहुँचते । अग्नि, पवन, खेह, और जल एक साथ मिलाकर विज्ञान ने इस अगम्य सुगम दुर्ग (शरीर) का निर्माण किया है । सामान्यतया यह दुर्ग दुरारोह है किन्तु योग की युक्तियों से सुगम है । यह कैलास के तुल्य ऊँचा है । इसके ऊपर आकाश में मेघ गरजते हैं ॥४॥

उसके (तीस=तस्य) तेरह प्रामाणिक फाटक हैं जिनमें दस प्रकट और तीन

प्रांण संकली=प्राण शृंखला (क) और (ग्र) के आधार पर । (ग्र) में इसका शीर्षक 'आत्मबोध' है । परन्तु उसके मंगलाचरण के श्लोक से भी यह 'प्राण शृङ्खला' ही सिद्ध होती है । १. (क) रूह ।

चीरा लगा तीनिसै साठी । नौसै षाई नाटिक गांठी ।
नदी अठारह गंडिक बहई । मगर मच्छ जल पैरत रहई ॥६॥
अहूठ कोटि बनासपती माला । सहज कमल दल पदमनी नाला ।
भेदि षट चक्र बसै नांगणीं । कोटणीं सत मोहि फणीं ॥७॥

गुप्त हैं (प्रकट दस द्वार तो ब्रह्मरंध्र-सहित नवरंध्र हैं । तीन गुप्त द्वारों का वर्णन गोपनीय समझ कर योगियों ने अपनी वाणियों में नहीं किया है ।) उसमें नौ नाड़ियां और बहत्तर कोठे है । नाड़ियां बहत्तर हजार मानी जाती हैं उनमें से बहत्तर श्रेष्ट मानी जाती हैं और उनमें से भी दस प्रधान । 'गोरक्ष शतक', 'गोरक्ष पद्धति' १,२६ । ये बहत्तर कोठे बहत्तर नाड़ियां ही हैं । यहां दस नाड़ियों में से सुषुम्ना को छोड़कर शेष नौ कही हैं । सुषुम्ना ही में सब मिलती हैं । नौ नाड़ियों के नाम हैं—इड़ा, पिंगला, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी । इस घर में अर्थात् किले में पचास (अर्थात् षट्चक्र जिनमें सब मिलाकर ५० दल माने जाते हैं), पचीस (२५ प्रकृति देखिए आगे 'गोरष गणेश गोष्ठी') और पांच तत्व चोर हैं । जब तक षट्चक्र का वेधन नहीं होता, पचीस प्रकृतियां वश में नहीं होतीं, पञ्च तत्वों से ऊपर नहीं उठा जाता तब तक अध्यात्म-योग में सिद्धि नहीं हो सकती ॥५॥

शरीर की ३६० हड्डियाँ पत्थर हैं जिनसे गढ़ बना है । शरीर में प्रधान नव नाड़ियाँ खाईं हैं । नदी…बहई—अठारह गंडा नदी अर्थात् १८×४=७२ नदियां । अर्थात् नाड़ियाँ । शरीर में ७२ करोड़ नाड़ियां मानी जाती हैं । जैसे चौरासी लाख योनि को कभी कभी केवल ८४ कह देते हैं उसी प्रकार यहाँ ७२ कहा है । मगर मछ—मकर मत्स्य, भौतिकता का प्रतीक अहंकार ॥६॥

असंख्य नाड़ियों का अन्त रोम कूपों में हुआ है । उनसे उठने वाले रोम वनस्पति माला हैं । इन्हीं नाड़ियों का एक दूसरे से ग्रथित हो जाना ऊपर कोठड़ी कहा गया है । इनमें से प्रधान ग्रंथियाँ रूपक के आसरे नालदल युक्त कमल भी कही गयी हैं । यही षट् चक्र हैं, कुंडलिनी शक्ति इनसे परे बसती है । (उसे जागरित करने के लिए उनका इसीलिए भेदन आवश्यक है ।) वह कोटनी (माया, शक्ति, कुंडलिनी) अपने मोह रूप फणों से वहीं सत्य की रक्षा करती है, सत्य के पास किसी को पहुँचने नहीं देती ॥७॥

सबद एक जै प्रगट कहूँ सतगुर होई लषावै ।
गुह्ज्य नाम[1] अमींरस मीठा जो षोजै सो पावै ॥८॥
गंगा जमुना त्रिवेणीं संधी । अजपा जपौ गायत्री बन्धी ।
पद्या नीर उरध अस्थांनां । हिरदा पंकज मैं रहै समांनां ॥९॥
नाद बिंद गांठि प्रवांनां । कवण घटि जोति कवण अस्थांनां ॥
कहाँ निरंजन बासा करहीं । कहाँ काली नागनीं मींड़क धरहीं ॥१०॥
कहाँ जलधर पवनां मेला । उद्र कहां विलइया घेरा ॥
सींगी नाद कहां जोगी पूरा । जीत्या संग्राम पुरिष भया सूरा ॥११॥
पूनम चंदा कैसैं छीनां । रवि ससि फेरि पवन घरि कीनां ।
सुपिनैं इंद्री कांम न गहई । ता कारणि जोगेस्वर परलै ढहई ॥१२॥

जिस एक शब्द को मैं प्रकट रूप से कह रहा हूँ उसे सद्गुरु ही दिखा सकते हैं । अमृत रस मीठा है परन्तु उसकी विशेषता यह कि वह गुह्य (गुप्त) है । उसे वही प्राप्त कर सकता है जो उसकी सच्ची खोज में लगता है ॥८॥

बन्धी, बँधकर, लग कर, तल्लीन होकर, संयत होकर । पद्या नीर=(अ) में इसका अनुवाद "पद्गम्य नीर" किया गया है । नीर तो बिंदु है किंतु 'पद्या' का अर्थ संदिग्ध है । पांवो से इसका संबंध लगाने से इसे गमनार्थक मानना चाहिये जिससे सारे चरण का अर्थ होगा, शुक्र को ऊर्ध्व स्थान में पहुँचा कर अर्थात् ऊर्ध्वरेता हो कर ॥९॥

नाद और बिंदु को प्रामाणिक रूप से ग्रथित करें । ज्योति किस घट में है ? उसका स्थान कहाँ है निरंजन का निवास कहाँ हैं ? काली सर्पिणीरूप माया जीवात्मा रूप मेढकों को कहां पकड़ पकड़ कर खाया करती है ? ॥१०॥

ऊर्ध्व रेत (जलंधर) का पवन से मेल कहाँ होता है ? चूहे (उंद्र) को (अर्थात् जीव को कहाँ बिल्ली (अर्थात माया) घेरती है ? जोगी सिंगी नाद (अनाहत नाद) कहां बजाता है ? जहाँ संग्राम को जीतकर शूर (साधक) पुरुष (सिद्धि) हो जाता है ॥११॥

---

१. संभवतः (अ) ने गुह्ज्प या गुहजप (गुह्यजप) पाठ स्वीकार किया है क्योंकि उसमें इसका अर्थ 'गुह्यनामाभिमंत्रण' (यथावत् पाठ) किया गया है, 'अमीरस मीठा' छोड़ दिया गया है ।

सप्त गांठि सरीर की नारी । अरध उरध मैं लाइलै ताली ।
विच विच लागी नौ नौ कली । अष्ट कवल बतीस पांषुड़ी ॥१३॥
नाद रह्या सरवत्र पूरि । गगन मंडल मैं षोजौ अवधू वस्त अगोचर मूर ।
नगर कोटि की बहुविधि गली । सुन्दिर एक राजंदरि खड़ी ॥१४॥
पंच महा रिषि तहां कुटवाल । तिनकी तृया महा झूझारि ।
इनहिं मारि जे लागै पंथा । सुन्दिर जीतै लोक सौं कंथा ॥१५॥
इला प्यंगुला सुषमनां नाड़ी । छुटै भ्रंम मिलै बनवारी ।
पंच तत्त विष अंमृत बसई । गुरुवचने अंमृत भया अंचई ॥१६॥

अमृत स्रावक पूर्णिमा का चंद्र कैसे क्षीण हुआ ? क्योंकि सूर्य ने चंद्रमा को लौटाकर स्वयं पवन पर अधिकार कर लिया है । स्वप्न में भी इंद्रियां कामना को ग्रहण न करें अर्थात मनसा इच्छा) से प्रेरित न हों, इसलिए योगीश्वर प्रलय अर्थात् मनोविलय करना निश्चित करते हैं ॥१२॥

शरीर की नाड़ियों में सात गांठें हैं (संभवतः षट्चक्र और सातवां सहस्रार ।) अधः और ऊर्ध्वगामी जो श्वास क्रिया है, उसमें ध्यान लगाओ । बीच बीच में नौ नौ कलियाँ (नवरंध्र) लगी हुई हैं अष्ट कवल (-योगियों में आठ कमल भी माने जाते हैं । सातवां ज्ञान चक्र में सहस्रदल कमल और आठवां विज्ञान में २१ सहस्रदल कमल । देखो आगे ग्रंथ 'अष्ट चक्र'—) और बत्तीस पंखुड़ियां (संभवतः बत्तीस लक्षण) हैं । संस्कृत अनुवाद भी इसमें सहायक नहीं है । उसमें बत्तीस पंखुड़ियां और नौ कलियों का उल्लेख नहीं है । और अष्ट कवल का अर्थ 'पद्मान्यष्टौ' लिया गया है ॥१३॥

अनाहत नाद सर्वत्र भरा हुआ है । हे अवधूत, अगोचर, मूल तत्त्व (शिव को) आकाश मंडल, ब्रह्मरंध्र में ढूँढो । शरीर रूप को नगर कोट अथवा प्राचीर से रक्षित नगर है उसमें कई मार्ग हैं । किंतु एक स्त्री (कुंडलिनी माया) राजद्वार पर मार्ग को रोके खड़ी है, मूल वस्तु तक नहीं पहुँचने देती ॥१४॥

इस नगर में पांच महर्षि (पांच कर्मेन्द्रियाँ) कोतवाल हैं किसी को अंदर जाकर राजा का परिचय (आत्मज्ञान) नहीं होने देते । उनकी स्त्री (मनसा) बड़ी बलवती और युद्ध कुशल है । इनको (पंचेन्द्रियों को) मार कर जो मार्ग पर चलने लगे वह उस सुन्दरी (माया) को भी जीत लेता है, और साथ ही जगत (लोक) और शरीर (कंथा) को भी ॥१५॥

इति श्री गोरषनाथ विरंचते प्रांण संकली सरीर विचारण, एवं प्राण संकली जेन्य विचारंत, पापे न लिपंते पुंने न हरंते, मृतलोके भये अस्थित अमर लोकेषु गछिते। ॐ नमो सिवाइॐ नमो सिवाई, गुरु मछींद्रनाथ पादुका नमस्तते इती प्रांण संकली ग्रंथ जोग सास्त्र सपूरण समापतः।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा ये तीन मुख्य प्राणवाहिनी नाड़ियाँ हैं। जिनके साधन से भ्रम छूटता है और ब्रह्म साक्षात्कार होता है। पंच तत्व के संसर्ग में अमृत ही विष होकर रहता है। वह गुरु के वचनों से जब अमृत हो जाता है, तब (शिष्य उसका) पान करता है ॥१६॥

— —

नरवै बोध

सुणौ[1] हो नरवै[2] सुधि बुधि का विचार[3]। पंच तत ले उतपनां[4] सकल संसार[5]।
पहलै[6] आरम्भ घट परचा[7] करौ निसपती। नरवैबोध[8] कथंत श्रीगोरष जती॥१॥
पहलै[9] आरम्भ, छाड़ौ काम क्रोध अहंकार[10]। मन माया विषै विकार।
हंसा पकड़ि घात जिनि करो। तृस्नां तजौ लोभ परहरौ॥२॥
छांड़ौ दुंद रहौ निरदुंद। तजौ अल्यंगन[11] रहौ अबंध।
सहज जुगति ले आसण करौ। तन मन पवनां दिढ करि धरौ॥३॥

नरवै=नृपति, राजा। आरम्भ, घट, परचा (परिचय), निसपती (निष्पत्ति) योग की क्रमशः चार अवस्थाएँ॥१॥ हंसा—जीव, प्राणी॥२॥ अल्यंगन—आलिंगन, यहाँ पर, काम भावना॥३॥

नरवै बोध (क), (घ) और (अ) के आधार पर।

१. (घ) में आरम्भ में इतना अधिक है—

'प्रविछ्यामी च्यारि अवस्था सहते। च्यारि अवस्था जोग के नाम।
कथितं प्रथमे आरंभ जोग। दुतीए घट जोग त्रितीए परचया जोग।
चतुरथे निसपती जोग। इती च्यारि अवस्था, कथितं श्रीगोरषनाथ,
सुणौ हो नरवै राजिंद्र।

प्रथमे आरम्भ जोग लछिण, कथितं अव भ्रम दुरंगता। श्रीगोरषोवाच—'
(अ) संस्कृत अनुवाद भी (घ) के अनुकूल है। २. (क) स्वामी। ३. (घ) में इसके बाद 'अनूंसार सतगुर कथीला काया का विचार'। अधिक है। ४. (घ) उपनां। ५. (घ) नाथ कथीला आतमा सारं।७। ६. (घ) पहलौ। ७. (घ) करौ घट परचै। ८. (घ) नरवै पुराण। ९. (घ) में इसके पहले इतना और है—'सतपुत्र सत का विचार', (क) में इस चरण में 'पहलै' के स्थान पर 'दूजै' है। १०. (घ) में इसके आगे इतना और है—'काल पासि महामोह निवारि'। ११. (घ) आलिंगण।

संजम चितश्रो जुगत[1] अहार । न्यंद्रा तजौ जीवन का काल ।
छाड़ौ तंत मंत वैदंत । जंत्रं गुटिका[2] धात पाषंड ॥४॥
जड़ी बूटी का नांव जिनि लेहु । राज दुवार पाव जिनि[3] देहु ।
थंभन मोहन वसिकरन[4] छाड़ौ श्रौचाट[5] ।
सुणौ हो जोगेसरौ जोगारम्भ की बाट[6] ॥५॥
और दसा परहरौ छतीस । सकल विधि ध्यावो[8] जगदीस ।
बहु[9] विधि नाटारम्भ निवारि । काम क्रोध अहंकारहि जारि[10] ॥६॥
नैंण[11] महां रस फिरौं जिनि[12] देस । जटा भार बंधौ जिनि[13] केस ।
रूष बिरष बाड़ी[14] जिनि करौ । कूवा निवांण षोदि जिनि मरौ ॥७॥

तंत मंत वैदंत—तंत्र, मंत्र और वैद्यक । जंत्र=यंत्र; गुटिका=गोली (बटी); थंभन=स्तम्भन; औचाट=उच्चाटन; धात=धातु भस्म (वैद्यक सम्बन्धी)॥४॥

छतीस=क्षितीश, राजा

नाटारम्भ=दिखावा, जो काम हृदय से नहीं किया जाता, जिसमें दिखावे के लिए अभिनय (नाट्य) मात्र किया जाता है ।

---

१. (घ) चितवौ जुगति । २. (घ) मंत्र गोटिका । ३. (घ) मति । ४. (घ) थंभण मोहण वसिकरण । ५. (घ) सकल अवचाट । ६. (घ) 'सुणौ हो नरपती जीवण भौ बाट ॥६॥ (घ) में इसके अनन्तर इतना और है--

नेम सनान व्रत प्रहरौ, नवली चाकी क्रमजिन करौ ।
भैरूं मंत्र वीर बेताल नारसिंघ तम तजौ भुवाल ।७।
आरम्भ जोग का कहौ उचार ।"

७. (घ) का विचार । इसके बाद (घ) में इतना अधिक है—

पासा जुआ खेलौ जिन सारी । जत सत जोग तणां अधिकारी ।८।

८. (घ) ध्यावौ । ९. (घ) वहौ । १०. (क) अहंकार हरि । (घ) में इसके आगे इतना अधिक है—

वाद विवाद उपाधि निवारि । बंधौ शक्ति जोग विधि सार ।

११. (घ) नैनं । ११. (घ) जिन...मति । १२. (घ) में इसके बाद इतना और है—गिगन मूनी दूधाधारी । गुपती चक्र सबै निवारी ।

दीवी चक्र तजौ मांस अहार । ए तजौ तुम जुगती विचार ॥१०॥

१४. (घ) रूंप वृष ।

टूटै[1] पवनां छीजै काया। आसण दिढ करि वैसौ[2] राया।
तीरथ बर्त[3] कदे जिनि करौ। गिर परबतां[4] चढ़ि प्रान मति हरौ ॥८॥
पूजा पाति जपौ जिनि जाप। जोग माहिं[5] विटंबौ[6] आप।
छाडौ वैद बणज-ब्यौपार[7]। पढ़िबा गुणिबा लोकाचार ॥९॥
बहुचेला[8] का संग निवारि। उपाधि मसांण वाद विष टारि।
येता कहिये[9] प्रतषि काल। एकाएकी रहौ भुवाल ॥१०॥

निवांण=निम्न, नीचा तल वाला (यहाँ पर), वैसे इसके माने ढालुआ भी होते हैं। शब्द 'निम्न' से बना है। गढ़वाली भाषा में नम्र और छोटे के लिए भी जरा अंतर से प्रयोग आता है—निमाणो—

विटंबौ=विडम्बन करते हो, हँसी उड़ाते या उड़वाते हो। गढ़वाली में बिटमना गाली देने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वैद=वैद्यक। बिषटारि=विष समझ कर टालो।

---

१. (घ) तूटै। २. (घ) बैठो। इस चरण के बाद (घ) में इतना अधिक है—

'छाड़ो विधि विणज ब्यौपार, पढ़िबा गुणिबा लोकाचार।'

३. (घ) 'मैं बर्त कदे जिनि' के स्थान पर 'जात्रा सहज मति'। ४. (क) प्रबतां; ५. (क) माहिं; (घ) गमावै। ६. (घ) वंटैवै। इस चरण के आगे (घ) में इतना अधिक है—

'गरब करि जिणि धरौ फणिंद, आपा मेटवां रहौ निरंद ॥'

६. (घ) 'वैद बणज' के स्थान पर 'विधि विणज'। ७. (घ) में इसके आगे के दो चरण इस प्रकार हैं—

घणा चेला है प्रतषि काल। ऐकाऐक तुम रमौ भुवाल ॥१५॥

(क) में चरणों का स्थान बदला है। इन चरणों के आगे (घ) में इतना और है—

धन कंचन की करौ जिनि आसा। मिथ्या भोजन परम उदासा।
काम क्रोध अहंकार निवारि। तीनि तजौ तौ उतरो पारि ॥१६॥
संष सबद जिनि पूरौ नाद। धुनि मैं रहौ ज्यूं पावौ स्वाद।
जीवण महारस दिढ करि जाणि। अमर महारस लेहु पिछांणि ॥१७

सभा देषि मांडौ मति[1] ग्यांन । गूंगा गहिला होइ[2] रहौ अजांण ।
छाड़ौ राव रङ्क की आस[2] । भिछ्या भोजन परम[3] उदास ॥११॥
सींगी नाद पयांनां देहु । देव कला कै लछिन लेहु ।
बग ज्यूं ध्यांन मांडि जिनि रहौ[4] । स्वान जती की निंद्रा गहौ ॥१२॥
रस रसाइंन गोटिका निवारि । रिधि परिहरौ सिधि लेहु बिचारि ।
परहरौ सुरापांन अरु भंङ्ग । तातैं उपजै नाना रङ्ग[5] ॥१३॥

माडौ=मंडन करो, संवारो, सजाओ, अर्थात् सुनाओ (प्रसङ्ग से ।)
सारी, सारिका, मैना, भक्त जन मैना पालते हैं और उससे राम नाम बुलवाते हैं । कींगुरी, चिकारा, छोटी सरगी ॥१४॥

---

१. (घ) बैसि जिनि मांडौ । २. (घ) गहला होय । इस चरण के आगे (घ) में ये चरण अधिक हैं—

साषी सबदी जस जिनि करौ । रवि ससि दोऊं गहि करि धरौ ।१८।
उतम मधिम छाड़ौ व्यौहार । सब घटि ऐक आत्मां सार ॥

३. (घ) में यह चरण यों है—राव रंक की करौ जिनि आस ।

४. (घ) फिरौ । इस चरण के आगे (घ) में ऊपर दिये पाठ के १३ वें श्लोक के प्रथम दो चरण हैं और फिरि इतना अधिक है ।

राइ कै मन धीरज भया आनन्द । यण परचै, ऊग्या पिंड ॥२०॥
हंस गवनी चलौ तुम बाट । उतरौ चढ़ौ जिनि औघट घाट ।

४. (घ) में यह चरण यों है—बग ज्यूं ध्यांनरैंणि दिन करौ ।
और फिर इतना अधिक—मन मुषि चंचल गति परहरौ,
स्वांन तणां तुम लछिण सोवौ । थिरि दिष्टि निज मन करि जोवौ ॥२२॥
सहजैं लैंणा परहरौ उपाधि । जोगस्तन यण पर साधि ।

५. (घ) में इसके आगे इतना अधिक है—

नारी चोरी परहरौ मिथ्या । एता आरम्भ सतगुर कथ्या ।
पहलैं करम तणां फल होय । दोय कर जोड़ि लेहु सब जोय ॥२४॥
ऐसा एक वायक सतगुर कहै । कनक कामणी परहरि रहै ।
आरम्भ जोग सुणौ तुम राय । सति सति भाषंत श्री गोरष राय॥२५॥

नारी सारी कींगुरी । तीन्यूं सत गुर पर हरी ।
आरंभ घट परचै निसपती । नरबै बोध कथंत श्री गोरष जती[7] ।१४।

इति श्री गोरषनाथ विरंचते, नरवै बोध ग्रन्थ, पठंते गुणंते कथंते, पापे न लिप्यंते, पुन्ये न हरंते, ॐ नमो सिवाई ॐ नमो सिवाई गुरु मछींद्रनाथ पादुका नमसतते । इति श्री नरवै बोध ग्रन्थ जोग सास्त्र सपूरण समापत ।

आत्म बोध

ॐ आसण[1] करि पदम[2] आसण[1] बंधि । पिछलै[3] आसण[4] पवनां संधि[5] ।
मन मुछावै लावै[6] ताली[7] । गगन सिषर मैं होइ उजाली[8] ॥१॥
प्रथमि बैसि बाई दर[9] बंधि । पवनां षेलै चौसठ[10] संधि ।
नव दरवाजा[11] देवै[12] ताली । दसवां मधें होइ उजाली[13] ॥२॥
ऐसा भुवंगम[14] जोगी करै । धरती सोषै अंबर भरै ।
गगने[15] सुर[16] पवनें[15] सुर[17] तांणि । धरनी का पांणी[18] अंबरि आंणि[19] ॥३॥
ता जोगी की जुगति पिछांणि[20] । मन पवन ले उनमनि आंणि ।
मन पवन[21] ले उनमनि रहै । तौ काया गरजै गोरष कहै ॥४॥
चढ़ै महारस अभरा भरै । ऐसा आरम्भ जोगी करै ।
उलटी सक्ति[22] चढ़ै ब्रह्मंड । नष सप पवनां षेलै नव षंड ॥५॥

मुछावै=मूर्छित करे । लावै ताली=ध्यान लगावे ॥१॥ वैसि=बैठ कर; दर=दरी, उपत्यका, घाटी । घाटियों में वायु का वेग बहुत होता है । यहाँ पर वायु मार्ग, नव द्वार ॥२॥ धरती=मूलाधार । अंबर=ब्रह्मरंध्र । भुवंगम करै=कुंडलिनी जागरण करे । पांणीं=बिन्दु ॥३॥ गरजै=अनाहत नाद से ॥४॥ महारस=अमृत रूप मदिरा । सकति=कुंडलिनी ॥५॥

आतम बोध [१] (क) और (घ) के आधार पर ।

१. (घ) आसन । २. (घ) पदि । ३. (घ) पछिलै । ४. (घ) आसनि । ५. (घ) सिध । ६. (घ) मुरछावै । ७. (घ) तारी । ८. (घ) बलै अंगारी । ९. (घ) बाय दरि । १०. (घ) चौंष्टि । ११. (घ) दरवाजां । १२. (घ) लावै । १३. (घ) बंधे होय उजियाली । १४. (घ) भुयंगम । १५. (घ) स्वर । १६. (घ) पवने । १७. (घ) पांणी । १८. (घ) पांणी ले । १९. (घ) आंणी । २०. (घ) पिछांणी २१. (घ) पवनां । २२. (घ) सकति ।

उलटै चन्द्र राह कौं[1] ग्रहै । सूरज उलटि केत संग्रहै ।
ससि[2] द्वार सूरज थिर[3] रहै । तत्व भांण जोगेस्वर कहै ॥६॥
अरधैं[4] जाता उर्धैं[5] गहै । द्वादस पवनां उनमन रहै ।
अहनिसि बाई धुंनि मैं[6] बाजै । पछिम द्वारै पवनां गाजै ॥७॥
अभिअंतरि ब्रह्म अगनि परजालै[7] । पंच चोर ले[8] ग्यान[9] संभालै[7] ।
जोगी अपणैं घरि दिवाला दीपै[10] । ता जोगीकी काया काल न छीपै[10] ॥८
हलि हलि पवनां काया गरजै[11] । सूरा होइ[12] अभिअंतरि झूझै ।
ग्यांन षडग ले झूझिबा द्वार । अजीत[13] जीतिबा पंच गहि सार ॥९॥
अष्ट परबत असाध[14] साधिबा । नव दरवाजा दिढ[15] करि बांधिबा ।
दसवैं दरवाजै कूची[16] सार । मैमंत[17] हस्ती बांधिबा बार ॥१०॥

चंद्र और सूर्य उलट कर राहु-केतु को ग्रस लेते हैं । इस प्रकार वह योगीश्वर जो तत्व ज्ञान के कारण भानु सा प्रकाशमान है, कहता है, कि चंद्र के द्वार पर सूर्य स्थिर हो जाता है, अर्थात् सूर्य और चन्द्र का मेल हो जाता है, जो हठ विद्या का उद्देश्य है ॥६॥

नीचे (भीतर) जाती हुई वायु को ऊपर लेकर अर्थात् ब्रह्मांड में ले जाकर द्वादशांगुल पवन का आयाम कर उन्मनावस्था में रहे । जब पवन सुषम्ना मार्ग में गरजती हुई प्रवेश करती है, तब रात दिन वायु से ध्वनि निकलती है अनाहत नाद सुनाई देता है ॥७॥

पंच चोर = पंच ज्ञानेंद्रिय ॥८॥

झूझिबा = योद्धव्यं, युद्ध करना चाहिए ॥९॥

मैमंत...बार = और मद मत्त हाथी (मन) को दरवाजे पर (ब्रह्मरंध्र में) बांध देना चाहिए ॥१०॥

---

१. (घ) कूं । २. (घ) सक्ति । ३. (घ) थिरि । ४. (घ) अरधै । ५. (घ) उरधै । ६. (घ) धुनि । 'मैं' नहीं । ७. (घ) परजारै...समारै । ८. (घ) लै । ९. (क) आंन । १०. (घ) दिपै...छिपै । ११. (क) भजै । १२. (घ) होय । १३. (घ) अजीति । १४. (घ) असाधि । १५ (घ) द्रिढ । १६. (घ) दरवाजे दसवैं कंची १७. (घ) मैंमंता ।

भींतरि[1] राजा झूझण[2] हार । चहुँदिसि जाता राष्या मार[3] ।
राजा झूझै विषमैं धाइ[4] । मन पवन ले रहै समाइ[4] ॥११॥
मन पवन[5]की बिषमी संधि[6] । चंद सूर द्वै[7]समिकरि बंधि ।
नवसै नवासी[8] सायर सोषै । जोगी सोषै[9] सदा भरि षोषै[10] ॥१२॥
विन पुस्तक[11] वंचिबा पुरांण । सुरसती[12]उचरै ब्रह्म गियांन ।
अभर सोषै वजर[13] करै । सब[14] दोष काया ले हरै ॥१३॥
षेरै षोजै[15] लावै बंध । तौ अजरावर[16] थिर ह्वै कंध ।
सोषै पोषै जालैं बालैं । अह निसि ब्रह्म अग्नि परजालै[17] ॥१४॥

युद्ध करने वाला राजा (आत्मा) भीतर है, जिसने चारों दिशाओं में भागने वाले मन को मार कर भीतर सुरक्षित रक्खा है ।

राजा (आत्मा) कठिन (घावों को सहता हुआ) युद्ध करता रहता है, और मन पवन का योग कर योग-लीन रहता है ॥११॥

मन पवन का मेल कठिन है । इसीलिए चंद्र और सूर्य को सम करके एक में बाँध दो । योगी शुक्राधिक्य से विचलित नहीं होता । वह नौसौ नवासी सागरों को (अर्थात् अपरिमित शुक्र को) शोष लेता है, ऊर्ध्वगामी बना देता है, और खाली स्थान को फिर भर देता है । षोषै=(शुष्क, खुख) खोखलेको ॥१२॥

योगी को शिक्षा के लिए पोथी-पुराण पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती । स्वयं सरस्वती उसके हृदय में बैठकर ब्रह्मज्ञान का उच्चारण करती है, जरा विरोधी शुक्र को शोषण (अर्थात् ऊर्ध्वगामी बना) कर वज्रोली मुद्रा साधे, और काया का सब दोष नष्ट कर डाले ॥१३॥

(जो अमृत) क्षरित हो रहा है, उसे खोज कर (जालंधरादि) बंधों के (द्वारा उसके नाश को रोके) तो अजर अमर होकर शरीर (कंद, कंध,

---

१. (क) भीतरि । २. (घ) झूझण । ३. (क) मारि । ४. (घ) विषमी धाय···रह्या समाय । ५. (घ) पवनां । ६. (घ) सिंधि । ७. (घ) दोऊ । ८. (घ) नौसै निवासी । ९. (घ) सोषि । १०. (घ) पोषै (अ) 'भरि पोषै' का अर्थ पुनरापूरयति करता है । ११. (घ) विणि पुस्तगि । १२. (घ) सुरसती । १३. (क) अभ्र सोषै चक्र । १४. (क) अब । १५. (घ) सोषै । १६. (घ) अजरावर थिरि होय । १७. (घ) अगनि प्रजालै ।

अहनिसि अगनि[1] पाप कूं षाइ[2] । संधै संधै[3] पवन लुकाइ[2] ।
मन ह्वै[4] धीर थिर[5] वहै पवनं[6] । सिवपुरी जीता राषै कवनं[7] ॥१५॥
ब्रह्म सागर[8] सोषै वधै ज्यंद[9] । षीर सागर सोषै अजरांवर कंद[10] ।
बजर कछोटा[11] आसण करै[12] । रोग व्याधि षुध्या[13] सब हरै ॥१६॥
जड़ी बूटी[14] भूलै मति कोइ[15] । पहली रांड[16] वैद की होइ[15] ।
जड़ी बूटी[14] अमर जे करै । तौ वैद धनन्तर काहे मरै ॥१७॥
सोनै[17] रूपै सीझै काज । तौ कत राजा छांड़ैं[18] राज ।
पसुवा होइ[19] जपै नहीं जाप । सो पसुवा मोषि[20] क्यूं[21] जात ॥१८॥

स्कंध, शरीर) स्थिर हो जाता है। अथवा कंद (मूलाधार के पार्श्व में स्थित कंद जिससे सब नाड़ी जाल निकला है) के स्थिर होने से शरीर अजर और अमर हो जाता है। सोखे (शुक्र को ऊर्ध्वगामी करे), जिस से शरीर पुष्ट होगा और ज्ञान दीपक अथवा ब्रह्मज्योति को बाले, और रात दिन उस ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित रहने दे ॥१४॥

इस प्रकार वह अग्नि रात दिन पाप को जलाती रहेगी, जिसके भय से पवन भी प्रत्येक संधि में भाग कर बैठ जायगा। इस प्रकार पवन के स्थिर होने से मन भी धैर्यवान हो जायगा। तब तो शिव स्थान (ब्रह्मरंध्र) को जीतने वाले आत्मा को कौन रोक सकता है, बन्दी बना सकता है ॥१५॥

ब्रह्म सागर (शुक्र) के सोखने (ऊर्ध्वगामी करने) से जीवनी शक्ति बढ़ती है, और षीर (अमृत)-सागर को सोखने से शरीर अजर और अमर हो जाता है। वज्र कोपीन धारण करे, और वज्रासन लगावे, जिससे सब रोग व्याधि और क्षुधा का नाश हो जाय ॥१६॥

अगर सोने चाँदी से काम सिद्ध होता (सीझै) तो राजा (भर्तृहरि

---

१. (घ) ब्रह्म । २. (घ) षाय…लुकाय । ३. (घ) संधै संध । ४. (घ) होय । ५. (घ) थीर । ६. (घ) पवनां । ७. (घ) कवनां । ८. (घ) सार । ९. (घ) बंधई जिंद । १०. (घ) कंध । ११. (घ) करछोटा । १२. (घ) में सारा चरण—'अजरांवर सोषै बजर करै' । १३. (घ) षुध्या । १४. (घ) बूंटी । १५. (घ) कोय…कोय । १६. (घ) पहलैं । १७. (घ) सोनैं । १८. (घ) छाड़ैं । १९. (घ) पसवा होय । २०. (घ) मोक्ष । २१. (घ) क्यौं ।

रिधि सकेलै[1] रौलांणीं धरै। गुरू न पोजै मुरिष मरै।
रौलांणी[2] आगै[3] वैसै[4] फूलि। गुर की वाचा गया जे भूलि ॥१९॥
अकल पुरिस[5] कै सकल नियाव। मीठा[6] बोलै झूठा[7] भाव।
सत[8] बोलै सोई सतवादी। झूठ बोलै[9] सो महा पापी ॥२०॥
देपत भौंदू[10] विपिया पाई[11]। झूठा बोलै मरि मरि जाई[12]।
जैसा करै सो[13] तैसा पाय। यकोतर सै पुरिपा[14] नरकि लै जाय ॥२१॥
एक पुरिष बहु[15] भांति नारी। सरव[16] निरन्तर[17] आत्मां[18] सारी।
सरव[18] निरन्तर[17] भरि पूरि[19] रहिया[20]। आत्मां बोध सपूरण[21] कहिया[20] ॥२२॥
पापे न पुन्ने लिपे[22] न काया। आत्मां बोध कथंत श्री गोरपराया।

इती श्रीगोरप आतमबोध, पठंते करंते गुणंते कथंते। पापि न लिपंते पुंने न हरंते। ॐ नमो सिवाई ॐ नमो सिवाई गुरु मछिंद्रनाथ पादुका नमस्तते। इति श्रीआतमां बोध ग्रंथ जोग सास्त्र सपूरण समाप्तः ॥

गोपीचंद आदि) राज्य क्यों छोड़ते। जो मनुष्य पशु से बने रहकर मंत्र जाप (अजपा जाप) नहीं करते, वे मोक्ष को कैसे पहुंच सकते हैं ॥१८॥

जो धन सम्पत्ति बटोर कर एक रावलिन (जोगिन) रख लेता है गुरु की खोज नहीं करता है, इस प्रकार वह मूर्ख मर जाता है। प्रसन्न होकर रौलाणी (रावलिन) के आगे बैठा रहता है, गुरु के वचनों को बिलकुल भूल गया है ॥१९॥

जिसने अकल (कला रहित), निर्लेप ब्रह्म का अनुभव कर लिया उसका सब व्यवहार न्याय पूर्ण होता है चाहे वह मिठ-बोला न हो। इत्यादि ॥२०॥

---

१. (घ) रिधि सिधि केल। २. (घ) रोलांणी। ३. (घ) आगें। ४. (घ) बैठा। ५. (घ) पुरख। ६. (क) झूठा। ७. (क) मीठा। ८. (घ) सांत। ९. (घ) बोलें। 'सो' नहीं है। १०. (घ) मूंदू। ११. (घ) बिषयांबाय। १२. (घ) जाय। १३. (घ) में नहीं। १४. (घ) परीया (!)। १५. (घ) बहौ। १६. (ग) सब। १७. (घ) निरंतरि। १८. (घ) आत्म। १९. (घ) भरपूरि। २०. (ग) रहीया... कहीया। २१. (ग) सपूरण। २२. (घ) पाप न पुनि लिपै।

अभै मात्रा जोग

ॐ अकल पंथ, अकलि का मारग, सत भोमि, सहज[1] आसन प्रांण[2], जोगी, पवन गुटिका[3], निज भुवन गुफा,[4], सञ्जम[5] कोपीन[6], मरजादा[7] मैषलीं, निहकेवुल जगौटा[8], जुगति, उडयांणीं[9], साच मुद्रा[10], सील कंथा, षिमांटोषी[11], जरनां[12], अधारी, अंतरि गति[13] झोली, धीरज[14], डंड, बमेक फाहुड़ी, तप चक्र, मूल कमंडल, मन उदिक[15], महा अमृत भोजन, दया[16], रह[17] रांसि, विचार पुसतक, जिभ्या[18] रसांयन[19], सरवङ्गी कला, विद्या काल बंचणीं, नृपै नभ्री[20], अकल वनषंड, निरास मढो, अतीत देवता, गिनांन दीपक, अकलप

जगौटा=योग पट्ट। जरना=योगानुभव की स्थिरता, उसका जीर्ण होना। उड्यांणीं=उड्डीयान, (अ) के अनुसार उड्याणिका। वमेक=विवेक। उदिक=उदक। रहरासि=(अ) रहस्य विचार।

अभै मात्रा जोग—(क) (घ) और (अ) के आधार पर।

१. (क), (अ) में 'ॐ अकल पंथ, अकलि का मारग, सति भोमि सहज आसन नहीं। २. (घ) प्राननाथ। ३. (घ) गाटिका। ४. (क) आसन (अ) भी (क) के ही अनुकूल है। ५. (घ) सहज सञ्जम। ६. (घ) कोपीन। ७. (घ) मरजाद; (क) म्रजादा। ८. (घ) निहिकेवल जोगौटा। ९. (घ) उडांणी। १०. (घ) में 'मुद्रा' का उल्लेख 'झोली' के बाद है। ११. (घ) छिमा। १२. (घ) जरणां। १३. (घ) अतरगति। १४. (घ) धीरज। इसके पहले (घ) में 'अकलि पत्र, आसति डीवी, त्रिगुण ठीहा, द्वादस कपाली संतोष तिलक', अधिक है। सर्वांगी में 'आसति डीवी' के स्थान पर 'सहज डीवी है' और 'सन्तोष तिलक' नहीं है। १६. (घ) में इससे पहिले 'कमल पात त्रिपति सिधि' अधिक है। १७. (घ) रहिरासि। १८. (क) जिह्वा। १९. (घ) श्रवगी रसायणी। २०. (घ) में इसके बाद 'अगम पुर पाटण', अधिक है।

रहनीं[1], अजाचीक भिष्या[2], सबद सींगी, अनहद[3] कोंगुरी स्याम सरोवर[4], अमृत[5] प्याला, निहचल रिधी[6], सति करामाति, मुक्ति सिधि, अलेष ध्यांन[7], अटल समाधि, निराकार तरवर[8], जुग पलव[9], अमीं फल[10] ।

इती अभै मात्रा संपूर्ण

१. (घ) में इसके पहिले 'अभंग तरवर, अचल छाया, अमर मूल, जुग पलव, अमी कली पुहिप, सत संतोष फल, निराकार कलप वृक्ष, सिध सरोवर' अधिक है। २. (घ) भिष्या। ३. (घ) अनाहद। ४. (घ) में 'स्यंभ सरोवर' इस स्थल पर नहीं 'निरास मढी' के पहले है। इसके बाद (घ) में 'पवन आधारी अष्टंग जोग' अधिक है। (घ) पत्रत। ६. (घ) निहिचल रिधि। ७. (घ) अलख दरसन। (घ) में इसके पहिले 'अजपा जाप' और इसके बाद 'निरंतर ध्यान' अधिक है। ८. (घ) में ये सब नहीं है, किन्तु इनके स्थान पर है— 'सार मात्रा तत सार। अलख निरंजन निराकार कथंत श्रीगोरषनाथ जोगी। श्री मनि नाथंत बाबा मछिंद्र प्रसादे।'

पंद्रह तिथि

बंदे[1] गोरष एकंकार[2] । पंद्रह[3] तिथि का करहु[4] बिचार ।।टेक।।
अमावस दिढ़ आसण[5] होइ[6] । आतम[7] परचै मरै न कोइ[6] ।
मूल सहस्र[8] पवनां बहै[9] । वंक नालि तब[10] बहुत रहै[11] ।।१।।
पड़िवा है द्वै पष[12] की आदि । सतगुरु सबदां सहज समाधि ।
गगन मंडल मैं रहै समाइ[13] । तौ चारि जुग लौं हेलै टलि जाइ ।।२।।
दुतिया द्वै कुल उधरन धीर । उनमन मनवां अस्थलि सरीर ।
बाहरि भीतरि एकंकार । गुरु प्रसादैं भौ निधि पार[14] ।।३।।
तृतीया तृबेणी करौ स्नान । पाप पुंनि दोउ देउ[15] दान ।
तब जोग जुगति पाऔ[16] बिसवास । जुरा मरण[17] नहीं कंध विनास।।४।।
चौथे चंचल निहचल करौ । काल बिकाल दूर परहरौ ।।
जम जौरा का मदौं[18] मांन । सतगुर कथिया पद निरवांन ।।५।।

यदि योगी ब्रह्मरंध्र में समाया रहे, तो चार युग तक खेलवाड़ में आसानी से कट जाते हैं अर्थात् एक प्रलय से दूसरे प्रलय तक उसका कोई कुछ नहीं कर सकता ।।२।।

चंचल=मन । जौरा=यमराज । जोर देने के लिए जम जौरा कहा गया है । ऐसे ही प्रयोग शब्दों की द्योतन शक्ति को बढ़ाते हैं ।। ५ ।।

पंद्रह तिथि (क) (ख) (ङ) और (ग्र) के आधार पर ।

१. (क) बंदौ । २. (घ) (ङ) एकंकार । ३. (घ) सोल्है; (क) सोलह । ४. (ङ) में नहीं; (घ) करू । ५. (घ) आसन दिढ । ६. (घ) होय·· कोय । ७. (घ) आत्म । ८. (घ) सहंभ्र । ९. (घ) (ङ) फिरै । १०. (क) नव । ११. (घ) बहेतरि भरै । १२. (घ) द्वै पछि । १३. (घ) (क) में समाइ, आदि के 'इ' के स्थान पर सर्वत्र 'य' है । १४. (घ) भए निधि पार । १५. (क) द्यौ; (घ) दीह । १६. (घ) पावै । १७. मरन । १८. (क) गुर । १९. (क) निरबांन ।

पांचमि पंच तत[१] की संधि[२] । माता मैंगल राषौ बंधि ।
अमीं महारस छिन छिन पीवौ[३] । गुर परसादैं जुगि जुगि जीवौ[३] ॥६॥
छटि षट चक्र बिचारौ सार । रिधि सिधि बुधि मति अषिल भंडार ।
अरथ दरब की छाड़ौ आस । काया कांमिनि भोग बिलास ॥७॥
सातन[४] सतरज तम गुण बंधि । पावौ[५] जीवण मरण की संधि ।
अविहड़ अजर अमर पद गहौ । मन पवन ले उनमन रहौ ॥८॥
आठमि अष्ट भैरौ नवनाथ । अनंत सिधां सौं मिल्यौ संघात[६] ।
अचंभ[७] वांणीं कथी न जाइ[८] । झरत महारस गगन समाइ[९] ॥९॥
नवमीं नव निधि काया मंझारि । पाप पुंनि[१०] देषौ पट तारि ।
बूडै पाप तिरै[९] सत धरम[११] । काया बाहरि जाति न जनम ॥१०॥
दसमी[१२] दह[१३] दिसि लागै बंध । जत सत संजम थिर ह्वै[१४] कंध ।
धरम करम गुर बाचा लीन[१५] ग्यांन बिचषन बाजै बीन[१५] ॥११॥
एकादसी अग्यारह[१६] रुद्र । मांणक पायो[१७] काया समुंद्र[१८] ।
अलष रतन गुरि दीयौ बताइ[१९] । एकादसी तिथि[२०] की राइ[२१] ॥१२॥
द्वादसी दिनकर तपै अकास । पसरै किरण होइ प्रकास ।
तहाँ चढ़ि भवरा[२२] रह्या समाइ[२३] । सतगुरि कथिया[२४] जीवन उपाइ॥१३॥

अविहड़ = अखंड, जो बिछरता, बिछोह नहीं होता है ॥८॥

---

१. (क) पंचम चंपछटि । २. (ख) सिधि । ३. (क) पीओ...जीओ । ४. (ख) सातै । ५. (क) पाओ । ६. (क) संगात । ७. (क) 'नव' नहीं । ८. (ख) अचंभा । ९. (ख) जाय...समाय । १०. (ख) पुनि । ११. (क) धर्म...जन्म । १२. (ख) दसमीं । १३. (ख) दिहि । १४. (क) थिर है ; (ख) थिरि होय । १५. (क) लीन.. बीन । १६. (क) एकादसि एकारह ; (ख) ग्यारह । १७. (ख) माणिक पाया । १८. (ख) समुद्र । १९. (ख) गुर दीया बताय । २०. (क) तीरथ । २१. (ख) राय । २२. (ख) किरणि होय । २३. (ख) समाय... उपाय । २४. (ख) सतगुर कथीया ।

तेरसि तृकुटी[1] संमि[2] करि मेलि। चंद सूरज दो संमि[2] करि मेलि।
एक सिष रूंध्या[3] नव घाट। सत गुर[4] पोजौ[5] ऊजू बाट[6] ॥१४॥
चौदसि चौदह[7] रतन बिचार। काल बिकाल आवता निवारि।
आपैं[8] आप देषौ पट तारि। उतपति परलै[9] काया मंझारि ॥१५॥
पून्यं[10] पुगी मन की आस। माया मोह तजि भये उदास।
सोलह[11] कला सपूरण[12] चंद। गुर परसादे[13] थिर भया[14] कंधि ॥१६
पंद्रह तिथि कला कीं संधि। मंछींद्र प्रसादें[15] थिर भया[16] कंध।
भया थिर तब आछै धीर। अनंत सिधां[17] श्री गोरष पीर ॥१७॥

१. (क) तृकुटि। २. (घ) समि। ३. (घ) रूधा; (ङ) रूध्या। ४. (घ) सतगुर। ५. (घ) षोजै। ६. (ङ) कथिया आह बाट। ७. (घ) चवदसि चवदैह। ८. (घ) आपै। ९. (क) प्रलै। १०. (घ) पूनिम; (ङ) पून्यो। ११. (घ) सोलहै। १२. (घ) संपूर्ण। १३. (घ), (ङ) प्रसाहदें। १४. (घ) थिर होय। १५. (घ) मछिंद्र प्रसादे। १६. (घ) थिरि भया; (घ) भया धीर जब आछै धीर; (क) में 'धीर' के स्थान पर 'तीर'। १७. (क) जती।

सप्तवार

जोग मूल गहि बारंबार[1]। सत गुरु सबदां[2] सहज बिचार। टेक

आदित[3] सोधौ आवा गवन। घट मैं राषौ दिढ़ करि पवन।
स्यौ[4] पूजा करि दसवैं द्वारि[5]। तौ गुर पावौ[6] आजित[3] वार ॥१॥
सोमवार मन धरिबा सुंनि[7]। निहचल[8] काया पाप न पुंनि[9]।
ससिहर बरिषै[10] अंबर भरै। तौ सोमवार गुंण[11] एता करै ॥२॥
मंगल बिषमीं[12] माया बंधि। चंद सूर दोऊ समि[13] कर संधि।
जुरा मरण बंचौ[14] भौ काल। तौ गुर पावौ[6] मंगल वार ॥३॥
बुधवार गुर दीन्ही बुधि। बिचरौं[15] काया पावौ[16] सिधि।
सिव घरि सक्ती[17] पांणीं भरै। तौ बुधवार गुन[18] एता करै ॥४॥
बृसपति[19] वार बिषम मन धरौ। पांचौं इंद्री[20] निग्रह करौ।
षंपणीं[21] लै रूंध्या नव[22] द्वार। तौ गुर पावौ[16] बृसपति[19] बार ॥५॥
सुक्रवार सोधिबा शरीर। कहां बसै अंमृत[23] कहां बसै पीर।
नव बहतरि[24] पवनां षटै। तौ सुक्रवार गुण[25] बिरला लहै ॥६॥

सप्तवार (क) (घ) (ङ) और (अ) के आधार पर।

१. (घ) बारूंबार। २. (क) सबदा। ३. (क) आदीत। ४. (घ), (क) सिव। ५. (घ) द्वार। ६. (क) पाओ। ७. (क) सून्य; (घ) सुनि। ८. (क) (ङ) निश्चल। ९. (घ) पुनि। १०. (घ) बरषै। ११. (घ) गुण। १२. (घ) बिषमी। १३. (ङ) एक। १४. (क) बंचो जम काल; (ङ) बंचो काल। १५. (घ) ब्यौरो : (ङ) बिचरो (?)। १६. (घ) पाओ। १७. (घ) सकति। १८. (घ) गुर। १९. (क) बृहस्पति : (क) बिसपति। २०. (घ) यंद्री। २१. (घ) षंपनी। २२. (ङ) 'लै नव' के स्थान पर रूंधो पवना; (घ) रोधौ पवना। २३. (घ) अमृत। २४. (घ) नवै बहोतरि। २५. (घ) कोई।

थावर थिर[1] करि आसण देहु[2]। बारह सोलह गिणि गिणि[3] लेहु[2]।
ससि हर कै घरि आवै[4] भांण।[5] तौ दिन दिन थावर गगंन[6] सनांन ॥७॥
सातौं आंन्यां एकैं रास[7]। काला भौंरा[8] वेधै[9] पास[7]।
प्यंडै प्रांणीं[10] परचा भया। सप्त[11] बार श्रीगोरष कह्या ॥ ८ ॥

बारह=सूर्य। सोलह=चंद्र ॥७॥

---

१. (घ) थिरि ।। २. (घ) देह...लेह। ३. (क) में एकही 'गिणि' (घ) 'गिनि करि'। ४. (क) आनै। ५. (घ) भान। ६. (घ) गंग। ७. (घ) रासि...पासि। ८. (ख) काला भैरूं। ९. (घ), (क) मास्या। १०. (घ) पिंडे प्रांणी। ११. सपत।

मछींद्र गोरष बोध

गोरषोवाच—स्वांमी[1] तुम्हें[2] गुरु गुसांई[3] अम्हें[2] जु[4] सिष।

(सबद एक पूछिबा[5]) दया करि कहिबा मनहिं[6] न करिबा रोस[7]

आरंभि[8] चेला कैसें रहै। सतगुर होइ[9] सो[10] बूझया[11] कहै[12]॥१

मछिंद्र उवाच—अवध रहिबा[13] हाटें बाटें[14] रूष[15] वृष[16] की छाया।

तजिबा[13] कांम क्रोध तृष्णां संसार की माया॥

आप सौं[17] गोष्टी अनंत[18] विचार।

पंडित निद्रा[19] सुछिम[20] अहार[21]॥

गोरष—स्वांमी कौन देषिबा कौन विचारिबा, कौन[22] ले धरिबा सारं।

कौन दोष मस्तक[23] मुडाइबा[24] कौन ले उतरिबा पारं॥३॥

मछिंद्र—अवधू! आपा देषिबा अनंत[25] विचारिबा, तत[26] ले धरिबा सारं।

गुरु[27] का सबद[28] देषि[29] मस्तग[30] मुडाइबा, ब्रह्म ग्यांन ले उतरिबा[31] पारं॥४

मछिंद्र गोरष बोध (क) और (ष) के आधार पर।

१. (ष) में सर्वत्र स्वांमीजी। २. (ष) तुम्हे...अम्हे। ३. (ष) गुसांई। ४. (ष) ज। ५. (ष) बूझिबा। ६. (ष) मनहूँ। ७. (ष) रोसं। संभवतः पहले पद के प्रथम दो चरणों के तुकांत शब्द 'सीष' 'रोष' हों। सीष = शिष्य, सिक्ख, सीख। रोष = ईर्ष्या, दरिका, (रोस, रोल, रिस) और 'रोष' के साथ सादृश्य से अर्थ होगा। ८. (ष) आरंभी। ९. (ष) सर्वत्र 'होय'। १०. (ष) स। ११. (ष) पुछ्यां। १२. (क) कहैं। १३. (ष) रहिया तो...तजिया तो। १४. (क) हाटे बाटे। १५. (ष) रूष। १६. (क) वृष। १७. (ष) सूं। १८. (ष) गोष्ट अनत। १९. (क) न्यंद्रा। २०. (ष) अलप। २१. (ष) में ये दो चरण और है—

आरंभी चेला यहि विधि रहै। गोरष सुणौ मछींद्र कहै॥

२२. (ष) 'कौन' के स्थान पर सर्वत्र 'कौण'। यहां पर भी (क) में सर्वत्र 'कौण'। २३. (क) मस्तक। २४. (ष) मुडायबा। २५. (ष) अनत। २६. (क) तत्त। २७. (ष) गुर। २८. (क) सब्द। २९. (ष) मं। ३०. (क) [illegible]। ३१. (ष) उतरिबा।

गोरष—स्वांमीं आदेस का कौंन उपदेस, सुंनि[1] का कथं वास ।

सबद[2] का कौंन गुरू, पूछंत[3] गोरषनाथ[4] ॥५॥

मछिंद्र—अवधू आदेस का अनूपम[5] उपदेश, सुंनि[1] का निरंतर वास ।

सबद का परचा गुरू, कथंत मछिंद्र[6] नाथ ॥६॥

गोरष—स्वांमीं मनका कौन रूप, पवन का कौंन आकार ।

दंम की कौंन दसा, साधिवा कौंन द्वार[7] ॥ ७ ॥

मछिंद्र—अवधू मन का सुंनि रूप, पवन का निरालंभ[8] आकार ।

दंम[9] की अलेष दसा, साधिवा दसवैं[10] द्वार ॥ ८ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंन पेड़ि[11] बिन डाल[12], कौंन पंषि[13] बिन सूवा ।

कौंन पालि बिन नीर, कौंन बिन कालहि[14] मूवा ॥९॥

मछिंद्र—अवधू पवन पेड़ बिन डाल, मन पंषि बिन सूवा ।

धीरज पालि बिन नीर, निंद्रा बिन कालहि[14] मूवा ॥१०॥

गोरष—स्वांमीं कौंन बीरज कौंन षेत्र । कौंन सरवंण[15] कौंन नेत्र ।

कौंन जोग कौन जुगत्ति[16] । कौंन मोक्ष कौंन मुकति[16] ॥११॥

मछिंद्र—अवधू मंत्र बीरज मति[17] षेत्र । सुरति श्रवणं निरति नेत्र ॥

ऊरम[18] जोग धूरम[19] जुगती[20] । जोति मोक्ष[21] ज्वाला मुकति[16] ॥१२॥

गोरष—स्वांमीं कौंन मूल कौंण बेला । कौण गुरू कौंण चेला ॥

कौंण षेत्र कौंण मेला[22] । कौंण तत्व ले रमैं[23] अकेला ॥१३॥

मछिंद—अवधू मन मूल पवन बेला सबद गुरू सुरति चेला ॥

त्रिकुटी षेत्र उलटि मेला । नृबांण तत्व ले रमौ[23] अकेला ॥१४

---

१. (क), (घ) सुनि । २. (क) शब्द । ३. (घ) पूछत जती । ४. (क) गोर्षनाथ । ५. (घ) अनोपम । ६. (घ) श्रीमछिंद्र । ७. (घ) दवार । ८. (घ) निरालंब । ९. (घ) दम । १०. (क) दस्वां । ११. (घ) पेड़ । १२. (घ) 'बिन' के स्थान पर सर्वत्र 'बिण' । १३. (घ) पंष । १४. (घ) कालि । १५. (घ) भवण । १६. (घ) जुकति...मुक्ति । १७. (क) बधि । १८. (क) ऊर्म । १९. (क) धूरिम २०. (घ) जुक्ति...मुक्ति । २१. (घ) मोषि । २२. यह चरण (क) में नहीं है । २३. (क) फिरौं ।

गोरख—स्वांमीं कौंण घरि चन्द[1] कौंण घरि सूर कौंण घरि काल बजावै तूर
कौंण घरि पंच तत्व[2] समि रहै। सतगुर होइ सु[3]बूझ्यां कहै ॥१५॥
मछिंद्र—अवधू मन घरि चंद पवन घरि सूर। सुंनि[4] घरि काल बजावै तूर॥
ग्यांन घरि पंच तत्व समि रहै। सतगुर होइ सु[3]बूझ्यां कहै ॥१६॥
गोरष—स्वांमीं कौंण अमावस कौंण स[5] पड़िवा॥
कहां का महारस कहां ले[6] चढ़िवा।
कौंण अस्थांने मन उनमन[7] रहै। सतगुर होइ सुबूझ्यां कहै ॥१७॥
मछिंद्र—अवधू रवि अमावस चन्द सु[3] पड़िवा।
अरध का महारस उरध ले[8] चढ़िवा॥
गगन अस्थांनैं मन उनमन[7] रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥१८॥
गोरष—स्वांमीं कु-सबद[9] का कौंण ग्रास। सु-सबद[9] का कथं बास॥
द्वादस अंगुल षाई कौंण गुषि रहै। सतगुर होइ सु बूझ्[10]यां कहै ॥१९
मछिंद्र—अवधू कुसबद[9] का सुसबद[9] ग्रास। सुसबद का निरंतर बास॥
द्वादस अंगुल षाई गुरमुषि रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥२०
गोरष—स्वांमीं आदि का कौंण गुरू। धरती का कौंण भरतार॥
ग्यांन का कौंण अस्थांन। सु[11]नि का कथं द्वार॥ २१॥
मछिंद्र—अवधू आदि का अनादि गुरू। धरती का अम्बर भरतार।
ग्यांन का अस्थांन चैतनि[12]। सु[11]नि का परचा द्वार॥ २२॥
गोरष—स्वांमीं कौंण परचै माया मोह टूटै। कौंण परचै ससि घर फूटै।
कौंण परचै लागै बंध। कौंण परचै थिर ह्वै कंध॥ २३॥
मछिंद्र—अवधू मन परचै माया मोह टूटै[13] पवन परचै ससि घरि फूटै॥
ग्यांन परचै लागै बन्ध। गुरू परचै अजरावर[14] कन्ध ॥२४॥

---

१. चंदा। २. (घ) तत। ३. (घ) स। ४. (क) स्वंन्य; (ग) सुंनि। ५. (घ) में 'स' नहीं। ६. (क) 'कहां ले' नहीं। ७. (घ) उनमनि। ८. (घ) से। ९. (क) कुसब्द सुसब्द। १०. (घ) पूछ्यां। ११. (घ) स। १२. (घ) चातुक। १२. (घ) अस्थांनि चेतनि। १३. (घ) फूटै। १४. (घ) अजरावर।

गोरष—स्वांमीं बसै मन कहां बसै पवन । कहां बसै सबद[1] कहां बसै चंद ।
कौंण असथानें ए तत रहै । सतगुर होय स पूछ्यां कहै[2] ॥२५॥
मछिंद्र—अवधू हिरदै[3] बसै मन[4] नाभी बसै पवन,
रूप[5] बसै सबद गगँन बसै चंद ।
उरध सथांनें ए तत रहै । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै[2] ॥ २६॥
गोरष—स्वांमीं हिरदै[3] न होता, तब कहां रहिता[4] मन[5] ।
नाभि न होती तब कहां रहिता पवन ॥
रूप[6] न होता तब कहां रहिता सबद,
गगन न होता तब कहां रहिता चंद ॥ २७ ॥
मछिंद्र—अवधू हिरदा न होता तब सुंनि रहिता[4] मन ।
नाभी न होता तब निराकार[7] रहिता पवन ॥
रूप[5] न होता तब अकुलान[8] रहिता सबद ।
गगन न होता तब अंतरप रहिता चंद ॥ २८ ॥
गोरष—स्वांमीं राति[9] न होतीं दिन कहां थैं आया ।
दिन प्रसर्‌या[10] राति[9] कहां समाया ॥
दिवा बुझांनां जोति कहाँ लीया वास ।
प्यंड[11] न होता तब प्रांण का कौंण बेसास ॥ २९ ॥
मछिंद्र—अवधू राति[9] न होती दिन सहजैं आया,
दिन प्रसर्‌यां[10] राति[9] सहजैं समाया ।
दिवा बुझांनां जोति निरन्तरि[12] लीया वास[13],
प्यंड न होता तब प्रांण का सुंनि बेसास[13] ॥३०॥

---

१. (क) सब्द । २. अन्तिम दोनों चरण (क) में नहीं हैं । ३. (क) हृदै । ४. (घ) होता । ५. (घ) मन । ६. (घ) रूपे । ७. (घ) निरलंकार । ८. (घ) सुनि । ९. (घ) रात्री । १०. (घ) प्रकासै; (क) प्रसंन्यां । ११. (घ) पिण्ड । १२. (क) निरन्तर । १३. (घ) बासा...बेसासा ।

गोरष—स्वांमीं काया मधे कै लष चंद । पुहुप[1] मधे कहां वसै गंध ।
दूध मधे कहां वसै घीव । काया मधे कहां वसै जीव ॥३१॥
मछिंद्र—अवधू काया मधे द्वै लष चंद । पहूप[1] मधे चेतनि[2] गंध ।
दूध मधे निरंतर वसै घीव । काया मधे सरव[3]व्यापीक[4]जीव ॥३२
गोरष—स्वांमीं कहां वसैं चंद कहां वसैं सूर । कहां वसैं नाद[5]विंद का मूर ।
कहां होइ हंसा पीवै पांणीं, उलटी सक्ति[6]आप घरि आंणीं ॥३३॥
मछिंद्र—अवधू उरधैं वसै चंद, अरधैं वसै सूर ।
हिरदै वसै नाद विंद का मूर[7] ।
गगन चढ़ि हंसा पीवै[8] पांणीं । उलटी सक्ति आप घरि आंणीं ॥३४॥
गोरष—स्वांमीं कथं उतपन्यों[9]नादं, कथं नाद समभवते[10] ।
कौंण ले थापते[11]नादं, कथं नादं[12]विलीयते ॥ ३५ ॥
मछिंद्र—अवधू ॐकार उतपनते[13] नादं, नाद सुन्नि समिभवते[9] ।
पवन ले थापने[11] नादं, नादं निरंजन विलीयते ॥ ३६ ॥
गोरष—स्वांमी नादेन नादिवा विंदेन विंदवा, गगनेन लाइवा[14]आसा ।
नाद विंद दोऊ[15] न होइगा[16], तब प्रांन[17] का कहां होइगा वासा[18] ॥३७॥
मछिंद्र—अवधू नादे भी नादिवा विंदे भी विंदवा[18], गगने भी लाइवो[14] आसा ।
नाद विंद दोऊ न होइगा[19],
तब प्रांण का निरंतर[19]होइगा[19]वासा ॥ ३८ ॥
गोरष—स्वांमी अकार कुटिमी निराकार होइसी[20], पवन न होसी पांणीं ।
चंद सूर दोऊ न होसी, तब हंस कौं कौन सहनांणीं[21] ॥३९॥

---

१. (घ) पहोप । २. (क) चेतनां । ३ (क) सब । ४. (घ) व्यापी । ५. (क) नाद । ६. (घ) सुगंधि । ७. (घ) मूल । ८. (क) सगति । (घ) उतपनों । १०. (घ) समिभवंते । ११ (घ) थापिते । १२. (क) नाद । १३. (ग) उतपनते । १४. (घ) लाइवा । १५. (घ) दोऊ । १६. (घ) यहां 'होइगा' । १७ (घ) प्राण । १८. (क) बिंदिवा । १९. (घ) प्राण पुरष का निरन्तरि । २०. (घ) होसी । २१ (घ) सिहनाणी ।

मछिंद्र—अवधू सहज हंस का पेल मणीजै, सुंनि हंस का बास[1]।
सहजैं हीं[2] आकार निराकार[3] होइसी,
परम[4] जोति हंस का निवास[1] ॥ ४० ॥

गोरष—स्वांमीं अमूल का कौंण मूल, मूल का कथं बास।
पद का कौंण गुरू, पूछंत[5] गोरष नाथ ॥ ४१ ॥

मछिंद्र—अवधू अमूल का सुंनि मूल, मूल का निरन्तर बास।
पद का निरबांन[6] गुरू, कथंत मछिंद्र[7] नाथ ॥ ४२ ॥

गोरष—स्वांमीं जी कथं उतपदिते प्रांण, कथं उदपदिते मन[8]।
कथं उदपदिते बाचा, कथं बाचा बिलीयते[9] ॥ ४३ ॥

मछिंद्र—अवधू अवगति उतपदिते प्रांण, प्रांण उदपदिते मन[10]।
मन उदपदिते बाचा, बाचा मन बिलीयते ॥ ४४ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंन सरोवर कौंण सनाल। कौंण मुष[10] होइ बंचिये[11] काल।
लोक अगोचर कैसें लिव[12] लहै। मन पवन कैसें समि रहै ॥४५॥

मछिंद्र—अवधू मन सरोवर पवन सनाल।
उरध[13] मुष होइ बंचिये जंम काल ॥
अरध उरध[14] अगोचर लिव[12] लहै। मन पवन ऐसें समि रहै ॥४६॥

गोरष—स्वांमीं कौंन सो विषमीं कौंण सो[15] संधि[16]। कौंणें चक्रो लागै[17] बंध।
कौंणें[18] चेतनि मन उनमनि रहै। सतगुर होइसु[5] बूझां कहै ॥४७॥

मछिंद्र—अवधू अनली विमली विषमीं संधि। चाकी[19] ऊपरि लागै बन्ध।
सदा चेतनि मन उनमन रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥४८॥

---

१. (घ) बासा...निवासा। २. (घ) सहज ही। ३. (घ) निरांकार। ४. (क) पर्म। ५. (घ) पूछंत जवी। ६. (क) नृबांण। ७. (घ) श्री म...। ८. (घ) मँन। ९. (क) में ४३, ४४ नहीं हैं। १०. (घ) मुषि। ११. (घ) बांचीवा। १२. (घ) ल्यौ। १३. (क) उरद। १४. (घ) अर्ध उर्ध। १५. (घ) स। १६. (घ) सिध। १७. (घ) कौंण हीं चक्री लागै। १८. (घ) कौंण। १९. (घ) चौकी।

गोरष—स्वांमीं काया मधे कै लष चंद। पुहुप[1] मधे कहां बसै गंध।
दूध मधे कहां बसै घीव। काया मधे कहां बसै जीव ॥३१॥

मछिंद्र—अवधू काया मधे द्वै लष चंद। पहूप[1] मधे चेतनि[2] गंध।
दूध मधे निरंतर बसै घीव। काया मधे सरब[3] व्यापीक[4] जीव ॥३२

गोरष—स्वांमीं कहां बसैं चंद कहां बसैं सूर। कहां बसैं नाद[5] बिंद का मूर।
कहां होइ हंसा पीवै पांणीं, उलटी सक्ति[6] आप घरि आंणीं ॥३३॥

मछिंद्र—अवधू उरधैं बसै चंद, अरधैं बसै सूर।
हिरदै बसै नाद बिंद का मूर[7]।
गगन चढ़ि हंसा पीवै[5] पांणीं। उलटी सक्ति[6] आप घरि आंणीं ॥३४॥

गोरष—स्वांमीं कथं उतपन्यों[8] नादं, कथं नाद समभवते[10]।
कौंण ले थापते[11] नादं, कथं नादं[12] विलीयते ॥ ३५ ॥

मछिंद्र—अवधू ॐकार उतपतते[12] नादं, नाद सुंन्नि समिभवते[9]।
स्रवन ले थापते[11] नादं, नादं निरंजन विलीयते ॥ ३६ ॥

गोरष—स्वांमीं नादेन नादिबा बिंदेन बिंदबा, गगनेन लाइबा[14] आसा।
नाद बिंद दोऊ[15] न होइगा[16], तब प्रांन[17] का कहां होइगा बासा[18] ॥३७॥

मछिंद्र—अवधू नादे भी नादिबा ब्रिंदे भी बिंदवा[18], गगने भी लाइबी[14] आसा।
नाद ब्रिंद दोऊ न होइगा[16],
तब प्रांण का निरंतर[19] होइगा[16] बासा ॥ ३८ ॥

गोरख—स्वांमीं अकार छुटिसी निराकार होइसी[20], पवन न होसी पांणीं।
चंद सूर दोऊ न होसी, तब हंस की कौन सहनांणीं[21] ॥३९॥

---

१. (घ) पहोप। २. (क) चेतनां। ३. (क) अत्र। ४. (घ) व्यापी। ५. (क) नांद। ६. (घ) सुरति। ७. (घ) मूल। ८. (क) पावै। (घ) उतपनते। १०. (घ) समिभवंते। ११. (घ) सथापिते। १२. (क) नाद। १३. (व) उत्पदिते। १४. (घ) लायबा। १५. (घ) दोऊं। १६. (घ) सर्वत्र 'होयगा'। १७. (घ) प्रांण। १८. (क) ब्यंदिबा। १९. (घ) प्राण पुरस का निरन्तरि। २०. (घ) होसी। २१ (घ) निसांणी।

मछिंद्र—अवधू सहज हंस का षेल मणीजै, सुंनि हंस का वास[1]।
सहजैं हीं[2] आकार निराकार[3] होइसी,
परम[4] जोति हंस का निवास[1] ॥ ४० ॥

गोरष—स्वांमीं अमूल का कौंण मूल, मूल का कथं वास।
पद का कौंण गुरू, पूछंत[5] गोरष नाथ ॥ ४१ ॥

मछिंद्र—अवधू अमूल का सुंनि मूल, मूल का निरन्तर वास।
पद का निरवांन[6] गुरू, कथंत मछिंद्र[7] नाथ ॥ ४२ ॥

गोरष—स्वांमीं जी कथं उतपदिते प्रांण, कथं उदपदिते मन[8]।
कथं उदपदिते वाचा, कथं वाचा बिलीयते[9] ॥ ४३ ॥

मछिंद्र—अवधू अव्रगति उतपदिते प्रांण, प्रांण उदपदिते मन[10]।
मन उदपदिते वाचा, वाचा मन बिलीयतं ॥ ४४ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंन सरोवर कौंण सनाल। कौंण मुष[10] होइ बंचिये[11] काल।
लोक अगोचर कैसैं लिव[12] लहै। मन पवन कैसैं समि रहै ॥४५॥

मछिंद्र—अवधू मन सरोवर पवन सनाल।
उरध[13] मुष होइ बंचिये जंम काल॥
अरध उरध[14] अगोचर लिव[12] लहै। मन पवन ऐसैं समि रहै ॥४६॥

गोरष—स्वांमीं कौंन सो विषमीं कौंण सो[15] संधि[16]। कौंणैं चक्रो लागै[17] बंध।
कौंणं[18] चेतनि मन उनमनि रहै। सतगुर होइसु[15] बूझ्यां कहै ॥४७॥

मछिंद्र—अवधू अनली बिमली बिषमीं संधि। चाको[19] ऊपरि लागै बन्ध।
सदा चेतनि मन उनमन रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥४८॥

---

१. (घ) वासा...निवासा। २. (घ) सहज ही। ३. (घ) निरांकार। ४. (क) पर्म। ५. (घ) पूछंत जती। ६. (क) न्रवांण। ७. (घ) श्री म...। ८. (घ) मँन। ९. (क) में ४३, ४४ नहीं हैं। १०. (घ) मुषि। ११. (घ) बांचीवा। १२. (घ) ल्यौ। १३. (क) उरद। १४. (घ) अर्ध उर्ध। १५. (घ) ष। १६. (घ) सिंघ। १७. (घ) कौंण हीं चक्री लावै। १८. (घ) कौंण। १९. (घ) चौकी।

गोरष—स्वांमीं कहां उतपन्यां व्यापक[1], कहां आदि की अस्तुत समाई[2]।
ए तत्व कहो गुरू गुसांई[3] जहां हमारी उत्पति रहाई[4] ॥ ४६ ॥

मछिंद्र—अवधू तिल मधे जथा तेलं, काष्ट मधे हुतासनं[5]।
पहुप मधे जथा बासं, देही[6] मधे तथा देवता ॥ ५० ॥

गोरष—स्वांमीं सापणि[7] कुहकै कौंणैं भाइ[8]। बङ्क नालि है[9] कौंणैं ठांइ[9]॥
जब[9] यहि प्रांणीं निंद्रा[10] करै, पिंड[11] मधे प्रांण[12] कहां होइ रहै ॥५१॥

मछिंद्र—अवधू सांपणि कुहकै[7] सहज सुभाइ[13]।
बङ्क नालि है नाभी ठांइ[13] ॥
जब यहि प्रांणीं निंद्रा[10] करै, पिण्ड[11] मधे प्रांण[12] अपरछन[13] रहै ॥५२॥

गोरष—स्वांमीं कौंणैं चक्रैं दिढ़[14] करि चंद। कौंणैं चक्रैं लागै बन्ध ॥
कौंणैं चक्रैं निपावै निरोध[15]। कौंणैं चक्रैं मन प्रमोध[16] ॥
कौंणैं चक्रैं धारिये ध्यांन[16]। कौंणैं चक्रैं लीजै बिश्रांम ॥५३॥

मछिंद्र—अवधू अरधैं चक्रैं[17] दिढ़ करि चंद। उर्धैं चक्रैं लागै बन्ध ॥
पछिम चक्रैं निपावै निरोध। हिरदा चक्र मैं मन प्रमोध ॥
कांठै चक्रैं धरिये ध्यांन। ग्यांनैं चक्रैं लीजै बिश्रांम ॥५४॥

गोरष—स्वांमीं कौंन उदै[18] माया[19] सुन्नि। नौ[20] ग्रह कैसैं[21] पाप न पुन्नि[19] ॥
कौंन ग्रह लै उनमन रहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै ॥५५॥

---

१. (क) में 'व्यापक', और 'समाई', नहीं। २. (घ) असूतति। ३. (घ) इ तत गुसांई कही समझाई। ४. (क) में 'रहाई' नहीं है। ५. (।) होताशनं। ६. (घ) 'देही' के पहले 'यूं' है और 'मधे' के बाद 'तथा' नहीं है ७. (घ) अपणी। (घ) भाय...ठांय। ७. (घ) कहोकै। ८. (घ) है। ९. (क) में जब 'यहि' के स्थान पर 'कहां कहां' है। १०. (क) न्यद्रा। ११. (क) प्यंड। १२. (घ) प्रांण पुरस। १३. सुभाई...ठांई। १३. (घ) अपरछुन्द। १४. (६) में ५३, ५४ छन्दों में यहां सर्वत्र 'कौंणैं' के स्थान पर 'कौंण' और 'चक्रैं' के स्थान पर 'चक्रमैं' है तथा चक्रों के नाम विभक्ति रहित हैं। १५. (क) पवन निरोधै। १६. (घ) प्रमांधै। १७. (घ) धरै धियांन। १८. (क) में माया से पहले 'सु'। १९. (घ) सुन...पुनि। २०. (घ) नवग्रहे। २१. (घ) सु।

मछिंद्र—अवधू बोलता जैसै माया सुंनि[1], नवग्रह[2] विचारै पाप न पुनि[1]।
सिव सकती ले उनमन[3] रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहैं ॥ ५६॥

गोरख—स्वांमीं कौंण घर कौंण वास। कौंण गरभि[4] रह्या[5] दस मास।
कौंण मुषि पांणीं कौंण मुषि अस्तुति[6] षीर,
कौंण दिसा भई उतपति[7] सरीर ॥ ५७ ॥

मछिंद्र—अवधू अतीत गृह[8] अविगत[9] बास,
अतीत गरभि[4] रह्या[5] दस मास।
मन मुंप पांणीं पवन मुषि अस्तुति[6] षीर,
ओंकार दिसा भइ उतपति[7] सरीर ॥ ५८ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंण नालि[10] सिव संचरया, कौंण मुंषि पईठा[11] जीव।
कौंण गरभि[4] बसंतडां, कौंण नालि रस पीव ॥ ५९ ॥

मछिंद्र—अवधू संषनि[12] नालि[13] सिव संचरया, सुषमनि[14] पईठा[15] जीव।
माता गरभि[4] बसंतडां, वङ्क नालि रस पीव ॥ ६० ॥

गोरप—स्वांमीं कौंन सुंनि उतपनां आइ। कौंण सुंनि सतगुरू बुझाइ[15]
कौंन सुंनि मैं रह्या समाइ। ए तत्वा[16] गुरू कहौ समुझाइ ॥ ६१ ॥

मछिन्द्र—अवधू सहज सुंनि उतपनां आइ। समि सुंनि सतगुरू बुझाइ[17]।
अतीत सुंनि मैं रह्या समाइ। परम तत्व[16] मैं[18] कहूँ समझाइ ॥ ६२ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंण मुषि लागै समाधि। कौंण मुपि छूटै उपाधि।
कौंण मुषि ले[19] तुरिया[20] बन्ध[21]। कौंण मुपि अजरांवर[22] कंध ॥ ६३ ॥

---

१ (घ) सुनि...पुनि। २. (घ) नवग्रहै। ३. (घ) उनमनि। ४. (क) ग्रम। ५. (घ) रह्या। ६. (घ) असतुति। ७. (घ) उतपति भया। ८. (घ) घर। ९. (घ) अवगति। १०. (घ) नालिके बाद 'होय' है। ११. (घ) पैठा। १२. (घ) संषनी। १३. (घ) में 'नालि' के बाद 'है'। १४. (क) सुषसिम। १५. (घ) समुझाया। इन छन्दों में तुकांत सर्वत्र 'इ' के स्थान पर 'य' है। १६. (घ) तत। १७. (घ) सतगुर समुझाय। १८. (घ) में 'मैं' नहीं १९. (घ) जु। २०. (घ) तुरीया। २१. (क) बंधि। २२. (घ) अजरांवर।

मछिंद्र—अवधू[1] मन मुषि बाला लागै समाधि ।

पवन मुषि बाला छूटै उपाधि ।

सुरति मुषि बाला तुरय[2] बन्ध[3] ।

गुर मुषि बाला अजरावर[4] कन्ध ॥६४॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सोवै कौंण जागै । कौंण दहदिसि जाइ[5] ।

कहां थैं[6] उठंत[7] कहां होइ[9] होठ कण्ठ तालुका[8] बजाइ[5] ॥६५॥

मछिंद्र—अवधू मन सोवै पवन जागै, कलपनां दह दिसि जाइ[5] ।

नाभी थैं उठंत[7] पवनां, आगैं होइ[9] होठ कंठ तालुका[10] बजाइ[5] ॥६६

गोरष—स्वांमीं कहां थैं करै मन गुंण घणां ।

कहां थैं करै पवन[11] आवागवनां ।

कौंण मुषि चंदा नीझर[12] झरै[13] । कौंण मुषि काल निद्रा करै ॥६७

मछिन्द्र—अवधू हृदा थैं मन करै गुंण घणां ।

नाभी थैं करै पवन आवागवनां ।

आप मुषि[14] चंदा नीझर[12] झरै[12] ।

मन मुषि काल[15] निन्द्रा[16] करै ॥ ६८ ॥

गोरष—स्वांमीं कौंण तेज[17] थैं जोति पलटै । कौंण सुंनि थै बाचा फुरै ।

कौंण सुंनि थैं त्रिभुवन[18] सार । कौंण सुंनि थैं उतरिया[19] पार ॥६९॥

मछिन्द्र—अवधू उम तेज[17] थैं जोति पलटै । अभय[20] सुंनि थैं बाचा फुरै ।

परम सुंनि[21] थैं त्रिभुवन[22] सार अतीत सुंनि उतरिया[19] पार[23] ॥७०॥

---

१. (घ) 'अवधू' नहीं । २. (घ) तुरीया । ३. (क) बंधि । ४. (घ) अजरांवर । ५. (घ) दिहिदिस ध्यावै ..बजावै । ६. (घ) तैं । ७. (घ) ऊठन्त । ८. (घ) ताल । ९. (घ) में 'आगै होइ' नहीं है; (क) करै १०. (घ) तालिका ११. (घ) पवन करै । १२. (घ) नींझर । १३. (घ) करै । १४. (घ) आपि मुषी । १५. (क) प्रांणी । १६. न्यंद्रा । १७. (घ) सुन्नि । १८. (घ) त्रिभवन । १९. (घ) ऊतरिया । २०. अभै । २१. (क), (घ) सुनि । २२, (घ) त्रिभवन । २३. (घ) पारि ।

गोरष—स्वांमीं कथं[1] उतपनीं[2] षुध्या, कथं उतपनां अहार।
कथं उतपनीं[3] निंद्रा[4], कथं उतपनां काल ॥ ७१ ॥

मछिन्द्र—अवधू मनसा[5] उतपनीं[6] षुध्या, षुध्या उतपनां[7] अहार[8]।
अहार[8] उतपनीं[6] निंद्रा,[4] निंद्रा उतपनां[7] काल ॥ ७२ ॥

गोरष—स्वांमीं सति सति भाषंत हो[9] गुरू पंडिता, मन पवन[10] कौंण दिसा[11]।
कौंण द्रिष्टि[12] कौंण विधि ग्यांन, नृगंथा पार[13] उतरिबा किसा[14] ॥७३॥

मछिन्द्र—अवधू द्रिष्टि[15] थैं दिब द्रिष्टि[15] होइबा, गिनांन थैं बिनांन[16] होइबा।
तथा गुरू सिष की एकै[17] काया,
परचा होइ तौ बिहड़ि[18] न जाया ॥ ७४ ॥

गोरष—स्वांमीं कहां थैं उठंत[19] सास उसासं। कहां परम हंस का बासं।
कौंण घर मन थिर होइ रहै[20]। सतगुर होइ सु बूझयां[21] कहै॥७५

मछिंद्र—अवधू अरधै[22] उठंत[19] सास उसासं। उरधैं परम हंस का बासं।
सहज सुन्नि मैं मन थिर रहै[23]। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥७६॥

गोरष—स्वांमीं कैसैं आवै कैसैं जाइ। कैसैं चीया रहै समाइ।
कैसैं मन तन[24] सदा थिर[25] रहै। सत गुर होइ सु बूझ्यां[21] कहै ॥७७

मछिंद्र—अवधू सुंने आवै सुंने जाइ। सुंने[26] चीया रहै समाइ।
सहज सुंनि मन तन थिर[25] रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥७८॥

षुध्या = क्षुधा ॥७१॥ गिनांन = ज्ञान। विनांन = विज्ञान ॥ ७४ ॥

---

१. (घ) में सर्वत्र 'कथं' के स्थान कहां थैं। २. (घ) सर्वत्र 'उतपनी'। ३ (घ) मनसा थैं। ४. (क) न्यंद्रा। ५. (घ) सब कारणों में 'थैं'। ६. (क) उत्पनीं। ७. (क) उत्पना। ८. (क) अहारं। ९. (घ) में 'हो नहीं'। १०. (घ) 'पवन' के बाद 'की'। ११. (घ) दसा। १२. (घ) द्रष्टि; (क) दृष्टि। १३. (घ) निग्रन्थ पारि। १४. (क) कैसा। १५. (क) दृष्टि। १६. (घ) ग्यांन थैं बिग्यांन। १७. (घ) एको। १८. (घ) बहौरि। १९. (घ) ऊठंत। २०. (घ) कैसे मनवां निश्चल रहै। २१. (घ) स पूछयां। २२. (घ) अरधतैं। २३. (घ) सहजि अस्थांनि मनषां निसचल रहै। २४. (घ) तन मन। २५. (घ) थिरि। २६. (क) सुने . सुने ... सुने।

गोरष—स्वांमीं कहां वसै सक्ती[1] कहां वसै सीव।

कहां वसै पवनां[2] कहां वसै जीव॥

कहां होइ इनका[3]परचा लहै। सतगुर होइ सुबूझ्यां कहै॥७६॥

मछिंद्र—अवधू अरधैं[4] वसै सक्ती[5] उरधैं[6] वसै सीव।

भींतरि वसै पवनां अंतरी[7] वसै जीव॥

निरंतर[8] इनका[3] परचा लहै। ऐसा विचार मछींद्र कहै॥८०॥

गोरष—स्वांमीं कौंण मुषि[9] वैठै कौंण मुषि[9] चलै।

कौंण मुषि[9] बोलै कौंण मुषि[9] मिलै॥

क्यूं करि स्वांमीं नृभै[10]रहै। सतगुर होइ सुबूझ्यां कहै॥८१॥

मछिंद्र—अवधू सुरति मुषि वैठै सुरति मुषि चलै,

सुरति मुषि बोलै सुरति मुषि मिलै।

सुरति निरति[12]मैं नृभै रहै, ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥८२॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो म १ कौंण सो[15]सुरति।

कौंण सो वंध कौंण सो निरति[16]।

दुवध्या भेटै[17] कैसैं रहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै॥८३॥

मछिंद्र—अवधू सवद अनाहद सुरति सोचित[18]। निरति निरालंम लागै वंध

दुवध्या मेटि सहज मैं रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥८४॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो आसण कौंण सो ग्यांन।

किहि विधि वाला धरै धियांन।

---

१. (घ) सकति। २ (घ) मांश। ३. (घ) यनका। ४. (घ) अरधै। ५. (घ) सक्ति। ६. उरधै। ७. (घ) अंतरीष। ८. (घ) निरन्तरि होय। ६. (घ) 'कौंण मुषि' के स्थान पर 'कैसैं'। १०. (घ) दहुँ मैं; (घ) निरभै। ११. (घ) कौंस सुरति मैं निरभै रहै। १२. (क) सुरति न्यरति; (घ) निरवरति सुरति। १३. (घ) निरगै। १४. (घ) में नहीं है। १५. (घ) स। १६. (घ) स वंध्यौ काया सों निरति। १७. (घ) मेटि र। १८. (घ) तु।

कैसैं अबिगत[1] का मुष लहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै ॥८५

मछिंद्र—अवधू संतोष सो[2] आसण विचार सो[3] ग्यांन।

काया तजि करि धरिये[4] ध्यांन॥

गुरमुष[5] अबिगत[1] का सुष लहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥८६॥

गोरष—स्वांमीं कौंण संतोष, कौंण बिचार। कौंण[6] ध्यांन काया कै पार।

कैसै[7] इन मैं मनसा रहै[8]। सतगर होइ सु बूझ्यां कहै ॥८७॥

मछिंद्र—नृभै संतोष अनभै[9] विचार। दुहू[10] मैं ध्यांन काया कै पार।

गरु मुषि मनसा इन मैं रहै[8]। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥८८॥

गोरष—स्वांमीं पाइ बिन कौंन मारग[11], चषि[12] बिन कौंन दृष्टि।

करण[13] बिन कौंण श्रवण। मुष[14] बिन कौंण सबद ॥८६॥

मछिंद्र—अवधू पाइ बिन बिचार मारग, चषि[12] बिन निरति द्रिष्टी।

करण[13] बिन सुरति श्रवण, मुष[11] बिन[15] लय सबद ॥६०॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो[16] धोवती कौंण सो[11] आचार।

कौंण जाप मन तजै बिकार।

कौंण भाव थैं नृभै[17] रहै। सतगर होइ सु बूझ्यां[18] कहै ॥६१॥

मछिंद्र—अवधू ध्यांन सो[19] ब्रह्मा आचार। अजपा जाप मन तजै बिकार।

आतम भाव थैं[21] नृभै रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥६२॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो ऊँ कौंण सो आप। कौंण सो माई कौंण सो बाप।

कैसैं मन मैं दरियाव[22] रहै। सतगर होइ सु बूझ्यां[23] कहै ॥६३॥

---

१. (घ) अवगति। २. (घ) में नहीं है। ३. (घ) सु। ४. (घ) धरिबा। ५. (घ) गुर मुषि। ६. (क) में नहीं। ७. (क) ऐसैं। ८. (घ) मनवा यन मैं रहै। ६. (क) मनभैं। १०. (घ) दहूँ। ११. (घ) कौंण पाव निण मारग। सब प्रश्न ऐसे ही गठित है। १२. (घ) चषि। १३. (क) कर। १४. (घ) मुषि। १५. (घ) बिनि; ऊपर सर्वत्र 'विण'। १६. (घ) में नहीं। १७. (घ) निरभै। १८. (घ) स पूछ्यां। १९. (घ) में 'सो' नहीं। २०. (घ) बिचार। २१. (घ) अयाभै भाव मैं। २२. (घ) दरिया। २३. (घ) पूछ्यां।

गोरष—स्वांमीं कहां बसै सक्ती[1] कहां बसै सींव।
कहां बसै पवनां[2] कहां बसै जीव॥
कहां होइ इनका[3] परचा लहै। सतगुर होइ सुबूझ्यां कहै॥७९॥
मछिंद्र—अवधू अरधैं[4] बसै सक्ती[5] उरधैं[6] बसै सींव।
भींतरि बसै पवनां अंतरी[7] बसै जींव॥
निरंतर[8] इनका[3] परचा लहै। ऐसा विचार मछींद्र कहै॥८०॥
गोरष—स्वांमीं कौंण मुषि[9] बैठै कौंण मुषि[9] चलै।
कौंण मुषि[9] बोलै कौंण मुषि[9] मिलै॥
क्यूं करि स्वांमीं नृभै[10] रहै। सतगुर होइ सुबूझ्यां कहै॥८१॥
मछिंद्र—अवधू सुरति मुषि बैठै सुरति मुषि चलै,
सुरति मुषि बोलै सुरति मुषि मिलै।
सुरति निरति[12] मैं नृभै रहै, ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥८२॥
गोरष—स्वांमीं कौंण सो [illegible] कौंण सो[15] सुरति।
कौंण सो वंध कौंण सो निरति[16]।
दुबध्या भेटै[17] कैसैं रहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै॥८३॥
मछिंद्र—अवधू सबद अनाहद सुरति सो चिंत[18]। निरति निरालंभ लागै बंध
दुवध्या मेटि सहज मैं रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥८४॥
गोरष—स्वांमीं कौंण सो आसण कौंण सो ग्यांन।
किहि विधि बाला धरै धियांन।

---

१. (घ) सकति। २ (घ) प्रांण। ३. (घ) यनका। ४. (घ) अरधे। ५. (घ) सक्ति। ६. उरधे। ७. (घ) अंतरीष। ८. (घ) निरन्तरि होय। ९. (घ) 'कौंण मुषि' के स्थान पर 'कैसैं'। १०. (घ) दहुँ मैं; (घ) निरभै। ११. (घ) कौण सुरति मैं निरभै रहै। १२. (क) सुरति न्यरति; (घ) निरखरति सुरति। १३. (घ) निरभै। १४. (घ) मे नहीं है। १५. (घ) स। १६. (घ) स ध्यों काया सौं निरति। १७. (घ) मेटि र। १८. (घ) सु।

कैसैं अबिगत[1] का सुष लहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै ॥८५॥

मछिंद्र—अवधू संतोष सो[2] आसण बिचार सो[3] ग्यांन।

काया तजि करि धरिये[4] ध्यांन॥

गुरमुष[5] अबिगत[1] का सुष लहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥८६॥

गोरष—स्वांमीं कौंण संतोष, कौण बिचार। कौंण[6] ध्यांन काया कै पार।

कैसैं[7] इन मैं मनसा रहै[8]। सतगर होइ सु बूझ्यां कहै ॥८७॥

मछिंद्र—नृभै संतोष अनभै[9] बिचार। दुहु[10] मैं ध्यांन काया कै पार।

गरु मुषि मनसा इन मैं रहै[9]। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥८८॥

गोरष—स्वांमीं पाइ बिन कौंन मारग[11], चषि[12] बिन कौंन दृष्टि।

करण[13] बिन कौंण श्रवण। मुष[14] बिन कौंण सबद ॥८९॥

मछिंद्र—अवधू पाइ बिन बिचार मारग, चषि[12] बिन निरति द्रिष्टी।

करण[13] बिन सुरति श्रवण, मुष[14] बिन[15] लय सबद ॥९०॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो[16] ध्यांन कौंण सो[16] आचार।

कौंण जाप मन तजै बिकार।

कौंण भाव थैं नृभै[17] रहै। सतगर होइ सु बूझ्यां[18] कहै ॥९१॥

मछिंद्र—अवधू ध्यांन सो[19] ब्रह्मा आचार। अजपा जाप मन तजै बिकार।

आतम भाव थैं[21] नृभै रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥९२॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो ॐ कौंण सो आप। कौंण सो माई कौंण सो बाप।

कैसैं मन मैं दरियाव[22] रहै। सतगर होइ सु बूझ्यां[23] कहै ॥९३॥

---

१. (घ) अबगति। २. (घ) में नहीं है। ३. (घ) सु। ४. (घ) धरिबा। ५. (घ) गुर मुषि। ६. (क) में नहीं। ७. (क) ऐसैं। ८. (घ) मनवा मन मैं रहै। ९. (क) मनसैं। १०. (घ) दहूँ। ११. (घ) कौंण पाव त्रिण मारग। सब प्रश्न ऐसे ही गठित है। १२. (घ) चषि। १३. (क) कर। १४. (घ) मुषि। १५. (घ) बिनि; ऊपर सर्वत्र 'बिण'। १६. (घ) में नहीं। १७. (घ) निरसैं। १८. (घ) स पूछयां। १९. (घ) में 'सो' नहीं। २०. (घ) बिचार। २१. (घ) अणभै भाव मैं। २२. (घ) दरिया। २३. (घ) पूछयां।

मछिंद्र—अवधू सबद सो ॐ जोति सो आप ।
सुंनि सोई माई चेतनि बाप ।
निह्चल[1] मन मैं दरियाव[2] रहै ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥६१॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो चेतनि[3] कौंण सार । कौंण निंद्रा कौण[3] काल ।
कौंण महि[4] पांचौं तत्व[5] समि रहै[6] ।
सतगुर होइ सु बझ्यां[7] कहै ॥ ८५ ॥

मछिंद्र—अवधू जोति चेतनि निरमै[8] सार । जागिबा उतपत[9] निंद्रा काल ।
जोति महि पाँचौं तत्व[5] समि रहै[6] । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥६६॥

गोरष—स्वांमीं कौंण बोलै कौंण सोवै । कौंण रूप मैं आपा जोवै ।
कौंण रूप मैं जुगि जुगि रहै । सतगुर होइ सु बूझ्यां[7] कहै ॥६७॥

मछिंद्र—अवधू सबद बोलै सक्ति सोवै । अदेष रूप मैं आपा जोवै ।
अरूप रूप मैं जुगि जुगि रहै । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥६८॥

गोरष—स्वांमीं कौंण मुपि[10] रहणीं कौंण मुषि[10] ध्यांन,
कौंण मुषि[10] अमीं रस कौंण मुषि[10] पांन[11] ।
कौंण मुषि[10] छेदि[12] वदेही[13] रहै
सतगुर होइ सु बुझ्यां[7] कहै ॥ ९६ ॥

मछिन्द्र—अवधू सहज[14] मुषि[10] रहणीं सक्ति[15] मुषि[10] ध्यांन,
गगन मुपि[10] अमींरस[16] चित मुषि पांन ।
आसा मुषि छेदि[12] वदेही[13] रहै । ऐसा विचार मछिन्द्र कहै ॥१००

गोरष—स्वांमीं कौंण मुपि आवे कौंण मुषि जाइ ।
कौंण मुपि होइ काल कौं[17] पाइ ।

---

१. (घ) निहिचल । २. (घ) दरिया ।३. (घ) 'स' अधिक । ४. (घ) मैं । ५. (घ) पंच तत । ६. (घ) जरि रहै । ७. (घ) पूछयां । ८. (क) निरभय । ९. (घ) उतपनि । १०. (क) मुप । ११. (घ) हंस । १२. (क) छेदै । १३. (घ) विदेही । १४. (क) अयन्च । १५. (घ) सकति । १६. (घ) अमीरस । १७. (घ) कूं ।

कौंण मुषि[1] होइ जोति मैं रहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां[2] कहै॥१०१

मछिंद्र—अवधू सहज मुषि[1] होइ आवै सक्ति मुषि[1] होइ जाइ।
निपष[3] होइ काल कौं षाइ॥
निरास मुषि होइ जोति मैं रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥१०२॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो काया कौंण सो[4] प्रांण,
कौंण पुरिस का करिये[5] ध्यांन।
कौंण अस्थांन घरि[6] काल सौं रहै,
सतगुर होइ[7] सुबूझ्यां कहै॥१०३॥

मछिंद्र—अवधू पवन सो काया मन सो प्रांण,
परम पुरिस का धरिये[5] ध्यांन।
सहज अस्थांन घरि[8] काल सौं रहै, ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥१०४

गोरष—स्वांमीं कौंण सो कूंची कौंण सो ताला,
कौंण सो बूढ़ा कौंण सो बाला।
कौंण अस्थांन[9] मन चेतनि[10] रहै। सतगुर होइ सु बूझ्यां कहै॥१०५

मछिंद्र—अवधू निहसबद[11] कूंची सबद[12] ताला।
अचेत[13] बूढ़ा चेतनि बाला।
ग्यांन अस्थांन[14] मन चेतनि[10] रहै। ऐसा विचार मछिंद्र कहै॥१०६

गोरष—स्वांमीं कौंण सो साधिक[15] कौंण सो सिधि[16],
कौंण सो माया कौंण सो रिधि।
कैसैं मन की भ्रांति नसाइ। गुरू गुसांई[17] कहौ समझाइ॥१०७॥

---

१. (क) मुष। २. (घ) स पूछयां। ३. (क) नृपषि। ४. (घ) ष। ५. (घ) धरीए। ६. 'अस्थांन घरि' के स्थान पर (घ) 'स्थानि मन'। ७. (घ) में भी 'होइ'। ८. (घ) अस्थांन घरि' के स्थान पर 'सथानि मन'। ९. (घ) सथांन। १०. (घ) उनमन। ११. (घ) निहिसबद। १२. (क) सब्द। १३. (घ) अचेतनि। १४. (घ) अस्थानि। १५. (घ) समाधि १६. (क) सिध। १७. (घ) सतगुर सांई।

मछिंद्र—अवधू सुरति सो[1] साधिक[2] सबद सो सिधि ।
आप सों माया पर[3] सो रिधि ।
दुहूँ को मेटि निरति[5] मैं रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै[4] ॥१०८॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो सांचा[6] कौंण सो रांग[7] ।
कौंण आभूषण चढ़ैं सुरंग[8] ।
तामैं निहचल[9] कैसैं रहै । सतगुर होइ सुबूझयां कहै ॥१०९॥

मछिंद्र—अवधू ग्यांन सो सांचा[6] प्रांण सो रङ्ग*,
जत[10] आभूषण चढ़ै सुरङ्ग* ।
तामहि निहचल[9] उनमन[11] रहै । ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥११०॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो मंदिर[12] कौंण सो देव । कहां बैसि करि कीजै सेव ।
कौंण सो पाती किहि बिध[13] रहै, सतगुर होइ सु बूझयां कहै॥१११॥

मछिंद्र—अबधू सुनि सो मंदिर[12] मन सो देव । बैसि[14] निरंतर कीजै सेव ।
पांचों पाती उनमनि रहै । ऐसा विचार मछिंद्र कहै ॥११२॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो[15] मंदिर[12] कौंण सो द्वार । कौंण सो[15] मूरति कौंण अपार
कौंण रूप मन उनमन[16] रहै । सतगुर होइ सु बूझयां कहै ॥११३॥

मछिंद्र—अवधू सुंनि सो[15] मंदिर[12] सबद सो द्वार ।
जोति सो मूरति ज्वाला अपार ।
रूप अरूप[16] मन उनमनि रहै । ऐसा विचार[17] मछिंद्र कहै ॥११४॥

गोरष—स्वांमीं कौंण सो दीवा कौंण प्रकास । कौंण बाती तेल निवास ।
कैसैं दीवा अविचल[18] रहै । सतगुर होइ सु बूझयां कहै ॥११५॥

---

१. (घ) 'सो' नहीं । २. (घ) समाधिक । ३. (घ) परा । ४. (घ) में अंतिम दो चरण इस प्रकार हैं—दहूँ के मेटै भ्रांति नसाय । ऐसा वचन कहै गुरराय ॥ ५. (घ) निति । ६. (घ) साचा । ७. (घ) रंग । ८. (क) स्वामि । ९. (घ) निहिचल । १०. (घ) जोति । ११. (घ) उनमनि । १२. (घ) मिंदर । १३. (घ) 'किहि बिधि' के स्थान पर 'कैसैं' । १४. (घ) बैठि । १५. (क) में नहीं हैं । १६. (घ) अरूप रूप । १७. (क) बिचार । १८. (घ) निहिचल ।

मछिंद्र—अवधू ग्यांन सो[1] दीवा सबद प्रकास। संतोष बाती तेल निवास
दुबध्या मेटि अषंडित रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥११६॥
गोरष—स्वांमीं कौंण सो[2] बैठा कौंण सो[2] चल्या,
कौंण सो[2] फिरथा कौंण सो[2] मिल्या।
कौंण सो[1] घरि मैं निरभै[3] रहै। सतगुर होइ सु[1] बूझ्यां कहै ॥११७॥
मछिंद्र—अवधू धीरज बैठा[4] चल्या बिकार।
सुरति सो फिरथा[5] मिल्या सोइ[7] सार।
सदा अतीत घरि निरभै[3] रहै। ऐसा बिचार मछिंद्र कहै ॥११८॥
गोरष—स्वांमीं कौण सो[1] जोगी कैसैं रहै। कौंण सो[1] भोगी कैसैं लहै।
सुष मैं कैसे[8] उपजै पीर। तामैं कौंन बंधावै धीर ॥११९॥
मछिंद्र—अवधू मन जोगी जै[9] उनमनि रहै।
उपजै महारस सब सुष लहै।
रस हीं मांहि अषंडित[10] पीर। सतगुर सबद[11] बंधावै धीर ॥१२०
गोरष—स्वांमीं कौंण सु[1] आत्मां आवै जाइ। कौंण सु[1] आत्मां रहै समाइ
कौंण सो[1] आत्मां त्रिभुवन[12] थीर। कौंण[13] परचै बांवन[14] बीर ॥१२१॥
मछिंद्र—अवधू पवन सो[1] आत्मां आवै जाइ,
मन सो[1] आत्मां सुंनि समाइ।
ग्यांन सो आत्मां त्रिभुवन[12] थीर,
सबद[15] परचै बांवन[14] बीर ॥१२२॥
गोरष—स्वांमीं मन का कौंण जीव, जीव का कौंण बेसास।
बेसास का कौंण आधार, आधार का कौंण रूप ॥१२३॥

---

१. (घ) स। २. (घ) में नहीं। ३. (क) न्रभै। ४. (घ) बैठा धीरज। ५. (घ) सु। ६. (क) फिरि। ७. (घ) सू। ८. (क) कैसे। ९. (क) जे। १०. (घ) ही मांहि अपिडत। ११. (क) सतगुर होइ। १२. (घ) त्रिभवन। १३. (घ) कौंण सा। १४. (क) बावन। १५. (घ) गुरू।

मछिंद्र—अवधू मन का पवन जीव, पवन का सुंनि[1] बेसास[2]।
बेसास[3] का ब्रह्म आधार[4], ब्रह्म का अच्यंत[5] रूप ॥१२४॥
गोरष—स्वांमीं कौंण चक्र थिर होवै[6] कंध। कौंण चक्र[7] अगोचर बंध।
कौंण चक्र मैं हसं निरोधै। कौंण चक्र मैं मन परमोधै[8]।
कौंण चक्र मैं लहै सवाद[9]। कौंण चक्र मैं लागै समाध[10]॥१२५॥
मछिंद्र—अवधू मूल चक्र थिर होवै[5] कंद। गुदा चक्र अगोचर बंध।
मणि[11] चक्र मैं हसं[12] निरोधै। अनहद[13] चक्र मैं चित परमोधै॥
विसुध चक्र मैं लहै सवाद[9]। चंद्र[14] चक्र मैं लागै समाध[10]॥१२६॥
गोरष—ए षटचक्र का जांणै भेव। सो आपैं करता आपैं देव।
मन पवन साधै ते जोगी। जुरा पलटै काया होइ निरोगी ॥१२७॥

पापे न लिप्यते पुन्ये न हरंते ॐनमो सिवाइ ॐ नमो सिवाइ।
श्रीमछिंद्रनाथ पादुका नमस्तते।



१. (क) सुनि। २. (क) आधार। ३. (घ) सुनि। ४. (क) वेसास। ५. (घ) अचित। ६. (घ) थिरि है। ७. (घ) चक्र मैं। ८. (क) प्रमोधै। ९. (घ) स्वाद। १०. (घ) समाधि। ११. (क) मनि। १२. (क) हंसा। १३. (घ) अनाहद। १४. (घ) चंद।

रोमावली

सत[1] पिता रज माता तम करि गाड़ी पाई[2],
लोह मास[2] तुचा नाड़ी ये चारि धात माता की बोलिये[3],
बीरज हाड गूद्र[4] ये तीनि धात पिता की बोलिये,
ए सप्त धात का शरीर बोलिये।
द्वै[5] हाथ द्वै[5] पैर छाती लिलाट घाट[6]अष्टांग[7] जोग बोलिये।
बंद भेद[8] मुद्रा तीन्यूं[8] साधंति[9] ते सिधा[10] बोलिये।
कौंण बंधि बांधिये, कौंण भेद भेदिये, कौंण मुंद्रा मुंदिये[11]
ए बोलिये घट भीतरि। ते कौंण कौंण।
मन[12] बन्धि बांदिये[13] पवन भेद भेदिये बिंद मुंद्रा मुंदिये[11]।
कौंण बिमल[14] बिचारै कौंण षिरै कौंण झरै।
मन बिमल बिचारै सूरज षिरै चंद्र झरै।
हिंद पीर जिंद पीर ए बोलिये घट भींतरि[15]। ते कौंण कौंण।
हिंद पीर बोलिये मन, जिंद पीर बोलिये पवन।
षेचरी भूचरी गुपत प्रगट। ते कौंण कौंण।

गाड़ी पाई='मत्यु प्राप्ति'—(अ), गाड़ा जाना पाया।
षिरै=क्षरित करता (या होता) है, नष्ट करता है।

रोमावली (क) (घ) और (अ) के आधार पर।

१. (घ) मष सत। २. (घ) गाड़े पाए लोह मांस। ३. (घ) में बोलिये बंधीये आदि रूपों में मध्याक्षर में सर्वत्र दीर्घ 'ई' की मात्रा और अंत में यदि टिप्पणी में रूप बतलाया नहीं गया है तो सर्वत्र 'ए'। ४. (घ) गुद मीजी। ५. (५) दोय। ६. (घ) बाट। ७. (क) घाट अष्टांग। ८. (घ) बिंद भेद। ८. (घ) तीन। ९. (घ) साधंत। १० (घ) सिध। (घ) में इसके आगे प्रत्येक प्रश्न 'तौ स्वामी' से आरम्भ हुआ है, और प्रत्येक उत्तर 'तौ अवधू' से। ११. (घ) बंदीये। १२. (घ) में 'मन' के पहले 'अवधू'। १३. (घ) बंध बंधीए। १४. (क) बिमले। १५. (क) 'भींतरि' के स्थान पर सर्वत्र 'भीतरि'।

षेचरी बोलिये मन, भूचरी बोलिये पवन,
गुपत बोलिये ग्यांन, प्रगट बोलिये सरीर।
सरीरारथ परमारथ[१], गूढारथ। ते कौंण कौंण।
सरीरारथ बोलिये सरीर भेद, परमारथ[१] बोलिये प्रांण भेद,
गूढारथ बोलिजै[२] विचार[३]।
चारी[४] पीर बोलिजै[२] घट भींतरि। ते कौंण कौंण।
मन मछिंद्रनाथ[५], पवन[६] ईश्वरनाथ, चेतना[७] चौरंगीनाथ,
ग्यांन श्री[८] गोरषनाथ।
चारि[४] तकबीर बोलिजै घट भींतरि। ते कौंण कौंण।
द्दष्टि कहै क्यूं[९] लीजै दीजै, सुरति कहै क्यूं[९] बोलिये सुणिये[१०],
नासका[११] कहै क्यूं[९] सुगंध वास परमलादि[१२] लीजै,
जिभ्या[१३] कहै क्यूं[९] षाटी मीठी[१४] षाइये।
चारि दिशा बोलिये[१५] घट भींतरि। ते कौंण कौंण।
सबद बोलिये[१६] उत्तर, पवन बोलिये[१६] पछिम,
द्दष्टि बोलिये[१६] दषिण[१७] सुरति बोलिये[१६] पूरब।
चारि आप कला[१८] बोलिये घट भीतरि। ते कौंण कौंण।
ऊरम धूरम जोति ज्वाला[१९]।

परमल=परिमल

१. (क) प्रमारथ। २. (घ) बोलिए। ३ (घ) ज्ञान। ४. (घ) च्या
५. (घ) में 'नाथ' किसी पीर के नाम के साथ नहीं। ६. (घ) सरीर। ७. (
चित। ८. (घ) में 'श्री' भी नहीं। ९. (घ) क्यों। १०. (घ) बोलीये सुणी
११. (घ) नाषिका। १२. (घ) बहन प्रमालादिक। १३. (घ) जिह्वा। १४. (
षाटो मीठो; (क) षाटी मीठा। १५. (घ) बोलीये। १६. (घ) में इस उत्त
'बोलिये' नहीं है। और (क) में पहले 'ते कौंण' नहीं है। १७. (घ) दि
१८. (घ) उपदिसं। १९. (घ) इसके बाद एक वाक्य में 'ऊरम' इन्य
प्रत्येक आप-कला के साथ 'कौंण' जोड़कर प्रश्न पूछा गया है।

ऊरम बोलिये मन, धूरम बोलिये पवन,
जोति बोलिये नेत्र, ज्वाला बोलिये श्रवन।
चारि षांणी बोलिजै घट भींतर। ते कौंण कौंण।
स्वेतरज[1] अंडरज[2] जेरज उदबीरज[3]।
सेतरज[1]बोलिये हाड़, जेरज बोलिये बीरज[4]अंडरज[2] बोलिये नेत्र,
उदवीरज बोलिये रोमावाली।
चारि वांणी बोलिये घट भींतरि। ते कौंण कौंण।
सहज संजम सुपाइ[6] अतीथ[7]।
सहज बोलिये सरीर, संजम बोलिये पवन, अतीत बोलिये परम पद।
महा मुद्रा महां अजाच नम्री[8] महां जोगणी स्यंभू बोलिये[9]।
जे वांणीं पांणीं कौं विचारै ते निराकार बोलिये,ॐकार[10] मधे जोति जांणिये
ऊरम धूरम जोति ज्वाला। भेदौ रवि का चार्यू कला।
मन करि हस्ती बिमल जल पीवै। द्वै पष चीन्हैं तौ सोलह कला जीवै।
बारह कला सूरज, सोलह कला चंद।
गुरू जिसका लषावै नहीं चेला तिसका अंध।
बारह कला सूरज की, ताकौ गुण घट भींतरि व्यापै। ते कौण कौंण।
चिंता[11], तरंग[12], ड्यंभ[13], माया, परम्रहर्यौ[14], परपंच, हेत, बुधि,
काम, क्रोध, लोभ; दृष्टि ये[15] बारह कला सूरज[16] की बोलिये।

सेत रज ... उदबीरज = स्वेदज, अंडज जरायुज और उद्भिज।
तम = तद् संकेतक। वंकार = ॐकार। (दोनों पाठांतर से)
ड्यंभ = दम्भ। परम्रहर्यौ = प्रतिग्रह, किसी से कुछ चाहना, दान लेना।

---

१. (घ) सेरज। २. (घ) यंड रज; (घ) में 'जेरज' इससे पहले। ३. फिर 'सेरज कौंण बोलिए' इत्यादि प्रश्न। ये प्रश्न आगे प्रत्येक वस्तु के संबंध में अलग अलग दुहराये गये हैं। ४. वीर्ज। ५. (घ) च्यारि। ६. (घ) सुपाव। ७. (घ) अतीत। ८. (घ) महा उजेनी नगरी। ९. (घ) मह अजोनी सिंभू। १०. (क) 'ॐकार'के स्थान पर केवल 'तम वंकार'। ११. (घ) चित। १२. (घ) त्रंग। १३. (घ) डिंभ। १४. (घ) पर ग्रहण। १५. (घ) इती। १६. (घ) सूरिज।

सोलह[1] कला चंद्रमा की ताकै गुण घट भींतरि राषै। ते कौंण कौंण। स्रांति[2], नृवर्त[3], छिमां[4], नृमल, निह्चल[5], ग्यांन, सरूप, पद, नृबांण, नृविप[6], निरंजन[7], अहार, निद्रा,[8] मैथुन[9], बाई, अंमृत ये सोलह[10] कला चंद्रमा की बोलिये।

एचारि कला सूरज की साधै तौ सोलह[10] कला चंद्रमा की पावै।

एती एक रोमांवली ग्रंथ जोग कथितं श्री गोरखनाथ[11]।

नृवर्त = निवृत्ति।

नृविष = निर्भीक या विष रहित।

---

१. (घ) सोल्ह। २. (घ) स्वांति। ३. (घ) निरवरति। ४. (घ) छिमां। ५. (क) निरांचल (? निश्चल)। ६. (घ) निरविप। ७. (घ) में ग्यारहवीं संख्या पर 'नियाबीक' अधिक है और सोलह की संख्या को बनाये रखने के उद्देश्य से 'बाई चमताई' एक में मिला दिये गये हैं ८. (क) मुनिद्रा। ९. (घ) महीपन। १०. (घ) सोल्है। ११. (घ) में अंतिम पंक्ति नहीं है।

ग्यान तिलक

ॐ सबदहि[1] ताला सबदहि[1] कूची सबदहि[2] सबद भया उजियाला।
कांटा सेती कांटा पूटै कूंची सेती ताला।
सिध मिलै तो साधिक निपजै, जब घटि होय उजाला ॥ १ ॥
अलख पुरुष मेरी दिष्टि समाना, सोसा गया अपूठा।
जबलग पुरुषा तन मन नहीं निपजै, कथैं बदै सब झूठा ॥ २ ॥
सहज सुभाव[2] मेरी तृष्ना फीटी, सींगी नाद संगि मेला।
यंम्रत पीया विषैं रस टारया गुर गारड़ौं अकेला ॥ ३ ॥

शब्द ही ताला है जो ब्रह्म को बन्द किए हुये है, और शब्द ही वह कुञ्जी है, जिससे वह ताला खोला जाता है और परमात्मा के साक्षात् दर्शन होते हैं। प्रणव शब्द ब्रह्म का पहला विवर्त है। इसीलिए वह उसको बन्द किये हुये हुए है परन्तु प्रणव की ही उपासना से, परमब्रह्म का दर्शन भी हो सकता है, जो वाङ्-मन से गोचर नहीं है, इसीलिए वह कुञ्जी है। गुरु का शब्द भी ब्रह्म को अपने में छिपाये रहता है। ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म अलग अलग वस्तु नहीं हैं। और गुरु के ही शब्द से वह भेद खुलता भी है। जैसे कांटे से कांटा निकाला जाता है, और कुञ्जी से ताली खोली जाती है, वैसे ही शब्द से शब्द भी खोला जाता है। इस प्रकार शब्द से उजाला हो गया। सिद्ध के मिलने से साधक की उत्पत्ति होती है, तभी अन्दर उजाला होता है। कुंची = कुञ्जी। पूटै = नष्ट होता है ॥१॥

पुरुष के दर्शन से मेरी दृष्टि में अलख पुरुष परमब्रह्म समा गया, जिसका फल यह हुआ, कि उलटे मैं स्वयं ही परमब्रह्म में सोख लिया गया। मेरी दृष्टिमें परब्रह्म समाया, और मैं परब्रह्म में समा गया। जब तक पुरुष, परब्रह्म तन में उत्पन्न नहीं हो जाता, व्याप्त नहीं हो जाता, हम अपने सारे अस्तित्व में उसका अनुभव नहीं करने लगते, तब तक अध्यात्म-कथन झूठा है ॥२॥

जो तृष्णा सहज स्वभाव से नष्ट हो गई है, और अनाहतनाद के द्वारा

ग्यानतिलक केवल (घ) और (घ) के आधार पर।

१. (घ) ही। २. (अ) सहज समाधि।

सरप[1] मरै बांबी उठि नाचै, कर बिनु डैरूं बाजै।
कहै नाथ जौ यहि विधि जीतै, पिंड पड़ै तो सतगुर लाजै ॥ ४ ॥
दरपन[2] माहीं दरसन देष्या, नीर निरंतरि झांई।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, लखै तौ दूर न जाई ॥ ५ ॥
चकमक ठरकै अगनि झरै यूं, दध मथि घृत करि लीया।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, तब गुरू सन्देसा दीया ॥ ६ ॥

जिसके उपलक्षण स्वरूप सिंगीनाद नाथ पंथ में ग्रहण किया गया है, मेरा मेल परब्रह्म से हो गया है। इस प्रकार मेरे कैवल्य प्राप्त (अकेले) गुरु-रूप गारुड़ी ने विषय रस (-रूप विष) का निवारण कर मुझे अमृत पान कराया है ॥ ३ ॥

जिसकी कुंडलिनी या शक्ति शिव में समा गई हो, माया मर गई हो, उसका शरीर (बांबी) योगामृत के पान से संजीवित होकर आनंद में नाच उठता है। उसके भीतर हाथ के बिना बजनेवाला डमरू (अनाहत नाद) बज उठता है। नाथ कहता है, कि जो साधक इस प्रकार माया के ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है (वह अमर हो जाता है।) ऐसे सिद्धि-प्राप्त चेले का यदि शरीरपात हो जाय तो सद्गुरु के लिए लज्जा की बात हो जाय, सद्गुरु को भी लज्जित होना पड़े। क्योंकि इससे पता चलता है कि स्वयं गुरु अधूरा है, चेले को क्या सिखाता ॥ ४ ॥

जिससे दर्पण में दर्शन देखा हो, अर्थात् अपने आप परब्रह्म निरंजन का साक्षात्कार किया हो—वैसे ही जैसे जल में किसी वस्तु का निरंतर प्रतिबिंब पड़ रहता हो, और अपने ही में जिसका आत्मा प्रकट हुआ हो, उसे इधर-इधर कहीं दूर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती। वह तो स्थिरता प्राप्त कर लेता है ॥ ५ ॥

जैसे चकमक पत्थर पर रगड़ करने से अग्नि झरती है वैसे, अथवा जैसे दही को मथकर घी निकाला जाता है, वैसे, जब अपने आपा में आत्मा प्रकट हो जाय, तो समझना चाहिए कि गुरु ने शिक्षा दी है, गुरु शिक्षा का प्रभाव हुआ है ॥ ६ ॥

---

१. (प) मन। २. (घ) दरशन; ऊपर का पाठ (अ) के अनुकूल रक्खा गया है।

सुरति गहौ संसै जिनि लागौ, पूंजी हांन न[1] होई।
एक तत सूं एता निपजै, टार्या टरै न खोई ॥ ७ ॥
निहिचा ह्वै तौ नेरा निपजै, भया भरोसा नेरा।
परचा ह्वै तौ ततषिन निपजै, नहीं तर सहज न बेरा ॥ ८ ॥
जे लूट्या जिनि षबरि न पाई, कसि करि यंद्री डांडी।
तन मन की कछु षबरि न पाई, सुरति बिगोया रांडी ॥ ६ ॥
बिंद और भग बाघणि औरैं, बिन दांतां जग षाया।
प्रांण पुरुष का मर्म न पाया, छोड़ि बिगूते माया ॥ १० ॥

आत्मा की विस्मृति में न पड़े रहो। आत्मी हानि स्मृति को पकड़ो, संशय में न लगो। आत्मा ऐसी पूंजी है, जिसकी कभी हानि नहीं होती, एक आत्मा-तत्त्व ही से इतना धन अर्थात् सन्तोष-धन उत्पन्न होता है कि हटाने से नहीं हटता, कभी नहीं होता ॥ ७ ॥

अध्यात्म में निश्चय रखने से तथा उसका विश्वास (आसरा) रखने से वह धन जल्दी ही उत्पन्न हो जाता है। और आत्म-परिचय होने से तो वह तत्क्षण ही उत्पन्न हो जाता है। यदि इन में से कोई बात नहीं है, तो समझलो, कि तुम्हारा स्वाभाविक रूप से निपटारा हो गया; अर्थात् तुम्हें वह अक्षय धन नहीं प्राप्त हो सकता ॥ ८ ॥

जो माया के द्वारा लूटे जा रहे हैं और जिन्हें इस बात की खबर नहीं, वे कस कर इन्द्रियों को दंड देते हैं। उन्हें तन मन की कोई खबर नहीं। वे तो माया (रांडी) के पीछे अपनी आध्यात्मिकता को नष्ट कर देते हैं ॥ ६ ॥

बिन्दु और है, भग और। लोग समझते हैं कि कामुकता ही बिन्दु का साफल्य अथवा उसका पूर्णोपभोग या आनन्द है, किन्तु वस्तुतः बात यह नहीं है। क्योंकि बिन्दु का साफल्य और उसका वास्तविक उपभोग उसे ऊर्ध्व-गामी बना कर अचंचल बनाना है, जिससे वह ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में सहायक

---

१. (घ) में 'ज्वांनन' पाठ है। (अ) में इसका अनुवाद 'हानिर्न' किया गया है। यदि (घ) को ही ठीक मानें तो सम्भवतः एक 'न' व्यर्थ है और पाठ 'ज्वा न' मानना पड़ेगा और अर्थ होगा, जुआ नहीं होता, पूंजी हारी नहीं जा सकती।

सौंस्यौ लाकड़ि ज्यूं घुण लागै, लोहै लागै काई ।
बिन परतीति कहा गुरु कीजै, काल ज ग्रास्यां जाई ॥ ११ ॥
रांडी तज्यां न षसिया जीवै, पुरुष तज्यां नहीं नारी ।
कहै नाथ ये दोनयूं विनसे, धोषा की असवारी ॥ १२ ॥
वैसन्दर मुषि ब्रह्म[1] जो होते, सुद्र पढ़ाऊं बांनी ।
असमेद विधि ब्रह्म-जग निपजां, नैं जुगति जमाया पांनी ॥ १३ ॥
तौ जुग रांड्या जोगेस्वर ब्याह्या, सिव सक्ती सूं फेरा ।
जा पद मिंदर पुरुष विलंब्या, वहि मिंदर घर मेरा ॥१४॥

हो और अमरत्व प्रदान करे। बाघिन तो दांतों से चबा कर खाती है, किन्तु भग बिना दांतों के दुनिया को खाया करती है। कामुकता में पड़ कर जो अपने पुरुषत्व को नष्ट करते हैं, उन्हें प्राण-पुरुष (अन्तर्यामी ब्रह्म) का रहस्य नहीं मिला। उसे छोड़ कर वे माया में पड़ कर नष्ट हो गये ॥ १० ॥

सूखी लकड़ी पर जैसे घुन लगता है, लोहे पर जैसे जङ्ग लगता है, उसी प्रकार यदि बिना विश्वास वाले साधक को काल ग्रस ले जाय तो गुरु क्या कर सकता है ॥ ११ ॥

स्त्री को छोड़ कर पुरुष नहीं जी सकता। (पुरुष को खस्सी इसलिए कहा है, कि कवि की दृष्टि में ऐसे लोग वस्तुतः अध्यात्मतः नपुंसक हैं।) और पुरुष को छोड़ कर स्त्री नहीं जीती। इस प्रकार धोखे की सवारी पर सवार हो कर दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

वैसन्दर (वैश्वानर=योगाग्नि) में जो भ्रम का होम करदे, ऐसे शूद्र को भी मैं बानी पढ़ाता हूँ, शिष्य बनाता हूँ। इस प्रकार (भ्रम विनाशन द्वारा) वास्तविक अश्वमेध (महत्व पूर्ण यज्ञ) की विधि संपन्न हुई, ब्रह्म-यज्ञ निष्पन्न हुआ (निपजा), पूर्ण हुआ और युक्ति से पानी जम गया (क्षरण-शील अधोगामी चंचल शुक्र ब्रह्मरंध्र में स्थिर हो गया) ॥ १३ ॥

जब योगेश्वर शिव भी विवाहित हैं, क्योंकि शिव ने शक्ति (उमा सती) के साथ भाँवरी ली है, तो इस में आश्चर्य ही क्या है, क्योंकि सारा) जग

---

१. स्वीकृत पाठ (अ) के अनुसार, (प) 'ब्रह्म'।

या रहनी मैं घर घर वासा, जोग जुगति कर पाया।
सिध समाधि पंच घर मेला, गोरष तहां समाया ॥१५॥
हाली भींतरि षेंत निदांयैं, बगु मैं ताल समाइ।
बरषै मोर कहूकै सावण, नदी अपूठी आइ ॥१६॥
गऊ पद मांहीं पहौकर फदकै, दादर भरंथ भिलारे।
चात्रिग मैं चौमासौ बोलै, ऐसा समा हमारे ॥१७॥

खियों वाला है, किन्तु जिस पद रूप मन्दिर में (पूर्ण) पुरुष (परब्रह्म) विलस रहे हैं, वही मन्दिर मेरा घर है, अर्थात् स्त्री के पंजे से बाहर निकल कर मैं ब्रह्म पद में समा गया हूँ ॥ १४ ॥

इस प्रकार की अर्थात् स्त्री (माया) रहित रहनी से मैंने योग की युक्ति के द्वारा अपने वास्तविक घर (ब्रह्म पद) में घर-वास (निवास) पाया है, और पूर्ण समाधि के द्वारा पंच ज्ञानेन्द्रियों को घर (पर-ब्रह्म पद में ला डाला है, अर्थात् उसे अंतर्मुख कर दिया है, जिससे कोई यह नहीं जान सकता, कि गोरख कहाँ समा गया है ॥ १५ ॥

हाली (हलवाला, किसान, उद्धारकामी जीव, साधक) सामान्य अवस्था में खेत निराया करता है, (विवेक के द्वारा आत्म-बुद्धि की रक्षा करता है, अनात्म-बुद्धि को दूर कर देता है) मन रूप बगले की ताल रूप बाह्य आनन्द क्रीड़ा की सामग्री उसके अन्दर समा गई है। उसकी वृत्तियाँ अन्तर्मुख हो गई हैं, और अब उसे बाहर आनन्द मिलने की जगह भीतर आनन्द मिलने लगा है। सामान्य अवस्थाओं में माया रूप सावन की वर्षा होती है और मनमयूर उसमें आनन्द ध्वनि करता था, किन्तु अब मन-मयूर बरस रहा है, अपनी बहिर्मुख वृत्तियों की वर्षा अर्थात् त्याग कर रहा है और माया रूप सावन भी अपनी बन्धन वृत्ति को छोड़ कर मुक्ति-दायिनी विद्या स्वरूपा होकर अपने जगत के रूपों की ओर बहती चली जा रही थी निरुद्ध हो कर वापस (पृष्ठ= पुठ=(अ+) पूठा+ई) अपने में (आत्मा में) लौट आई ॥ १६ ॥

पहौकर (पुष्कर=तालाब) गो-पद में फदकता (स्पंदित=तरङ्गित होता) है, अर्थात् साधक का स्थूल अस्तित्व सूक्ष्म आत्मिक जीवन में समा जाता है। इस सूक्ष्म जीवन में भी सूक्ष्म मन (दादुर मेंढक और भरंथ=वहीं मोर)

आसा तृष्णां थिर ह्वै बैठी, पद परचै सुष पाया ।
सूकै तरवर कूंपल मेल्ही, यहि बिधि निपजी काया ॥१८॥
पूरव देश पछांहीं घाटी, (जनम) लिष्या हमारा जोगं ।
गुरू हमारा नांवगर कहीए, मेटै भरम विरोगं ॥१९॥
नव ग्रह मारि अगनि मुषि झौंक्या, दुंदरहि लग्या डोरी ।
परम पुरुष पिंजरि बिलंब्या, भई अगम गति मोरी ॥२०॥
अकथ कथ्या अनअषिर बांच्या, अगम गवन करि लीया ।
हंस बिलंब्या बूंद न ढलकै, वहि सरवर बँध दीया ॥२१॥

आनन्द मनाता है। वह परिस्थित (चौमासा) जिसमें आत्मा (चातक) अपने प्रिय (बादल अर्थात् परमात्मा के) अभिमुख होती है अब स्वयम् आत्मा (चातक) के अन्दर ही उपस्थित है, साधक को ऐसी सुन्दर ऋतु (समा) उपलब्ध है ॥ १७ ॥

आशा और तृष्णा जब अपने चंचल स्वभाव को छोड़ कर स्थिर हो कर बैठ जाती हैं, अर्थात् अपनी आशा और तृष्णा में जब थक जाती है, तब पद अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार का सुख मिलता है, इस प्रकार माया का बड़े प्रसार वाला वृक्ष सूख जाता है; और आध्यात्मिकता की नवीन कोपलें निकल पड़ी हैं, और इस प्रकार काया निष्पन्न होती है, अर्थात् उसका वास्तविक साफल्य होता है ॥ १८ ॥

प्राण (पूर्व) हमारा देश है, और सुषुम्णा (पछांहीं घाटी) आने-जाने का मार्ग। जन्म ही से हमारे भाग्य में योग लिखा है। हमारे गुरु हमारे (भवसागर से तारने वाले) नाविक के समान हैं, वे हमारे अनादि रोगों को मिटाते हैं ॥ १९ ॥

नवग्रहों को मार कर मैं ने आग में झोंक दिया है, ज्ञानोदय से अब ग्रह दोषों के भले बुरे परिणाम से मैं छूट गया हूँ। माया (दुंदरहि) के बीच में भी ध्यान लग गया है। परम पुरुष (ब्रह्म) इस शरीर-रूप पंजर में बिलमा हुआ है, इस प्रकार मेरी अगम्य गति अर्थात् मुक्ति हो गई है ॥ २० ॥

जो कही नहीं जा सकती ऐसी ब्रह्मवार्त्ता को मैंने बिना अक्षरों के ही बाँच लिया है, और अगम्य पद तक पहुँच गया हूँ। इस तरह अर्थात् परब्रह्म-पद

बोलै नाथ गगन घर वासा, अंतरि बसीया जाई ।
परम पुरस मेरै कागद मांड्या, दिन दिन कला सवाई ॥२२॥
ऐसे रमहुँ जैसे नष सिष भेदै, संक्या सरीर न लुटै ।
चलत फिरत पद माहिं समावैं, जामण मरण भै छूटै ॥२३॥
मरि मरि जाय सुसंसा मांहीं, तन का मरम न पाया ।
समझ्या होय तो पद पँथ औरैं, धोषै जनम गमाया ॥२४॥
या पद की कठिन है करनी, केवल-मता पुरुष की रहनां [सोई ।]
या रहनी तैं पारस निपजै, लोहा कंचन पद भेट्यां पद होई ॥२५॥
नींझर नीर अगनि मुषि बरषैं, सींचै वाग हमारा ।
या रहनी तैं पैकंवर निपजै, तिसिया मरै सँसारा ॥२३॥

में आत्मा (हंस) ऐसा बिलम गया है, कि शुक्र के सरोवर में बांध हो गया है, जिससे एक बूँद भी ढलकने नहीं पाता है, पूर्ण ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित हो गया है॥२१॥

नाथ कहता है, कि गगन-रूप घर अर्थात् त्रिकुटी या ब्रह्मरन्ध्र में हमारा निवास है। इस प्रकार हम अपने भीतर जाकर बस गये हैं। हमारा परम पुरुष रूप कागज (लेखा) तय्यार (मंडित) हुआ है, और उसकी कला दिन-दिन बढ़ती जाती है अर्थात् आध्यात्मिक अनुभूति बढ़ती जाती है ॥ २२॥

इस अनुभूति में इस प्रकार रम जाओ, कि वह नख से शिख तक सारे शरीर में भिद जाय, और शंका को लुटने न पावे, (माया का प्रभाव न रहे । ऐसा समाधि लग जाय, कि (केवल ध्यानावस्था में ही नहीं,) चलते-फिरते, (हर घड़ी) ब्रह्म पद में समाये रहो, जिससे जन्म-मरण का भय छूट जाय ॥२३॥

जो संशय ही में मर-मर जाते हैं, उन्होंने शरीर का मर्म नहीं पाया । समझे का (ज्ञानी का) स्थान और मार्ग ही दूसरा है। संशयात्मा तो धोखे में अपने जन्म को गँवाते रहते हैं ॥२४॥

इस पद (ब्रह्म पद) की करनी, जो कैवल्य में मति रखने वाले (कैवल्य मत वाले) पुरुष की रहनी है, कठिन है। इस रहनी से पारस मणि पैदा होता है, जिसके कारण लोहे को कंचन पद प्राप्त होता है, जो उसका वास्तविक पद है। अर्थात् इसी रहनी से सामान्य नर महत्व को प्राप्त होता है, जो उस की वास्तविकता है ॥२५॥

यंद्र मिल्यां तैं धरती निपजै, यंदी बरषै देही ।
गुरू हमारा वांनी बोली, मांणिक चुगि चुगि लेही ॥२७॥
पाथर मैं पारस अविनासी, ज्यूं असट धात मैं सोनां ।
यूं सब जुग मांहिं समझि अविनासी, ता घटि पाप न पूंनां ॥२८॥
वहती नदी भाव भरि थांभी, सूरिज देषि पछांहीं ।
दुलभ देवल मन अगोचर, ता वेल्यां फल षांहीं ॥२९॥
नव लख किरणि अपूठी प्रकटी, कोटि किरणि मुषि आगै ।
कहै नाथ धरम का पैंडा, संस बूँद न लागै ॥३०॥

जल (अमृत) का झरना ब्रह्माग्नि के ऊपर बरसता है, और हमारे उद्यान को सींचता है, अर्थात् ब्रह्माग्नि (हमारी ब्रह्मानुभूति) को और भी बढ़ाती है । इस रहनी से पैगंबर (अध्यात्म के ज्ञानी और प्रसारक) उत्पन्न होते हैं, और संसार (मायिक वृत्तियाँ) पोषण के अभाव के कारण (तृषार्त हो कर) मर जाता है ॥२६॥

इन्द्र के मिलने से (इन्द्र जल का देवता है, इसलिए, जल से) धरती में अन्न आदि उत्पन्न होता है, इसी प्रकार इन्द्रियाँ जब अनुकूल वर्षा करती हैं (अंतर्मुख हो जाती हैं) तब देह में ज्ञान उत्पन्न होता है, और साधक को ज्ञान-मुक्ता चुगने को मिल जाती हैं । हमारे गुरु ने यह वाणी कही है, यह गुरु की शिक्षा है ॥ २७ ॥

जैसे पत्थर में अविनश्वर स्पर्श मणि का निवास है, जैसे आठों धातुओं में सोने का निवास है, ऐसे सारे संसार में अविनाशी परब्रह्म को व्याप्त समझो । (जिसने ब्रह्मपद पा लिया है,) उसके घट (शरीर) में पाप और पुण्य नहीं हैं ॥२८॥

सूरज को पछांहीं (अस्त होता हुआ) देख कर अर्थात् मूलाधारस्थ सूर्य के सुषुम्णा मार्ग में (पछांहीं) सहस्रारस्थ चन्द्र से योग के लिये जाता हुआ देख कर भाव से भरी हुई (अर्थात् बहिर्मुख मनोवृत्ति रूप) नदी स्तंभित अर्थात् निश्चल हो गयी । इससे यही शरीर दुर्लभ देवल को प्राप्त हो गया, सिद्ध-काया हो गयी, और यही मन अगोचर परब्रह्म हो गया । इस प्रकार योगी इस माया रूप बेली के नष्ट कर पारमार्थिक फल को खाते हैं ॥२९॥

नाथ कहते हैं, कि धर्म (योग) के मार्ग पर चलने से बिन्दु मात्र भी

गिरही कै घरि जनम हमारा, सङ्गति सुरति दिढांणी ।
कहै नाथ जीव ब्रह्म एकै, जब सिव घरि सक्ति समांणी ॥२१॥
अनहद धुनि मैं रहनि हमारी, तत्त देखि मन लागा ।
आपा माहीं आपा प्रकट्या, जब जाय धोषा भागा ॥३२॥
जे नर जोनि अजोनी सिंभू, सिध पुरष सूं मेला ।
जा रहनी मैं थान हमारा, ता घटि पुरिष अकेला ॥३३॥
उरधै भरे सो थिरि ह्वै पीवै, सूधै घटि संवारी ।
अंधै लोचन सब जग सूझै, सालिम सब अंधियारी ॥३४॥

संशय (सन्देह) साधक को नहीं छू पाता, और आगे पीछे सर्वत्र ही ज्योति-स्वरूप के दर्शन होते हैं । (अपूठी = पृष्ठ, पृट्ठ, पूठी । आरम्भ में 'अ' का निरर्थक आगम) नौ लाख किरणों के पीठ पीछे और करोड़ किरणों के मुँह आगे प्रकट होने से यही अभिप्राय है ॥३०॥

गृहस्थ के घर हम ने जन्म लिया है, विरक्त, साधु, योगी और महात्माओं की संगति में हम ने आध्यात्मिक मनोवृत्ति (सुरति) को दृढ़ किया है। कुछ कहते हैं, कि इस प्रकार जब अकल स्वरूप शिव में सकल स्वरूपा शक्ति समा जाती है, तब जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

अनाहत नाद में हमारी रहनि (निवास) है । तत्व का हमें साक्षात्कार हो गया है । और उसी पर मन लग गया है, इस प्रकार जब अपने मायाविष्ट अस्तित्व (आत्मा) के भीतर ही वास्तविक स्वरूप (आत्मा) के दर्शन हो गये, तब जाकर धोखा भागा ॥३२॥

नर योनि ही में जिसे सिद्ध पुरुष अयोनि शम्भु का साक्षात्कार हो गया है, और जो उस "रहनी" को रहता है, जिसमें हमारी स्थिति है, उसके शरीर में केवल-पुरुष प्रकट होता है ।

इस पद्य का यह भी अर्थ हो सकता है कि—जो नर-योनि हैं, उन्हीं में अयोनि शम्भु भी है । इस लिये जिन लोगों ने अपने अन्दर के अयोनि शम्भु का साक्षात्कार कर लिया है उन सिद्ध पुरुषों से मेल (सत्संग) करना चाहिए, इस प्रकार जो उस रहनी को अपना लेता है, जिसमें हमारी (सिद्ध योगी की) स्थिति है, उसके शरीर में केवल पुरुष प्रकट होता है ॥३३॥

जो नीचे से उठाने वाली धारा को ऊपर से अर्थात् औंधे घड़े में भरता है;

तूंबी मै तिरलोक समाणा, तिरवेणी रवि चंदा ।
बूझै हो कोई ब्रह्म गियांनी; अनहद नाद अभंगा ॥३५॥
आवा गवण भरम का मारग, पुरषां पंथ बताया ।
सबद अतीत अनाहद बोलै, अंतरि गीत समाया ॥३६॥
बिमल पंथ बीजल ज्यूं चमकै, घरहरती घन गाजै ।
ता रहनी मैं जोगी का घर, अनहद बाजा बाजै ॥३७॥
जा पद मिंदर धजा फरहरै, मढी सँवारे चेला ।
कोटि कन्या जहाँ अनहद बांणी, गावै पुरिष अकेला ॥३८॥

अर्थात् कुंडलिनी शक्ति को ब्रह्मांड में स्थिर करता है, वह स्थिर हो कर अमृत पान करता है । जो घड़े को सीधा रखता है वह उसका संचारण कर देता है, अमृत नहीं पी सकता । जो बाहरी आंखों से नहीं देखता (अंधे लोचन) उसको ज्ञान नेत्रों से जगत् की सारी वास्तविकता प्रकट हो जाती है और जिसकी बाहरी आँखें सम्पूर्ण हैं, बहिर्दृष्टि हैं, उसको कहीं भी आध्यात्मिक प्रकाश नहीं दिखायी देता ॥ ३४ ॥

तूंबी यह शरीर है, इसी में त्रैलोक्य समाया हुआ है, इसी पिंड में यह ब्रह्मांड है । त्रिवेणी (त्रिकुटी) सूर्य और चन्द्र सब इसी में है । इसी में अखण्ड रूप से अनाहत नाद भी हो रहा है । कोई ब्रह्मज्ञानी इसे समझे ॥ ३५ ॥

आवागमन भ्रम का मार्ग है । असली पंथ तो उन पुरुषों (सिद्धों) का बताया हुआ पंथ है, जिन्होंने पहुँच के बाहरवाले (अतीत) अनाहत नाद को जागरित किया है, और अंतर्लीन हो गये हैं ॥ ३६॥

यह विमल मार्ग बिजली की तरह चमकता है, घनघटा की तरह गरजता है । उस पर चलने से ज्योति का दर्शन होता है, और अनाहतनाद सुनायी देता है । इसी "रहनी" में योगी का निवास है ॥३७॥

जो ब्रह्मरंध्र पद फहराती हुई ध्वजावाले मन्दिर (अर्थात् राज-प्रासाद अथवा देव मन्दिर (ब्रह्मरंध्र स्थान है, उस पद को हे चेला ! अपनी मढ़ी बनाओ) उसमें निवास करो । वहां केवल-पुरुष कोटि कन्याओं के सहित अनाहत नाद का गान करता है ॥३८॥

नौ लष पातरि आगैं नाचैं; पीछैं सहज अषाड़ा ।
ऐसैं मन लै जोगी षेलै, तब अंतरि बसै भँडारा ॥३९॥
ग्यान कहै तौ त्रिस्ना हारै, सूरज देषि पछांहीं ।
सतगुरु मिलै तो सांसा भागै, मूल विचारथा मांहीं ॥४०॥
अंजन माहिं निरंजन भेट्या, तिल मुष भेट्या तेलं ।
मूरति माहिं अमूरति परस्या, भया निरंतरि षेलं ॥४१॥
जहां नहीं तहां सब कछु देष्या, कह्यां न को पतिआई ।
दुबिधा भाव तबै ही गइया, बिरलां पदां समाई ॥४२॥

योगी की 'रहनी' मध्यम मार्ग की होनी चाहिए। उसे भोग और त्याग में समत्व रखना चाहिए। भोग्य पदार्थों के सम्मुख रहते हुए भी उसे उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए। इसीलिए कहा है कि नौ लाख पतुरियाँ उसके आगे नाचती हों, और सहज ज्ञान-वैराग्य का अखाड़ा उसके पीछे हो। अर्थात् इन दोनों के बीच उसकी स्थिति हो। इस प्रकार की स्थिति में भी जब जोगी रमे अर्थात् साधना में रत रहे, तब उसका भीतरी भंडार भरपूर हो सकता है ॥३९॥

मूलाधारस्थ सूर्य को सहस्रारस्थ चन्द्र को मिलने के लिए पछांहीं अर्थात् सुषुम्णा-मार्ग-गामी देखकर अर्थात योगाभ्यास के द्वारा ज्ञान ग्रहण करने से तृष्णा नष्ट होती है। यदि सद्गुरु मिले, तो मूल तत्व का अपने हृदय में (माहीं = भीतर) विचार करने से संशय भाग जाय ॥४०॥

जैसे तिलों में तेल व्याप्त है, वैसे ही अंजन में निरञ्जन। इस लिए जैसे तिल में से तेल ले लिया जाता है, इसी प्रकार मैंने (सिद्ध योगी ने) अंजन में, माया में निरंजन ब्रह्म को भेंटा है, और मूर्ति में अमूर्त का स्पर्श किया है, और इस प्रकार निरंतर (अबाध्य) आध्यात्मिक आनन्द (खेल) प्राप्त किया है ॥४१॥

जहाँ "नहीं" (शून्य) है, वहीं मैंने सब कुछ देखा (ब्रह्म ही से सारा विश्व प्रकट होता है, और वही विश्व में सार तत्व और तथ्य है, इस लिए यहाँ ब्रह्म को सब कुछ कहा है।) कहने से इस बात का कोई विश्वास नहीं करेगा। उसी समय, शून्य का साक्षात्कार होते ही, विरल कैवल्य पद में समा कर मेरा द्वैत भाव मिट गया, मुझे शून्य के, ब्रह्म के साथ तादात्म्य का अनुभव हो गया ॥४२॥

दिषणि हमारी डीबी पाकै, अगनि बलै मुलतानं ।
ऐसे हम जोगेस्वर निपनां, प्रगट्या पद निर्वानं ॥४३॥
बाफ न निकसे बूंद न ढलकै, सहजि अंगीठी भरि भरि रांधै ।
सिध समाधि योग अभ्यासी, तब गुरु परचै सांधै ॥४४॥
धीरजि थंभ जडोरि धुनि समानां असमानं ।
अटल दुलीचा अपै पद, जहां गोरष का दीवानं ॥४५॥

इति ग्यान तिलक

दक्खिन (मूलाधार चक्र) में हमारी डीबी अर्थात् पात्र गत खाद्य सामग्री पक रही है, प्रयोग-सामग्री कुंडलिनी तैयार हो रही है और आग (योगाग्नि) जल रही है मुलतान अर्थात् उत्तर मूल-स्थान, ब्रह्म रन्ध्र, शून्य में। इस प्रकार हम योगेश्वर बने और हमारा निर्वाण पद प्रकट हुआ ॥४३॥

सहज की अंगीठी के द्वारा जब कोई इस प्रकार भर भर करके भोजन पकावे कि न तो उसमें से भाप निकले, और न एक बूंद जल का गिरे अर्थात् जब साधक इस प्रकार साधना करने में समर्थ होता है, कि न तो मद मोह लोभ काम आदि भावनाएँ सिर उठा सकती हैं, और न बिन्दु पात होता है; तब योगाभ्यासी को समाधि सिद्ध होती है, और तब गुरु अर्थात् ब्रह्म परिचय के लिए शर-संधान करता है। (परिचय के लक्ष्य की ओर अभिमुख होता है, अर्थात् अपना परिचय कराता है) ॥४४॥

अटल पद धैर्य के खम्भे (स्तंभ, थंभ) और तल्लीनता या धुन की डोरी के सहारे आसमान (शून्य) समाया हुआ (अर्थात् निरालम्ब) अटल आसन (दुलीचा) है। यहीं गोरख का दरबार लगता है, गोरख का दीवान है ॥ ४५ ॥

पंच मात्रा

वोउं अनादि[1] बोलंत परतर पंथ। जिभ्या इंद्री[2] दीजै बंध ॥
जोग जुगुति मैं रहै समाइ। सो जोगी सिर भद्र[3] कराइ ॥१॥
द्वादस मंदिर सिव थांन। तेहू[4] उत्तम[5] ब्रह्म ग्यांन[6] ॥
द्वादस निहचल[7] एक मैं रहै। ते जोगी सिर[8] टोपी वहै ॥२॥
देषै ये तत सून्य[9] अकास। पंच[10] तत्त मैं महा पुरिस का वास ॥
पंच तत्त लै उनमनि रहै। अछ्या होइ तौ जोगेंद्र कहै ॥३॥
पंच तत्त का करोहु बिचार। बाहर भीतर येकंकार ॥
भिछया मांगै नग्री द्वार। माया मोहू तजै जँजार[12] ॥४॥
अरध उरध बीची कँमली भोग। सुणौ हो अवधू अध्यातम जोग ॥
मनमूंडै तो मस्तक मूंडी। नहींतर पड़ौ नरक की कूँडी ॥५॥
ये तो येक अवधू पंच तत्त मात्रा का विचार। बदंत गोरष दसवैं द्वारि ॥
आदि संष अनिल उपाया। अनंत सिधां लै मस्तकि[13] लाया ॥६॥
कान[14] सुणाय गुरँ दीन्ही दीष्या[15] नवखँड प्रथी मांगो भीष्या[15] ॥
भिछया मांगि निरतरि रहै। ते जोगी कानां मुद्रया[16] वहै ॥७॥
अहुँठ हाथ गल[17] कंथा पाइ[18]। चंद सूर दोउ थेगली लाई[18] ॥

पंच मात्रा (घ), (च) और (अ) के आधार पर।

१. (घ) ॐ अनाद। २. (घ) यंद्री। ३. (घ) सिर भिद्र; (च) सर भद्र ४. (घ) तहां। ५. (घ) उत्म। ६. (घ) गियांन। ७. (घ) निहिचल। ८.(घ) सिरि। ९. (घ) सुंनि। १०. (घ) पांच। ११. (च) नग्र। १२. (च) जंजाल १३. (घ) मस्तग। १४. (घ) कानि। १५. (ङ) दीछ्या…भिछ्या। १६.(ङ) काने मुद्रा। १७. (ङ) गलि। १८. (ङ) पाय…लगाय।

अहूँट[1] कोटि दस धागा भरौ। गुरु परसादै दूतिर[2] तिरौ ॥८॥
काया पड़ासण[3] मन जोगौटा। पांचों इन्द्री करौ कछौटा ॥
जत सत क्रीया संजम चलावौ। डंडा लाठी हीवी पावौ ॥९॥
पछिम उत्तर दछिण[4] पूरब। वै तो जोगी जोगौटा चलावौ ॥
माथे जटा दरसन[5] बिकराल[6]। तौ अवधू जोगी बंचौ काल[7] ॥१०॥
सींभी सेली अर जपमाला। बाई फेरो गगन मँझारा ॥
नव वैहैतर पवनां मूल। षट् चक्र गंगा गौरी[8] तिरसूल[9] ॥११॥
अलष पुरिष तहां कू ध्याया। नग्र कोट उरध थी[10] आया ॥
चीत चक्र[11] मैं जै पवनां गहै। ब्रह्म अगिनि प्रगट जल रहै ॥१२॥
बीस्नं बीस्नं करै सब कोय। बिना निरंजन मुकति न होय ॥
मूल चक्र तहां सहस्र दल बाट। मन पवन लै षोलौ कपाट ॥१३॥
गोरष बिस्न लागा बाद। गोरष लेर[12] बजाया नाद ॥
बीस्न कीया मृघ का रूप। मार्‌या मृघ ध्याया अवधूत ॥१४॥
पूरब जाता पछीम हांस[13]। मार्‌या मन मृघ भषीले मांस[13] ॥
नाली चांपी सींगी नाद बजाय[14]। यही सींगी नाद गगन कूं जाइ॥१
गगन मडल मैं रहै समाइ। अनंत सिधां पाई जोग बाइ ॥
सींगी नाद गगन कूं जाइ। अह निसि चंदा (रहै) गगन समाइ ॥१६
पांचूं इन्द्री पूरै स्वाद। ते अवधू बजावै सींगी नाद ॥
अनहद नांद उरध का मूल। चंद सूर[15] सुषमन[16] अस्थूल ॥१७॥

---

१. (घ) अरुट। २. (घ) दूतर। ३. (च) कड़ासनणा ; (घ) कड़ा
परंतु; (घ) में दूसरे स्थल पर पाठ 'षड़ासण' भी है। देखो अगले पृष्ठ पर
२ का मूल। ४. (घ) दषिण। ५. (घ) दरसण। ६. (घ) विकाल। ७.
भोकाल। ८. (च) त्रीये ; (घ) में 'गंगा' नहीं है। ९. (घ) (च) त्रिसूल।
(घ) तैं। ११. (च) चकमक १२. (घ) लेय। १३. (घ) हंस...मंस।
(घ) में 'वाइ...जाइ' इत्यादि की 'इ' के स्थान पर सर्वत्र 'य' है। १५.
(च) सुषमन का।

वारि गंगा पारि गंगा, मंझीं जोगोटा ध्यांन ॥
गंग जमन लै मेर[1] चढ़ाई, तहां अगस्त्या ब्रह्म गियांन ॥१८॥
सींगी सेली और षड़ासण[2], अनंत सीधां लीन्हा जाइ।
द्वादस डीबी उरध का मेला, अलेष मंढ़ी तहां गगन समाइ[3] ॥१९॥
सोना रूपा मही कूं दीन्हा। आदी पत्र ले ईश्वर कूं दीन्हा ॥
जोगारंभ तहां सीध समाइ। आदि धरंम सुरग[4] उतपना आइ ॥२०॥
बारा बरस का मुवा समांण[5], श्री गोरषनाथ जगाया।
चौसठि जोगणि ध्यष्या[6] पूरै, अनंत सीधां आदि पत्र पाया ॥२१॥
आदी पत्र आदी उत्यंम अनादि धरम संकर कूं पेस।
निगुरा कूं गड़बड़ बोलीये सुगरा कूं उपदेस ॥२२॥
चेता येक पंच मात्रा का ऊचार अनंत सीधां तहां सुण्या[7] विचार ॥
मच्छन्द्र प्रसादै जती गोरष कहै। ते अवधू पंच[8]भू आत्मा लहै ॥२३॥
जे जोगी जाणै पंच मात्रा का भेव। सो आपै करता आपै देव ॥
ये पंच मात्रा जोगी बूझै। ताकूं त्रिभुवन सूं सकल देवता पूजै[9] ॥२४॥

इति श्री पंच मात्रा पठंत गुणंत कथंते करंते पापेन लिपंते पुन्ये न हरन्ते आवागवण विब्रजते अमरलोकी सगछते ॥ वो उं नमसिवाय। उन्मोस्यवाय। गुरु मछंद्रनाथ पादुका नमस्ते। इति श्री गोरषनाथ जी की पांच मात्रा ग्रंथ जोग सास्र संपूरण समाप्ता।

---

१. (च) लोर। २. (च) कड़ासण। ३. (च) कामेसा माइ। ४. (च) सरवंग। इस श्लोक में (च) में तीसरे और चौथे चरण के स्थान बदले हैं, और (घ) में दूसरे और चौथे के। ५. (च) सूणा। ६. (घ) भिछ्या। ७. (घ) सुनिया। ८. (च) "पंचमा" में संभवतः नक़ल की गलती है। ९. (घ) 'ताकूं सकल देवता त्रिभवन सूझै'।

परिशिष्ट—१

[क]—(१)

गोरष गणेस गुष्टि

गणेस पूछै गोरष कहै

तुम्हें स्वांमीं कहाँ थे आव्या, कहा तुम्हार नाम।

अम्हें निरंतरि थैं बर आव्या, जोगी अम्हारा नाम।

स्वांमीं जोगी तौ ते बोलिये जिन एता मेर मेषला रच्या[1]। तुम्हें कौण जोगी।

अम्हें निरंजन जोगी अतीत गुर चेला।

स्वांमीं ते क्यूं जाणिये।

रहति करि जाणिये, सबद करि प्रवांणिये।

स्वांमी रहित ते क्या बोलिये, सब्द ते क्या बोलिये।

सब्द बोलिये सबथै विबरजित, रहति बोलिये तृगुण रहित।

स्वामी सबथैं निरंतर ते क्या बोलिये।

सरब थैं ब्यबरजित बोलिये अवधू सुछिम, त्रिगुण बोलिये सत रज तम।

तौ स्वांमीं सुछिम ते क्या बोलिये, सत रज तम ते क्या बोलिये।

सुछिम ते बोलिये अवधू दिष्टि न देषिये मुष्ट न आवै। सतगुन बोलिये पवन रजगुन बोलिये पानी[2]। तृगुण बोलिये तामस रूपी। पंच[3] तत्त पचीस परकीरती बोलिये आदम।

---

१. (घ) में इसके बाद 'ब्रह्मांड रच्या' इतना अधिक है २. (ङ) पाणी। (घ) में यह पंक्ति यों है 'सतगुण विस्न रजगुण ब्रह्म तमगुण रुद्र'। ३. (घ) तीन गुण पंच।

तौ स्वांमीं पंचतत्व ते क्या बोलिये, पचीस परकीरती ते क्या बोलिये।

पंच[1] तत्त बोलिये पृथ्वी आप तेज बाई आकास, येक येक तत्त संजुगत पंच पंच परकीरती बोलिये। प्रथम पृथ्वी प्रकीरती बोलिये अस्त१ मास २ तुचा ३ नाडी ४ रोम[2]५ एतो पृथ्वी को प्रकीरती बोलिये ॥१॥

दुतिये आप प्रकीरति बोलिये लाल[3] १ मूत्र २ प्रसेद[4] ३ सुकल[5] ४ सुनीत ५। एती आप की प्रकीरति बोलिये ॥ २ ॥

तृतीये तेज प्रकीरति बोलिये पुध्या १ तृसा २ न्यंद्रा ३ आलकस[6] ४ क्रोध ५। एती तेज प्रकीर्रति बोलिये ॥ ३ ॥

चतुरथे बाई प्रकीरति बोलिये गाँवरण १ धावरण २ बलगरण ३ ग्यांन ४ अगोचरि ५। एती बाई प्रकीरति बोलिये ॥ ४ ॥

पंचमें आकास प्रकीरति बोलिये माया १ मोह २ लज्जा ३ राग ४ द्वेष ५। एती पंच तत्त पचीस परकीरति का भेद बोलिये ॥ ५॥

स्वांमीं पृथ्वी का कौंण बरण, आप का कौंण बरण, तेज का कौंण बरण, बाई का कौंण बरण, आकास का कौंण बरण।

पृथ्वी का पीत बरण, आप का सेत बरण, तेज का रक्त बरण, बाई का नील बरण, आकास का काला बरण।

स्वांमीं पृथ्वी का कौंण स्वाद, आप का कौंण स्वाद, तेज का कौंण स्वाद, बाई का कौंण स्वाद, आकास का कौंण स्वाद।

पृथ्वी का मधुर स्वाद, आप का षारा स्वाद, तेज का तीषा स्वाद, बाई का षाटा स्वाद, आकास का मलवंधा[7] स्वाद।

तौ स्वांमीं पृथ्वी का कौंण सुभाव, आप का कौंण सुभाव, तेज का कौंण सुभाव, बाई का कौंण सुभाव, आकास का कौंण सुभाव।

---

१. (घ) में इसके पहले 'अवधू तीन गुण ते राजस तामस सात्गि'। २. (घ) रोमावली। ३. (घ) 'लाव' क्रम भी बदला है। ४. (घ) प्रसेव; (ङ) प्रस्वेद। ५. (घ) विंदु, (ङ) शुक्र। ६. (घ) (ङ) 'आलस'। ७. (घ) मिलवला (ङ) मलमला।

पृथ्वी का बैठा सुभाव, आप का सीतल सुभाव, तेज का ताता सुभाव, बाई का चंचल सुभाव, आकास का ऊभा सुभाव।

तौ स्वांमीं आकास का कौंण घर कौंण द्वार कौंण आहार कौंण निहार[1] कौंण व्यौहार।[2]

बाई[3] का कौंण घर कौंण द्वार कौंण आहार कौंण निहार कौंण व्यौहार।

आप का कौंण घर कौंण द्वार कौंण आहार कौंण निहार कौंण व्यौहार।

तेज का कौंण घर कौंण द्वार कौंण आहार कौंण निहार[1] कौंण व्यौहार।

पृथ्वी का कौंण घर कौंण द्वार कौंण आहार कौंण निहार कौंण व्यौहार।

आकास का ब्रह्मंड घर श्रवन द्वार सुनै सु आहार जिह्वा निहार दिम्भ[4] पाषंड व्यौहार।

बाई का घर नाभी नासिका द्वार बासना अहार निरबासीक निहार अहं क्रोध व्यौहार।

तेज का पीता घर चक्षू[5] द्वार द्रिष्ट देषै सु आहार हरष निहार[1] प्रीती मोह व्यौहार।

आप का लिलाट घर यन्द्री द्वार स्त्री आहार बिंद निहार[1] मैथुन व्यौहार।

पृथ्वी का घर कलेजी गुदा द्वार षाइ सु आहार अमरी बजरी निहार लोभ लालच व्यौहार।

तौ स्वांमीं पृथ्वी का कौंण गुरू तेज का कौंण गुरू बाई का कौंण गुरू आकास का कौंण गुरू[6]।

---

१. (क) (ङ) में नहीं है। २. (क) सर्वत्र 'व्योहार', (घ) में प्रश्न और तदनुकूल उत्तरों में भी क्रम में भेद है, उसमें यह क्रम है, पृथी, अप, तेज, वाय, अकास। ३. (घ) सर्वत्र 'वाय'; (ङ) सर्वत्र 'वायु'। ४. (घ) डिंभ; (ङ) डंभ। ५. (घ) चषि (ङ) चक्षु। ६. (घ) में गुरु संबंधी पश्नोतर, घर, द्वार, आहार व्यवहार संबंधी पश्नोतर से पहले दिया गया है।

पृथ्वी का गुरू मन देवता, वाचा सरूपी[1], आपका गुरू चंद्र देवता बुधि सरूपी, तेज का गुरू सूरज देवता अनादि सरूपी आकास का गुरू श्री गोरष जती अविगति सरूपी[1]।

स्वांमींजी प्रिथी की कौंण भारिज्या। वाय की कौंण भारिज्या। अपकी कौंण भारिज्या। तेज की कौंण भारिज्या। आकास की कौंण भारिज्या।

अवधू प्रिथी की भारिज्या आसा धनवंती। अप की भारिज्या मनसा चोरटी। तेज की भारिज्या कलपनां चंडाली। वायकी भारिज्या चिंता डाकणी। आकास की भारिज्या संक्या शीलवंती।

स्वांमीं जी प्रिथी कौंण गुणीं। आप कौंण गुणां। तेज कौंण गुणां वाय कौंण गुणां। आकास कौंण गुणां।

अवधू प्रिथी मूल गुणी। अप बृध गुणां। तेज रूप गुणां। वाय प्रमल गुणां। आकाश मैथन गुणां।

तौ स्वांमीं पंच तत्त की कथं उतपती, कथं षपती। अविगत उतपनां ॐ। ॐ उतपदिते[2] आकास। आकास उतपनीं वाई। वाई उत्पन्यां तेज। तेज उत्पन्यां तोया। तोया उत्पनी मट्टी। मट्टी ग्रास'त तोया। तोया ग्रास'त तेज। तेज ग्रास'त वाई। वाई ग्रास'त आकास। आकास ग्रासंत ॐ। ॐ ग्रासंतते[3] अविगत। अविगत गति रहेत, आवते न जावते। एवं पंच तत पचीस प्रकीरति का भेद बोलिये।

निरंजन देवता। पांणीं का जामन[4]। अगनि का पुट[5]। पवन का

---

१. (क), (ङ) में आगे दिये हुए भार्या और गुण सम्बन्धी प्रश्नोत्तर नहीं हैं। गुण संबंधी उतर के आगे (घ) में यह भी लिखा है—"स्वामी पांचतत्त का वरण स्वाद सुभाव भी कह्या। गुर भेद द्वार अहार निहार व्यौहार भी कह्या"। २. (क) (ङ) में 'ॐ। ॐ उतपदिते' नहीं है, केवल (घ) में है। ३. (क) (ङ) में ॐ। ॐ ग्रसंतते' नहीं है, केवल (घ) में है। ४. (घ) में 'का जामन' के स्थान पर 'जिंद' है। ५. (घ) में 'का पुट' के स्थान पर 'पट' है।

थंभा। सुरति निरति सोध्या। सुंनि मैं समाया। अविगत सरूपी एवं उचितम्।

पापे न लिप्यते पुन्ये न हारंते[2] जोगारम्भे भवे सिधा आवागवन निवर्तते[3] ॐनमो सिवाई ॐनमो सिवाई श्री स्यंभुनाथ पादुका नमस्तुते।

---

१. (घ) में अन्तिम वाक्य के स्थान पर यह है, 'येती पिंड ब्रह्मंड का निरबाण बोलिए हो देवता।' २. (ङ) में इस चरण के स्थान पर 'पठते हरते पापं भुत्वा मोक्ष दायक' है। ३. (ङ) इसके आगे है 'उचारं विचारं पापा च्यं जायंति'।

ज्ञान दीप बोध

[क]—(२)

(गोरष दत्त गुष्टि)

गोरष—स्वांमीं कि तुम्हें ब्रह्मा कि ब्रह्मचारी,
कि तुम्हें बांभण पुस्तक कि डंडधारी।
कि तुम्हें जोगी कि जोग जुगता,
कौंण प्रसादैं रमो छछंद मुक्ता ॥१॥
दत्ताजेय—अवधू न अम्हें ब्रह्मा न ब्रह्मचारी,
न अम्हें ब्राह्मण पुस्तक न डंडधारी।
न अम्हें जोगी न जोग जुगता,
आप प्रसादैं रमौं छछंद मुकता ॥२॥
गो०—आपा मेटणां सतगुर थापणां, अनपरचै जग षाया।
गोरष कहै सुणौ हो स्वामी, तुम्हें कौंण कहां थैं आया ॥३॥
द०—अवधू होता गुपत गुपत थैं प्रगट, रहता पुरुप की छाया।
दत्त कहै सुणौ हो गोरष, हम गैवी पुरस गैव थैं आया ॥४॥
गो०—स्वामी अजर व्यंद असाध बाई, अप्रवल विष्न की माया।
गोरष कहै सुणौ हो दत्तात्रये, कधूं सीझंति जल व्यंद की काया ॥५
द०—अवधू कन्द्रप न बाई अप्रवल न माया,
आकार निराकार सूषिम निकाया।
जलो न जलविंबो दरपनो न छाया,
दत्त न गोरष काया न माया ॥६॥

---

१. (क) किंतु। २. (घ) पोया। ३. (घ) दापो।

गो०—कौंणस्य आवै कौणसि जाय, जो बोलै सो कहाँ समाइ ।
जो गंमि होइ स कहिये भेव, गोरष कहै सुनो दतदेव ॥७॥

द०—अवधू न कोइ आवै न कोइ जाई, कांसा नाद मधि समाई ।
येकै सुत्रैं प्रोया हार, सांभलि हो गोरष कहूँ विचार ॥८॥

गो०—स्वांमीं कौंणस्य माता कौंणस्य पिता, कौंणस्य गुरू उपदेस स्थिता ।
कौंणस्य आसण करौ विश्रांम, कौंण घर सो दाषौ ठांम ॥९॥

द०—अवधू षमा मांता सत पिता, ग्यांन गुरू परचाया स्थिता ।
अलेष आसण तहां विश्रांम, सांभलि गोरष दाषूं ठांम ॥१०॥

गो०—स्वांमीं कौंण मुकत कौंण दुष सहै,
कौंण सि विणसै कौंण अजरावर रहै ।
जो गंमि होइ सु कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥११॥

द०—अवधू ब्रह्म मुकता प्रकीरति दुष सहै,
प्रकीरति विनसै ब्रह्म अजरावर रहै ।
गुह्य ग्यांन कथिलै अपार, सांभलि गोरष कहौं बिचार ॥१२॥

गो०—स्वांमीं कौंणसि सुषिम कौंण अस्थूल, कौंणस्य डालां कौंणस्य मूल ।
जो गंमि होइ सु कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१३॥

द०—अवधू ब्रह्म सुषिम तत सथूल, पवनस्य डाला मनस्य मूल ।
गुरहि ग्यांन कथिले अपार, सांभलि गोरष कहौ विचार ॥१४

गो०—स्वांमीं कौंणस्य गुर कौंण सि चेला,
किहि विधि होय अनंत सिधाँ सौं मेला ।
ब्रह्म कमल का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ तददेव ॥१५॥

द०—अवधू परमात्मा सि गुर आतम चेला,
सहज सुंनि होइगा अनंत सिधां सूं मेला ।
ब्रह्म कमल उरध मुष पिला, साँभलि गोरप उनमन कला ॥१६॥

गो०—स्वांमीं कौणस्य कला,
किस बिधि पूठै त्रिकुटी ताला ।

नाद बिंद का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१७

द०—अवधू उनमनि ध्यांन पवन विधि काया,

नाभ दम पूटै त्रिकुटी ताला।

दसवैं द्वारि व्यंद का वास, साँभलि गोरष नाद का प्रकास ॥१८॥

गो०—स्वांमीं कौणसि कंटक कौंण उचाट,

किहि विधि षूलै ब्रह्म कपाट।

अगम पंथ का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१६॥

द०—अवधू कंटक सोई जिहि अतिवंत क्रोध,

उचाट सोई आत्मा विरोध।

गुरु गमि षूलै ब्रह्म कपाट, सांभलि गोरष ऊजू बाट ॥२०॥

गो०—स्वांमीं कौनसि दया कौंन सि धल,

कौंण सि बूडण कौंन सि तिरण।

कौंन सि ग्यांन करम का भेव, गोरष कहैं सुणौ दत्तदेव ॥२१॥

द०—अवधू बूडण सोइ ज कंटक षुधि, तिरण सोई जु निरमल बुधि।

ध्यांन सोइ जो दया धरम, ग्यांन सोई विबरजित करम ॥२२॥

गो०—स्वांमीं कौंण स्य बंधा कौंण स्य मुकता,

कौंण सि जोगी कौंण सि जुगता।

देव कला का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥२३॥

द०—बंध्या सोई जु करमहि बंध, मुकता सोई रहै निरदंद।

जोगी सोई जुगति मन रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै ॥२४॥

गो०—स्वांमी कौंण स्य जुगता कौंण स्य जोग,

कौण स्य काया व्यापै रोग।

इनका हम से कहियै भेव गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥२५॥

ऊजू=वह जो

---

१. (घ) गुहिज। (घ) पूटै।

गो०—कौंणस्य आवै कौणसि जाय, जो बोलै सो कहाँ समाइ।
जो गंमि होइ स कहिये भेव, गोरष कहै सुनो दतदेव ॥७॥
द०—अवधू न कोइ आवै न कोइ जाई, कांसा नाद मधि समाई।
येकै सुत्रैं प्रोया हार, सांभलि हो गोरष कहूँ विचार ॥८॥
गो०—स्वांमीं कौंणस्य माता कौंणस्य पिता, कौंणस्य गुरू उपदेस स्थिता।
कौंणस्य आसण करौ विश्रांम, कौंण घर सो दाषौ ठांम ॥९॥
द०—अवधू षमा मांता सत पिता, ग्यांन गुरू परचाया स्थिता।
अलेष आसण तहां बिश्रांम, सांभलि गोरष दाषूं ठांम ॥१०॥
गो०—स्वांमीं कौंण मुकत कौंण दुष सहै,
कौंण सि विणसै कौंण अजरावर रहै।
जो गंमि होइ सु कहिये भेव, गोरष कहैं सुणौ दत्त देव ॥११॥
द०—अवधू ब्रह्म मुकता प्रकीरति दुष सहै,
प्रकीरति बिनसै ब्रह्म अजरावर रहै।
गुह्य ग्यांन कथिलै अपार, सांभलि गोरष कहौं बिचार ॥१२॥
गो०—स्वांमीं कौंणसि सुषिम कौंण अस्थूल, कौंणस्य डालां कौंणस्य मूल।
जो गंमि होइ सु कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१३॥
द०—अवधू ब्रह्म सूषिम तत सथूल, पवनस्य डाला मनस्य मूल।
गुरहि ग्यांन कथिले अपार, सांभत्ति गोरप कहौ बिचार ॥१४
गो०—स्वांमीं कौंणस्य गुर कौंण सि चेला,
किहि विधि होय अनंत सिधाँ सौं मेला।
ब्रह्म कमल का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ तददेव ॥१५॥
द०—अवधू परमात्मा सि गुर आतम चेला,
सहज सुंनि होइगा अनंत सिधां सूं मेला।
ब्रह्म कमल उरध मुप पिला, साँभलि गोरप उनमन कला ॥१६॥
गो०—स्वांमीं कौणस्य कला,
[illegible]

नाद बिंद का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१७

द०—अवधू उनमनि ध्यांन पवन बिधि काया,
नाभ दम पूटै त्रिकुटी ताला ।
दसवैं द्वारि व्यंद का बास, साँभलि गोरष नाद का प्रकास ॥१८॥

गो०—स्वांमीं कौणसि कंटक कौंण उचाट,
किहि विधि षुलै ब्रह्म कपाट ।
अगम पंथ का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥१९॥

द०—अवधू कंटक सोई जिहि अतिवंत क्रोध,
उचाट सोई आत्मा बिरोध ।
गुरु गमि षुलै ब्रह्म कपाट, सांभलि गोरष ऊजू बाट ॥२०॥

गो०—स्वांमीं कौनसि दया कौंन सि धन,
कौंण सि बूडण कौंन सि तिरण ।
कौंन सि ग्यांन करम का भेव, गोरष कहैं सुणौ दतदेव ॥२१॥

द०—अवधू बूडण सोइ ज कंटक पुधि, तिरण सोई जु निरमल बुधि ।
ध्यांन सोइ जो दया धरम, ग्यांन सोई विवरजित करम ॥२२॥

गो०—स्वांमीं कौंण स्य बंधा कौंण स्य मुकता,
कौंण सि जोगी कौंण सि जुगता ।
देव कला का कहियै भेव, गोरप कहै सुणौ दत्त देव ॥२३॥

द०—बंध्या सोई जु करमहि बंध, मुकता सोई रहै निरदंद ।
जोगी सोई जुगति मन रहै, गोरप पूछै दत्तात्रय कहै ॥२४॥

गो०—स्वांमी कौंण स्य जुगता कौंण स्य जोग,
कौण स्य काया व्यापै रोग ।
इनका हम से कहियै भेव गोरप कहै सुणौं दतदेव ॥२५॥

ऊजू=वह जो

---

१. (घ) गुहिज । (घ) पूटै ।

द०—अवधू जुगती सोई जो जुगि जुगि ताला,
जुगति सोई जो बिषै निराला ।
योगी सोई मन भ्रम न रहै, गोरष पूछे दत्तात्रय कहे ॥२६॥
गो०—स्वांमीं कौंण सि भरम कौंण स्य धरम,
कौंण सि निसचल कौंण अधरम ।
अगम ग्यांन का कहिये भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥२७॥
द०—अवधू भ्रम सोई जिहि ब्यापै संसा, धरम सोई दरसण आदेसा ।
निसचल सोई जो त्यौं स्यूं रहै, अधरम सोई जो मिथ्या कहै॥२८
गो०—स्वांमीं कौंण सि मिथ्या कौंण सि साच,
कौंण सि षरा कौंण सि काच ।
कौंण सि कहै सबद का भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥२९॥
द०—अवधू माया मिथ्या ब्रह्म सु साचा, सबद सु षरा प्यंड को काचा ।
सबद विचारी जहाँ मन रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहे ॥३०॥
गो०—स्वांमीं कौंण सि काया कौंण सि माया,
कौंन सि भ्रम जग धंधै लाया ।
अपार धंद का कहै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥३१॥
द०—अवधू मन कलपत लागो माया, करम आचरै तहां लं काया ।
ध्यान बिना जगु धंद अपार, सांभलि गोरष कहूँ विचार ॥३२॥
गो०—स्वांमीं कौन सि ध्यांन कौन सि ग्यांन,
कौन सि मन कौन सि आसांन ।
ग्यांन ध्यांन का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥३३॥
द०—अवधू ध्यान सो ब्रह्म सू रहै, ग्यांन सोई जो सब गमि कहै ।
मन सोइ जहां मनहि समांन, आपण जाणो सोई आसांन ॥३४
गो०—स्वांमीं कौन सि मानैं कौन सि जानैं,
ससिहर सूर कौन समि ठानैं ।
प्रकास अगोचर कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥३५॥

द०—अवधू जानै सोइ परचै जग, नांथ न जांणै सोइ विषियारत।
ससिहर सूर अगोचर वासा। सांभलि गोरष कहूं प्रकासा ॥३६

गो०—कौंन अगोचर कौन प्रकास, कौंन घरि षेलै निरास।
कौंन सिधा का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥३७॥

द०—अवधू ब्रह्म अगोचर मन प्रकास, परचै घरि षेलै निरास।
परम ज्योति यहां सिध गहि रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै॥३८॥

गो०—स्वांमीं कौंणसि परचै कौंण प्रतीत, कैसें थिर चंचल चीत।
मन पवन का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दत देव ॥३९॥

द०—अवधू गुर परिचय मन प्रतीत, निसचल अस्थीर चंचल चीत।
पवन थिर ता मन थिर रहै, गोरष पूछै दत्तात्रय कहै ॥४०॥

गो०—कौनसि निसचल ले बंधे बंद, जुरामरण अजरावर कंद।
गगन पद का कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४१॥

द०—अवधू निसचल सो जो न पड़ै काया,
त्रगुण रहत सो गगन समाया।
सहज पद परम नृवांन, सांभलि गोरष ए परवांन ॥४२॥

गो०—स्वांमीं कौंन सकति कौंन सीव, कौंन तीनि भवन का जीव।
कौंण सि आसा पुरवई भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४३॥

द०—अवधू सकति सोइ जो सवहीं सोषै, सीव सोइ जो सवको पोषै।
जीव इक तीनि भुवन जगनाथ, सोइ सक्त जो पूरइ आस॥४४॥

गो०—स्वांमीं कौन कौन ले कथिवा ग्यांन, कौंण तत्त ले धरिवा ध्यांन।
कौंण समाधी तुम्हें लागे भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४५॥

द०—अवधू आत्मा चिनंति[1] कहा कथिवा ग्यांन,
तत्व विचारिवा कहा धरिवा ध्यांन।
दत कहै हम सहज समांन, सांभलि गोरष पद निरवांन ॥४६॥

---

१. (ब) चिन्हति।

गो०—स्वांमीं कौंन तत तुम रहौ समाई, कौंन तत तुम मधे आई ।
कौंन परचै तुम्हें कहियै भेव, गोरष कहै सुणौ दतदेव ॥४७॥

द०—अवधू दत्त जु लागा तत्त सों, तत्त दत्त ही मांहि ।
दत्त तत्त परचा भया[1], तब दूजा कहणां नाहिं ॥४८॥

गो०—स्वांमीं त्वमेव दत्तं, त्वमेव देवं, आद मधे तुम्हें जान्या भेवं ।
तुम्हें नारायण तुम्ह कृपाल, तुम्ह हो सकल बिस्व के पाल ॥५०॥

द०—स्वांमीं तुमेव गोरष तुमेव रछिपाल[2],
अनंत सिधां माहीं तुम्हें भोपाल ।
तुम हो स्यंभू नाथ नृबांण, प्रणवे दत्त गोरष प्रणांम ॥५१॥

गो०—स्वांमीं दरसण तुम्हारा देव, आदि अंति मधि पाया भेव ।
गोरष भणई दत्त प्रणांम, भोग जोग परम निधांन ॥५२॥

ज्ञान दीप बोध ग्रंथ, जोग सास्त्रं, पढ़ते हरंते पापं, श्रुत्वा मोषि लभ्यते जोगारम्भे भवेसिधा आवागवन निवरतते । येवं ग्यांन दीप बोध संबादे जोग सास्त्रं सपूरण समाप्त । ॐ नमो सिवाये ॐ नमो सिवाये गुरु मछिंद्र पादुका नमस्तते ।

१. (घ) हूआ । २. (क) राका सिपाल ।

[क] (२)

महादेव गोरष गुष्टि

ईश्वरोवाच ॐ अविगत उतपते इच्छा। इच्छा उतपते आकास। आकास उतपते वाय। वाय उतपते तेज। तेज उतपते तोयं। तोयं उतपते मही।

अविगत ते इच्छा। इच्छा तैं आकास। आकास नाम, स्याम वरण दसवैं द्वार वासा, दाहिणे पैसार, वामं श्रवण निकास, नाद सुनै सो आहार, दंभ वड़ाई व्यौहार। राग दोष हर्ष शोक मोहादिक ये पांच प्रकृति आकास की बोलिये। इन आकास मारग जीव अनुसरै तौ सेतरज षानि भोगवै।

आकास से वायु नाम, नील वरण, नाभि वासा, इला पैसार, पिंगुला निसार, गंध वासना आहार, क्रोध व्यवहार। गावण, धावण, वलगन, संकोचन, पसारण, ये पांच प्रकृति वायु की बोलिये। इन वायु मारग जीव अनुसरै तौ अंडरज षानि भोगवै।

वायु ते तेज नाम, रक्त वरण, त्रिकुटी वासा, दाहिणे नेत्र पैसार, वामें निसार, दृष्टि देषै सो आहार, मोह व्यौहार। क्षुधा, त्रिषा, निद्रा, आलस, क्रांति ये पांच प्रकृति तेज की बोलिये। इन तेज मारग जीव अनुसरै तौ रज (?) षानि भोगवै।

तेज ते आप नाम, स्वेत वरण, ललाट वासा, जिभ्या पैसार, इन्द्री निकास, स्त्री आहार, काम व्यौहार। लाल, मूत्र, प्रस्वेद, रुधिर, मज्जा ये पांच प्रकृति आपकी बोलिये। इन आप मारग जीव अनुसरै तौ उदबीरज षानि भोगवै।

महादेव गोरष गुष्टि केवल (ङ) के आधार पर।

आप ते पृथ्वी नाम, पीत वरण, कलेजे वासा, मुष पैसार, मूल-द्वार निकास, षावे पीवे सो अहार, लोभ लालच व्यौहार । अस्थि, मास, त्वचा, नाड़ी, रोम ये पांच प्रकृति पृथ्वी की बोलिये । इन पृथ्वी मारग जीव अनुसरै तौ पिंडरज षानि भोगवै ।

इति पंच प्रकृति, पंच घर, दस द्वार, पंच अहार, पंच व्यौहार, पंच वरण, पंच षानि चौरासी लाष जीव जोनि भ्रमते । तथा ये पंच कर्मानि वोलिये सुनो गोरष अवधूत । ईश्वरो कथंति॥ मह्रा ग्यांन कर्म पटल प्रथमो अध्याय ।

ईश्वरोवाच पंच तत्वभेद कथितं । पृथ्वी ग्रासंति तोया । तोया ग्रासंति तेज । तेज ग्रासंति वायु । वायु ग्रासंति आकास । आकास ग्रासंति इच्छा । इच्छा ग्रासंति अविगत । अविगत रहंत, आवते न जाते । जैसा है तैसा हो रहते । असंष मनि नाम । अवरण वरण । ह्रिरदै वासा ।

भाव घर, अदृष्टि द्वार, सहज पैसार, समाधि निकास, अमी अहार, अर्थ व्यौहार इन मन मारग जीव अनुसरै तौ साजोज्य मुकति भोगवै ।

असंष बुद्धि नाम । अवरण वरण, निर्मूल वासा, विचार घर, अनाहद द्वार, निहशब्द पैसार, अनभै निकास, रस अहार, अगह व्यौहार इन बुद्धि मार्ग अनुसरै तौ सामीप मुकति भोगवै ।

सहज सून्य चिंता 'नाम अवरण वरण त्रिकुटी वासा विवेक घर, अजपा द्वार, निहकाम पैसार, संतोष निसार, कमरंद अहार, अगम व्यौहार । इन चित मारग जीव अनुसरै तौ स्वरूप मुक्त भोगवै ।

परम ध्यानं च अहंकार नाम, अवरण वरण, विषमी वासा, विवेक लय घर, नृवासीक द्वार, अगम पैसार, अगोचर निसार, अजर अहार, अगाध व्यौहार इन अहंकार मारग चित्त अनुसरै तौ सालोक मुक्ति भोगवै ।

प्रांण अंतह्करण नाम, अवरण वरण, अस्थिति वासा, धीर घर अकिल द्वार, ग्यांन पैसार, विग्यांन निसार, अमरा अहार, अबंध ब्यौहार। इन अंतह्करण मारग जीव अनुसरै तौ महा मुक्ति (भोगवै) आत्मा परमात्मा भवति। जोगेस्वर जीव एकं भवंति। परम सुन्य भावे स्थिति। पारब्रह्म भवे लीनं। सत्यं सत्यं च वदाम्यहं। तत्त्वग्यांन श्री शंभूनाथ अकथ कथितं सुनो हो गोरष अवधूतं परम जोग संप्राप्तिं जोगी। ईश्वरो कथंत महाग्यांन इति ग्यांन इन्द्रादि बोलिये। इति ग्यांन पटल द्वितीयो अध्याय।

इति गोरष महादेव सम्वाद

[क]—(४)

सिस्ट पुराण

ॐएक उपरांति[1] लेष नाहीं। दोय पाषै सिस्टि नाहीं। आपा पाषै परचा नाहीं[3]। काया उपरांति क्षेत्र नाहीं[4]। सील उपरांति व्रत[5] नाहीं। चक्षु[6] उपरांति दृष्टि नाहीं। श्रवण ऊपरि सुरति नाहीं[7]। निर्भय उपरांति अभय[8] नाहीं। संजम उपरांति सुचि[9] नाहीं[10]। संतोष उपरांति सुख नाहीं। अमर[11] उपरांति[1] सिद्धि नाहीं। अभय[12] उपरांति करामति नाहीं। माता उपरांति जन्म[13] नाहीं। गर्भ[14] उपरांति नरक नाहीं। पलंत[15] उपरांति हाणि नाहीं। चित चंचल[16] उपरांति रोग नाहीं। त्रिध[17] उपरांति[1] मृत्यु[18] नाहीं। काल उपरांति वैरी नाहीं। नासिका उपरांति[1] रूप नाहीं। दया उपरांति[1] धर्म नाहीं। ध्यान[19] उपरांति ग्रंथ नाहीं। चंदन उपरांति काष्ट नाहीं[20]। बिंद उपरांति उत्पति नाहीं[1]।

सिस्ट पुराण (घ), (ङ) और (अ) के आधार पर। वाक्यों के क्रम में बहुत अंतर है। (घ) में ३१, (ङ) में ६० और (अ) में ४५ वाक्य हैं।

१. (घ) ऊपरि। २. (ङ) में यह वाक्य अधिक है—सिद्धि उपरांति ब्रह्म नाहीं। ३. (घ) में यह वाक्य अधिक है—गुरु पाषै ग्यांन नाहीं। ४. (ङ) में यह वाक्य अधिक हैं—आत्मा उपरांति देवता नाहीं। ५. (घ) सुचि। ६. (घ) नेत्रां। ७. (घ) में यह वाक्य नहीं है। ८. (घ) निर्भै···भै। ९. (घ) पाक। १०. (घ) में यह वाक्य अधिक है। जग उपरांति व्रत नाहीं। ११. (घ) में अमृत। १२. (घ) अणभै। १३. (घ) जनम। १४. (घ) ग्रभ। १५. (घ) पल। १६. (घ) चिता। १७. (घ) वृघ। १८. (घ) मृति। १९. (घ) गिनांन। २०. यहां पर (घ) में में यहे वाक्य अधिक है—सिव उपरांति देवता नाहीं। सबद उपरांति वाचा नाहीं। और (ङ) में ये वाक्य अधिक है—फकीरी उपरांति पदवी नाहीं। मनसा उपरांति माया नाहीं। निहचल उपरांति जोग

समुद्र उपरांति गंभीर नाहीं। पाताल उपरांति अर्थ नाहीं। सूरज[1] उपरांति तप्त नाहीं। काया उपरांति रतन नाहीं। संच[2] उपरांति[3] शास्त्र नाहीं। अजप उपरांति जाप नाहीं। अघोर[4] उपरांति मंत्र[5] नाहीं। नारायण उपरांति इष्ट[7] नाहीं। निरंजन उपरांति[3] ध्यान नाहीं।



नाहीं गुरु उपरांति दाता नाहीं। अग्यान उपरांत तिमिर नाहीं। ग्यान उपरांति प्रकाश नाहीं। चरचा उपरांति रस नाहीं। भेष उपरांति पूंजी नाहीं। साधू उपरांति देवता नाहीं। असाधु उपरांत भूत नाहीं। माया उपरांति जड़ नाहीं। जीव उपरांति चैतन्य नाहीं। हिरदा उपरांति धाम नाहीं। पवन उपरांति चंचल नाहीं। मन उपरांति कर्ता नाहीं।

१. (ङ) में ये वाक्य अधिक हैं—चंद्रमा उपरांति शीतल नाहीं। वैकुंठ उपरांति उर्ध नाहीं। २. (घ) सांच। ३. (घ) ऊपरि। ४. (ङ) में ये वाक्य अधिक हैं—बुद्धि उपरांति व्याकरण नाहीं। स्वासी उपरांति वेद नाहीं। पराधीन उपरांति बंधि नाहीं। स्वाधा उपरांति मुक्ति नाहीं। चाह उपरांति पाह नाहीं। अचाह उपरांति पुण्य नाहीं। कर्म उपरांति मैल नाहीं। दोष उपरांति कुबुद्धि नाहीं। निर्दोष उपरांति सुबुद्धि नाहीं। सिष्टि उपरांति पोष नाहीं। ५. (घ) चोर। ६. (घ) जाप। ७. (घ) यष्ट।

[क]—(५)

दया बोध

आओ सिद्धौ[1] षोज बताऊं । आदिनाथ का पूत कहाऊं ॥
जोगारंभ की याही वांणी । सब घटि नाथ एकै[2] करि जांणी ॥१॥
जोगारंभ हिरदा मैं[3] मांड़ौ । दया उपावो[4] जूती छाड़ौ ॥
नांगां पांवां[5] जे नर मूवां । ताका कारज पहली[6] हूवा ॥२॥
आप सवारथ घालौ[7] धूंई । ता मैं चींटी केती[8] मूई ॥
तजो कहूरि[9] नजरि भभूत[10], बटवा फाडड़ि[11] जिनि लेउ हाथ[12] ।
एता आरंभ परिहरौ सिद्धौ; यों कथंत जती गोरष नाथ ॥३॥
माघ चलंता धरणि दिष्टि[13] लागै । ताकै[14] कांटा कद्दै[15] न लागै[16] ॥
पहली[6] आरंभ हम भी करते । जीवजंतु[17] बहौतेरे[18] हतते ॥४॥
आरंभ तजौं गूदड़ी चलावौ[19] । निरति सुरति अविनासी सूं लावौ[19]॥
अविनासी पुरुष[20] का लागा रंग । रिद्धि[21] सिद्धि ताही के संग ॥५॥
रिधि छाड़्यां सिधि पाइए, सिधि संकर कै हाथि[22] ॥
छांड़ौ सकल अकल कूं ध्यावौ, यों कथंत जती गोरष नाथ ॥६॥

---

१. (घ) सिधो । २. (घ) एक । ३. (घ) मैं । ४. (घ) उपावो । ५. (ङ) पावो । ६. (घ) स्वारथ; (ङ) पहिले । ७. (ङ) घाले । ८. (ङ) केती । ९. (घ) कहेरि । १०. (घ) भभूति । ११. (घ) फाहड़ि । १२. (घ) ल्यौ हाथि । १३. (घ) दिष्टि जो । १४. (घ) तो ताकै; (ङ) ताके । १५. (घ) कोई । १६. (घ) पहले 'लागै' लिखा था, फिर हरताल लगाकर 'भागै' किया गया है ।१७. (ङ) जीवजंतु । १८. (ङ) बहुतेरे । १९. (ङ) चलओ'''ओ लाओ । २०. (घ) पुरख । २१. (घ) "रिधि सिधि" है । २२. (ङ) शंकर के हाथ ।

आसन तजि अनत जिनि[१]जावौ[२] । अकलप[३]भिछ्या[४]बैठा खावौ[२] ॥
कनक न पकड़ै मोरौ न मेलै । आइ रिद्धि[५] कौं जोगी ठेलै ॥
इरथा तिणांका[६] न सवावै जीव । सो जोगी कहिये प्रतकि[७] सीव ॥
चकमक कफ नांव न धरौ । पर आत्मा का परला जिनि करौ ॥
अगनि न वालौ धुंआं न घोटौ[८] । भिछ्या कर पात्र ले वोटौ[८] ॥
ग्वांहा विच आसण[९] जिनि[१०]मांडौ । मोह लगाय आप जिनि[१०]भांडौ॥
बाई बावड़ी कौ[११] मन नहिं दीजै । देषत दिष्टि[१२] काया तन छीजै ॥
पंडित पढ़ि गुणि करै न आसा । देषि एकंत[१३] जु रहौ निराशा ॥
काहे कौ[११] पढ़ि गुणि भला कहावै । जब लगि हिरदै दया न आवै ॥
जब लगि हिरदै दया न आई । तब लगि कहिये सुद्ध[१४] कसाई ॥
कनक न पकड़ै सबद न वाहै । जोगी कागद कहां ते लावै[१५] ॥
तन मेरै[१६] पोथी मन मेरै[१६] लेषनि, एती[१७] निज तत निसपती ।
यो कथंत गोरष जती ॥
वहां चलिवे का करौ विचार । अगम अगोचर सुलप आकार[१८] ॥
घहा[१९] देवरा[२०] औघड़ देव । तहां जोगेश्वर[२१] लाग्या[२२] सेव ॥
पंच चेला[२३] मिलि पूरथा नाद । धरणि गगन विच भई अवाज ॥
दीपक एक अषंडित बिन बाती । तहां जोगेस्वर थापनां थापी ॥
अगम अगोचर सकल ब्रह्मंड[२४] । ता दीपग[२५] कै[२६] चरण न प्यंड[२७] ।
सिषा न नैन सीस नहिं हाथ[२८] । सो दीपग[२५]देख्या जती गोरखनाथ ॥

१. (घ) नहीं । २. (ङ) जाओ···खाओ । ३. (ङ) भित्ता । ४. (ङ) अलप
५. (घ) सिद्धि । ६. (ङ) यिणका । ७. (ङ) प्रत्यक्ष । ८. (ङ) घूटौ···ऊटौ ।
६. (ङ) आसन । १०. (ङ) जिण । ११. (घ) कूं । १२. (ङ) दृष्टि । १३. (घ) एकांतरिं । १४. (घ) सुधि । १५. (घ) 'ल्यावैं' । सम्भवतः पाठ 'लाहै' रहा हो ।
१६. (ङ) मेरे । १७. (ङ) एता । १८. । (घ) 'निद्रा अलप सुलप अहार' ।
१६. (घ) वहथा । २०. (घ) देहुरा । २१. (ङ) जोगेश्वर । २२. (घ) लागे ।
२३. (ङ) चेल्या । २४. (ङ) में यह चरण नहीं है । २५. (ङ) दीपक । २६. (ङ) के । २७. (घ) पिंड । २८. (घ) "श्रवन न सीस नैंन नहीं हाथ" ।

ता दीपक कै डाल न मूल । ता दीपक कै कली न फूल ॥
ता दीपक कै रंग न रूप । ता दीपक कै छांह न धूप ॥
ता दीपक के सबद न स्वादं । ता दीपक के बिद्या न बादं[१] ॥
ता दीपक के मोह न माया । सो दीपक सूनैं सून[२] समाया ॥

इति दया बोध संपूर्ण ।

---

१. (ङ) नादं । २. (घ) सुने सुनि (सुंने सुंनि) ।

[क]—(६)

कुछ पद

आदि नाथादि पार ब्रह्म ॐ शिव सकती। नाद बिंद ले काया उतपती।
नाद-बिंद रूपी बोलिए ॐ कार।
बिंद रूपी बोलिए काया। प्रथम आदि उतपती माया॥
उदै भईला सूर अस्त भईला चंदा। दुहु बिच कल्पना काल का फंदा॥
उदै ग्रह अस्त एक करि बास। तब जानवा जोगींद्र जीवन आसा॥
बारह कला रवि सोलह कला ससी। चारि कला गुरुदेव निरंतर बसी॥
हीण पद सुराया लागा हंसा। तन का तेज ले उड़िया हंसा॥
हंस का तेज ले थिर रहै काया। काल का भेद कहौ गुर राया॥
द्वै पष छेदि एक ह्वै रहणां। चंद्र सूर दोउ सम करि गहणां॥
ऊंच भै उपरै, मध्य निरंतरै [आई।] ता तलि भाठि जराई॥
सीजि अमीरस कंचन हुआ। यहि विधि पिंजरै वानवै सुआ॥
उपजंत दीसंत निपजंत नाहीं। आवरण नास्ति संसार माहीं॥
बूझिले सतगुर बुद्धि भेद सिद्ध संकेत। परचा जाणि लगावो हेत॥
ऊरंम धूरम जोवी झाला। नौ कोटि पिड़की पूरले वाला॥
ताला न टूटै षिड़की न भाजै। पिंड पड़ैं तौ सतगुर लाजै॥
भरे सागर धुनि धूसर कूंची। तहां सकल विध है सोई सूची*॥
इहि विधि जोगी अतीत होई। अमर पद ध्यावत विरला कोई॥

कुछ पद केवल (ङ) के आधार पर। सीजि=सिद्ध हो कर।

*मूल में 'सूची' नहीं है। उसके स्थान पर कोई दूसरा शब्द भी नहीं है। सूची (शुचि) तुक को देखते हुए अनुमान से वहां पर रख दिया गया है।

सहज मरे अष्ट पग धरणां । ग्यांन खड़ग लै काल संहरणां ॥
अमर कोट काया एक ब्रह्म मध्ये । जीत ले जमपुरी राषि ले कंधे ॥
आतमा झूम्क जती गोरषनाथ किया । संसार बिणास्या आपण जिया ॥१॥

झूम्कंति सुरा बूम्कवि पूरा अमर पद ध्यावंत गुरु ग्यान बंका ।
दल को मारि जंजाले को जीति ले, निर्भय होइ मेटि ले मन की संका ।
अझूम्कि झूम्किलै पैस दरिया । मूल बिन वृष अमीरस भरिया ॥
तन मन लैकरि शिवपुर मेला । ग्यांन गुरु जोगी संसार चेला ।
मन राइ चंचल थांन थिति नाहीं । वांधि ले पंच भूत आत्मां माहीं ॥
अलष अकथ चछु बिन सूम्किया । सिद्ध का मारग साधकै बूम्किया ।
उलटि यंत्र धरै सिषर आसण करे, कोटि सर छूटतां घाव नाहीं ॥
सिलहट मध्ये कांवरू जीतले, निर्मल धुनि गगन मांहीं ।
मन की भ्रमना तब छूटंत होइ जोगींद्र, जब विचारंत निहसब्द की बाणी ॥
नैण के दांता सार धरि पीसिवा, तब योग पद दुर्लभ सत्य करि जाणी ।
उलटि गंगा चलै धरणि ऊपर मिलै, नीर मैं पैसि करि अग्नि जालै ॥
घटहिं मैं पैसि कर कूप पानी भरै, तद पाइ परि पुरुषा आप उजालै ।
ग्यान के प्रगटे श्रीस्यंभूनाथ पाया । अकल अकथ जती गोरषनाथ ध्याया ॥२॥

भूल्या सो भूल्या बहुरि चेतना । संसा के लोहे आपा न रेतना ।
भेष तजि भ्रम तजि राषि सत्य सोई । तत बिचारतां देवता होई ॥
आपा सोधौं ब्रह्म निरोधौ सहज पलटौ जोती ।
काया के भीतर मणि माणिक निपजै, तहां धुनि धुनि बरषे मोती ॥
अरध उरध संपुष्ट कराजै । संपणि नाल अमीं रस पीजै ।
अषंड मंडल तहं नाद मेरीलै । द्वार आगण तहं भगति करीलै ॥
अलेष मंदिर तहं शिव शक्ति निवासा । सहज सुन्न भया प्रकासा ।
तहां चंद बिना चांदणा आनन बिना उजाला । [illegible] मंडल वृक्ष से झाला ॥

करतार तजिहूँ साकन हूँ न जाई। मन मृग राषिले वाड़ी न षाई।
आकास बाड़ी पाताल कूँआ। भरि भरि सींचता जो सिद्ध हुआ॥
अवधू अमर कोट काया अलेष दरवाजा।
ग्यान गढ़ आसण प्राण भयो राजा॥
अवधू फेरि ले तौ तत सार बुद्धि सांच।
नहीं तौ लोहा गढ़ि ले तौ कंचन नहीं तौ कांच॥
अवधू सिद्धा पाया साधक पाया, ते उतरिया पारं।
कथंत जती गोरषनाथ जेते न जानंत विचारं, ते जलि भये अंगारं॥३॥

परिशिष्ट—२

[ख]—(१)

सप्त बार-नवग्रह

गोरष जोगी कथै बिचारं । ये तत जीतै सातौ वार ॥टेक॥
आदित वार न्यौरि ले आप आपा न्यौरत पुंनि न पाप ॥
दुहूं[1] पषां सौं[2] आरंभ करै । अनभै करि जमपुर परहरै ॥
सोमवार ससि घटण भरौ । सतगुरु षोजौ दूतरि तिरौ ॥
दसवैं द्वारि दीजै बंध । तौ अजरावर थिर ह्वै कंध ॥
मंगलवार अम्हे पाया भेव । आतमां अछै[3] निरंजन देव ॥
पंच पुहुप[4] लै पूजा करौ[5] । मति बुधि लै सिव पुरी संचरौ[5] ॥
बुधिवार मति बुधि प्रकास । अहि निसि रहिवा जोग अभ्यास ॥
दिढ करि लोचन आसा पास ! सिधि साधौ अमरापुरि वास ॥
ब्रहसपति[6] वार पिषम मन[7] लिया । ग्यान षड़ग लिया विग्रह[8] किया ॥
अट्ठठ कोटि दल दीया पयाणां[9] । जम मस्तकि बाजै नीसाणां[9] ॥
सुक्रवार सुपिम जल साधि । लहरि न पसरै सहज समाधि ॥
माया मारि मरि थिर जु[10] होइ । आतमा[11] परचै मरै न कोइ ॥
थिरि थावर जु सनीचर[12] वार । काया मध्ये सातौं[13] वार ॥
सतगुरु पोजौ उतरौ पार । सुसमवेद[14] सुषमना विचार ॥

नवग्रह (घ), (ट) के आधार पर ।

१. (घ) दहूं । २. (घ) सूं । ३. (घ) आछै । ४. (घ) पहीप । ५. (घ) करै⋯संचरै । ६. (घ) बृहस्पत । ७. (घ) गढ । ८. (घ) ले विग्रहै । ६. (घ) पयाना⋯नीसानां । १०. (घ) 'थिरजु' के स्थान पर 'अस्थिर' है । ११. (घ) तो आतम । १२. (घ) सनीसर । १३. (घ) भीतर सातूं । १४. (ट) विद्या वेद ।

वेद पुरान पढ़ै चित लाइ। बिद्या ब्रह्म कंध थिरि थाइ।
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरष कहै। सप्त वार कोई बिरला लहै॥
आदित आंष्यां सोम श्रवण, मंगल मुष परवांण।
बुध हिरदै बृस्पति नाभी, सुक ते इंद्री जांण॥
शनि गुदा वाय राह ते मंन, केत ते नासिका रहै।
सप्त वार नवग्रह देषता काया भींतरि श्री गोरष कहै॥

[ख]—(२)

ब्रत

एक बरत गुरु मुषि लहै भेवा। दूजा ब्रत संतोष सेवा।
तीजा ब्रत दया चित रहै। चौथा ब्रत ब्रह्म कौ लहै॥ १॥
एक ब्रत जो इंद्री गहै। दूजा ब्रत राम मुष कहै।
तीजा ब्रत मिथ्या नहि भाषै। चौथा ब्रत दया मनि राषै॥ २॥
सांचो ब्रत कहै ये चारी। जिस भाव सो लेहु विचारी।
और सकल जग का ब्यौहारा। तासौं कदे न पावै पारा॥ ३॥
सील संतोष सुमिरण ब्रत करै। ताकै सुषी कौण कहि मरै।
मन इंद्रियन कौं अस्थिर राषै। राम रसाइन रसनां चाषै॥ ४॥
इन ब्रत समि ब्रत नहीं कोई। वेद अरु नाद कहै मत दोई।
ता थैं ए ब्रत हिरदय धारौ। गुरु साषी की साष बिचारौ॥ ५॥
सील ब्रत संकोष ब्रत, छिमा दया ब्रत दांन।
ये पांचौं ब्रत जो गहै, सोई साध सुजांन॥ ६॥
इन ब्रतां का जांणै भेव। आपै करता आपै देव।
मन पवनां लै उनमन रहै। एवे ब्रत गोरषनाथ जी कहै॥ ७॥

ब्रत-केवल (क) के आधार पर

[ख]—(३)

पंच अग्नि

ॐ मूल अगनि का रेचक नांव । सोषि लेह रक्त पीत अर आंव ।
पेट पूठ दोऊ सम रहै । तौ मूल अगनि जती गोरष कहै ।
भुयंगम अगनि का भुयंगम नांम । तजिबा भिछ्या भोजन ग्रांम ।
मूल की मूस अमीरस थीर । तिसकूं कहिए हो सिधो पवन का सरीर ।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म नाली धरि लेउ जांण ।
उलटंत पवनां रवि ससि गिगन समांन ।
ब्रह्म अगनि मधे सीझिवा कपूर । तिस कूं देषि मन जायवा दूर ।
सिव धरि सकति अहैनिस रहै । ब्रह्म अगनि जती गोरष कहै ।
काल अगनि तीनि भवन प्रवांनी । उलटंत पवनां मोषंत पांनी ।
पाया पीया पाष होय रहै । काल अगनि जती गोरप कहै ।
रुद्र अगनि का त्राटिका नांम । सोपि लेव होट कंठ पेठ पूठि नव ठांम ॥
उलटंत केस पलटंत चांस । तिसकूं कहिये हो सिधो त्राटिका नांम ॥
रुद्र रेवंती संजमे पिवंती । जोग जुगति करि साधंत जोगी ।
पंच अगनि भरि पूर रहै । सिध संकेत श्री गोरप कहै ।
पूरिको पीवत वायु कुंभको काया सोधनं ।
रेचको तजंत विकार त्राटिको आवागवण विवरजतं ।
सिध का मारग कोई साधू जांण । पंच अगनि श्री गोरपनाथ षपांणैं ।
पांचौं अगनि संपूरण भई । अनंत सिधां मधे जती गोरप कही ।

इति श्री पंच अगनि पठंते सुणंते कथंते करंते पापे नह लिपंते
पुने न छारंते । ॐनमो सिवाय ॐनमो सियाव ।
गुरु मछंद्रनाथ के पादुका नमस्तुते ।

पचं अग्नि और आगे के सब अंश (प) के आधार पर

[ख]—(४)

अष्ट मुद्रा

स्वामीजी अष्ट मुद्रा बोलिए घट भींतरि, ते कौंण कौंण ।
अवधू यंद्री मध्ये मूलनी मुद्रा, कांम त्रिष्णा ले उतपनी कांम ।
कांम त्रिष्णा समो कृतवा, मुद्रा तौ भई मूलनी ॥
नाभी मधे जलश्री मुद्रा, काल क्रोध ले उतपनी ।
काल क्रोध समो कृतवा, मुद्रा तौ भई जलश्री ॥
हृदा मधे पीरनी मुद्रा, ग्यांन दीप ले उतपनी ।
ग्यांन दीप समो कृतवा, मुद्रा तौ भई पीरनी ॥
मुष मध्ये षेचरी मुद्रा, स्वाद विस्वाद ले उतपनी ।
स्वाद विस्वाद समोकृतवा, मुद्रा तो भई षेचरी ॥
नासिका मध्ये भूचरी मुद्रा, गंध विगंध ले उतपनी ।
गन्ध विगन्ध समो कृतवा, मुद्रा तौ भई भूचरी ॥
चषि मध्ये चाचरी मुद्रा, दिष्टि विदिष्टि ले उतपनी ।
दिष्टि विदिष्ट समो कृतवा, मुद्रा तौ भई चाचरी ॥
करण मध्ये अगोचरी मुद्रा, सबद कुसबद ले उतपनी ।
सबद कुसबद समो कृतवा, मुद्रा तौ भई अगोचरी ॥
ब्रह्मंड असथांनि उनमनी मुद्रा, परम जोति लै उतपनी ।
परम जोति समो कृतवा, मुद्रा तौ भई उनमनी ॥
यती अष्ट मुद्रा का जाणै भेव । सो आपै करता आपै देव ॥
इती अष्ट मुद्रा कथंत श्री गोरपनाथ जती संपूर्ण समापत सिवाय ।

[ख]—(५)

चौबीस सिद्धि

चौबीस सिद्धि बोलिये, प्रिथी के विषै ते कौंण कौंण।

प्रथम अनूमां सिधि ताकौं लछिन, माया सुनि सूझै। महिमां सिधि ताकौ लछिन, लघु दीरघ होय दिखावै। गरीमां सिधि ताकौ लछिन, ब्रह्म कौ रूप दिषावै। लघुमां सिधि ताकौ लछिन, अनेक रूप धरै। प्रापति सिधि ताकौ लछिन, यंछै सो करै। प्रकासक सिधि ताकौ लछिन सरब सूझै। असत्या सिधि ताकौ लछिन, उपावै षपावै। आवस्या सिधि ताकौ लछिन, ब्रह्मादिक अग्या में रहै। एती अष्ट भूतांन सिद्धि मनोजा सिधि ताकौ लछिन, सरब कांमनां की जांण। छुछुमुक्ता सिधि ताकौ लछिन, मन मानै वहां सरीर छाडै। अनूरा सिधि ताकौ लछिन, सीत उसन तैं रहित[1] होय। परकाया प्रवेश सिधि ताकौ लछिन और काया प्रवेस करै। सूरज वसि सिधि ताकौ लछिन, सूरज आग्या में रहै जल वसि सिधि ताकौ लछिन, जल आग्या मैं रहै। दूरि श्रवण सिधि ताकौ लछिन, दूरि की सुणैं। दूरि दरसण सिधि ताकौ लछिन दूर की दरसै। कांम कांमोद सिधि ताकौ लछिन, कांमनां यंछै सो करै। अग्रहता सिधि ताकौ लछिन, मन मांनैं तहां जाय। देवता सैंन सिधि ताकौ लछिन, सब देवतां सूं केला करि आवै। रूपसेल देवता सिधि ताकौ लछिन, सरब देवता का रूप धरै। हारे नाहीं सिधि ताकौ लछिन, कहूँ प्रकार हारै नाहीं। त्रिकाल सिधि ताकौ लछिन, छमास की आगली कहै छमास की पाछिली सूझै। अगनि वसि सिधि ताकौ लछिन अगनि मैं जलै नहीं। सबद वसि सिधि ताकौ लछिन, सबद फूरै।

एती चौबीस सिधि ब्रह्म ग्यांनी कै आड़ी आवै। एती चौबीस

१. (घ) रहेत।

सिधि आई होय तौ सतगुरु प्रसाद तैं त्यागै । सोई जोगेश्वर सोई ब्रह्म ग्यांनी । वल अपार जती गोरषनाथ समझावै । यती चौवीस सिधि त्यागै । सोई परम ज्योति कूं पावै ।

[ख]—(६)

बतीस लछन*

ग्यांन पारछ्या-निरलोभी, निह्चल, निरबासीक, निह्सिबद ।
विचार पारछ्या-निरमोही, निरबंध, निसंक, निरबांन ।
बमेक पारछ्या-सरबंगी, सावधांन, सति, सारग्राही ।
संतोष पारछ्या-अजाचीक, अबांछीक, अमांनीक, अस्थिर ।
निरबल पारछ्या-निहितरंग, निह्परपंच, निरदुंदी, निरलोप ।
सहज पारछ्या-सुमती, सुहृदी, सीतल, सुषदाई ।
सील पारछ्या-सुचि, संजम, सति, श्रोता ।
सुंनि पारछ्या-ल्यौ, लषि, ध्यांन, समाधि ।
एती अष्टांग जोग पारछ्या, भगति का लछिन ।
सिधां पाई साधिका पाई, जे जन उतरे पारं ॥

[ख]—(७)

अष्ट चक्र

ॐ गोरष देव अष्ट चक्र बोलिए घट भीतर । ते कौंण कौंण बोलिए । अवधू प्रथमें आधार चक्र बोलिए गुदा अस्थांने, चत्र दल कंवल,

*(च) में इसका नाम 'अष्ट परिछ्य' है ।

चौवीस सिद्धि

चौवीस सिद्धि बोलिये, प्रिथी कै विषै ते कौंण कौंण।

प्रथम अनुमां सिधि ताकौं लछिन, माया सुनि सूझै। महिमां सिधि ताकौ लछिन, लघु दीरघ होय दिखावै। गरीमां सिधि ताकौ लछिन, ब्रह्म को रूप दिपावै। लघुमां सिधि ताकौ लछिन, अनेक रूप धरै। प्रापति सिधि ताकौ लछिन, यंछै सो करै। प्रकासक सिधि ताकौ लछिन सरब सूझै। असत्या सिधि ताकौ लछिन, उपावै षपावै। आवस्या सिधि ताकौ लछिन, ब्रह्मादिक आग्या में रहै। एती अष्ट भूतांन सिद्धि मनोजा सिधि ताकौ लछिन, सरब कांमनां की जांण। छुछुमुक्ता सिधि ताकौ लछिन, मन मानै तहां सरीर छाडै। अनूरा सिधि ताकौ लछिन, सीत उसन तैं रहित[1] होय। परकाया प्रवेश सिधि ताकौ लछिन और काया प्रवेस करै। सूरज वसि सिधि ताकौ लछिन, सूरज आग्या में रहै जल वसि सिधि ताकौ लछिन, जल आग्या में रहै। दूरि श्रवण सिधि ताकौ लछिन, दूरि की सुणै। दूरि दरसण सिधि ताकौ लछिन दूर की दरसै। कांम कांमोद सिधि ताकौ लछिन, कांमनां यंछै सो करै। अग्रहता सिधि ताकौ लछिन, मन मांनैं तहां जाय। देवता सैंल सिधि ताकौ लछिन, सर्व देवतां सूं केला करि आवै। रूपसेन्न देवता सिधि ताकौ लछिन, सरब देवता का रूप धरै। हारे नाहीं सिधि ताकौ लछिन, कहूं प्रकार हारै नाहीं। त्रिकाल सिधि ताकौ लछिन, छमास की आगली कहै छमास की पाछिली सूझै। अगनि वसि सिधि ताकौ लछिन अगनि मैं जलै नहीं। सबद वसि सिधि ताकौ लछिन, सबद फूरै।

एती चौवीस सिधि ब्रह्म ग्यांनी कै आडी आवै। एती चौवीस

---

१. (घ) रीत।

सिधि आई होय तौ सतगुरु प्रसाद तैं त्यागै । सोई जोगेश्वर सोई ब्रह्म ग्यांनी । बल अपार जती गोरषनाथ समझावै । यती चौवीस सिधि त्यागै । सोई परम ज्योति कूं पावै ।

[ख]—(६)

बतीस लछन*

ग्यांन पारछ्या-निरलोभी, निहचल, निरआसीक, निहिसबद ।
विचार पारछ्या-निरमोही, निरबंध, निसंक, निरबांन ।
बमेक पारछ्या-सरबंगी, सावधांन, सति,सारग्राही ।
संतोष पारछ्या-अजाचीक, अबांछीक, अमांनीक, अस्थिर ।
निरबल पारछ्या-निहितरंग, निहपरपंच, निरदुंदी, निरलोप ।
सहज पारछ्या-सुमती, सुहृदी, सीतल, सुषदाई ।
सील पारछ्या-सुचि, संजम, सति, श्रोता ।
सुंनि पारछ्या-ल्यौ, लषि, ध्यांन, समाधि ।
एती अष्टांग जोग पारछ्या, भगति का लछिन ।
सिधां पाई साधिका पाई, जे जन उतरे पार ॥

[ख]—(७)

अष्ट चक्र

ॐ गोरष देव अष्ट चक्र बोलिए घट भीतर । ते कौंण कौंण बोलिए । अवधू प्रथमें आधार चक्र बोलिए गुदा अस्थांने, चत्र दल कंवल,

*(च) में इसका नाम 'अष्ट परिछ्य' है ।

षटसै सांस। तिस चक्र ऊपरि द्रिष्टचक्र, लिंग अस्थांने षट दल कंवल षटसै सांस। तसि चक्र ऊपरि मणिपुर चक्र, नाभि अस्थांने, दस दल कंवल, षट सै सास। तिस चक्र ऊपर अनहद चक्र, हिरदा सथांने द्वादस कंवल, षटसै सास। तिस चक्र ऊपर विसुध चक्र; कंठ सथांने षोड़स कंवल, एक संहसर सास, अजपा गावत्री पारब्रह्म ध्यांन। तिस चक्र ऊपरि अगनि चक्र, नेत्र सथांने षोड़स दल कमल एक सहंस्र सास अजपा गावत्री पारब्रह्म ध्यांन। तिस चक्र ऊपर गिनांन चक्र, ब्रह्मंड सथांने एक सहंस्र दल कमल एक सहंस्र सास। अजपा गावत्री पारब्रह्म ध्यांन। तिस चक्र ऊपरि सुछिम चक्र, विग्यांन सथांने एक वीस सहंस्र दल कमल।

ए अष्ट कमल का जांणैं भेव। आपै करता आपै देव।

इती अष्ट चक्र कथंत जती गोरषनाथ संपूर्ण।

[ख]—(८)

रह रासि

ॐ आदेस आदेस अलप अवीतं। तदा न होती धरती न आकासं॥
तदा काले सिभू भई हमारी उतपन्य।
माता न लेबी दस मास भारं। पिता न करिवा आचार विचारं॥
जोनी न आयबा, नाभि न कटाइबा। पुस्तग पोथी गला न बचायबा।
तहां अलेय पुर पटणि अनोपम सिला तहां बैठे गोरषराइ।
तुम दमड़ी चमड़ी का संग्रह करो। गुर का सबद ले ले दोजिग भरो॥
गुनी चक्र चलावौ हथियार। पंडित बुधि बहोत अहंकार॥
ऊमा ले सिव बैठा पाषांण। श्री गोरष बाचा परवांण।
अनंत सिधां मैं रहरासि कही। गोदावरी के मेलै ऐसी भई॥

परिशिष्ट—३

(घ) प्रति के परिशेष में गोरखनाथ के २७ पदों का अपने ढंग का एक सुंदर तिलक दिया हुआ है, जो आगे दिया जाता है। वह किसी निरंजनी साधु का किया जान पड़ता है। क्योंकि उन्हीं के संप्रदाय के ग्रंथों की (घ) प्रति में अधिकता है। कर्ता का नाम दिया नहीं है। प्रति में पहले पूरे पद दिये गये हैं, फिर तिलक। मैंने पदों की प्रथम पंक्ति ही दी है। सारे पद को दुहराना व्यर्थ होता। पदक्रम भी मैंने प्रति का नहीं रक्खा है, बल्कि प्रतीकों के प्रथम अक्षरों को लेकर अक्षरानुक्रम से रक्खा है। इससे पदों को ढूँढने में सुभीता होगा।

अवधू जाप जपौ बनमाली चीन्हौं।

जाप समझौ तिहि करि अगम जपीए। टेक। बदन प्रांन सुसम भजतां। काया कंचनी बसि होवै। तौ ज होय चवै कहै। एक अक्षर यड़ाकार कुंभक सुनि नाभि बांणी बसि हुई जो पिंड-ब्रह्मंड में समतत है। द्वै अक्षरी दूजी नाड़ी। दोय पष पांन अपांन। तिहि करि भौ पारि उतरे। त्रै अक्षरी सुषमन त्रै मंत्र जपी। ब्रह्मकुंड ब्रह्मद्वार। चौ अक्षरी परा चारि षांणी चारि बांणी बसि हुई ॥१॥

अवधू बोल्या तत्व बिचारी।

अवधू बोल्या तत्व बिचारी। तत्व ईस्वर बिचार। पृथी काया बंक सुरति। वली समाई। अष्टकुली हरबत काया। जल माया। टेक। मन पवन परैं अगम ईश्वर। रवि ससि तार गियाई। रबि ससि मन पवन तार तिमिर गियाई (गियाय-यथा दृष्ट) गया। तीन गुण त्रिबधि संसार नहीं। चारि जुग में बाई। सिधि करतां आया। पंच सहस में षट अपूठा पंच सहंस सुर कंवल, वाय षट प्रांण कंवल सपत धात आठई वाय। मनी मनारी। द्वादस बाय कला त्रिकुट कै बिषै। चवदै

तवक ऊपरैं चित मेल्यौ। षोडस कवल षतीस पंषुड़ी समभया जुरा गई। दसवें उनमनी। सम तति हुवा सबद ॥ २ ॥

आंबिलियौ थलि मौरीयौ।

आंबलीयौ आत्मा। थल ब्रह्म। नींब बपु। विजौरा बिचारा। टेक। ऊंट सिषांणें जब ग्रह्यौ। ऊंट आपौ। सिषांणौ सबद। कैरू करम। बांझ आत्मां। बेटौ ग्यांन। पुरिष न दीठौ। पुरिष परमेश्वर बिना और पुरिष। लाकड़ बूडै सिल तिरै। लाकड़ कठोर सिला सुध। ऊंट आपौ। प्रनालौ प्रीति सुसलौ सांसौ। मछ मन। डूंगर ब्रह्म। जल संसार। ससौ सांसो। पांणी बूंद। ब्रह्म अगनि। रहट रटणि। सूल बिरह। कांटा क्रम। गाय आत्मां नौ नाड़ि पंच भू। फूल कंवल। षरहीया कर्त्ता। पग करम बिनां चोरी। गाय मनसा धरणा में ब्यावै नहीं ॥३॥

आवौ नैं बोसी जोवौ बिचारी।

वाय नहीं ॐकार बादल घट। तारा गुण। तेल त्रिगुण। थंभो सबद। बाप बप। माया माया। पीव प्रांण मांहि डोलै। द्वै कर माया गंग जमुन सास उसास। विचि षाट पट। पांच यंद्री छठौ मन। हंस प्राण विछाय। दोय गुण तलै ऊपरि। चावल पोपौ ॥ ४ ॥

आवौ माई धरि धरि जावौ।

घरि घरि घरणा की तासीर जाइ ॥ टेक ॥ पारा बिंद, नाद सबद, ससि सूर ताता सीला। पवन गोटिका। आकास ब्रह्म। गगन कंवल। रोभी मनसा। सुनि समाधि ॥ ५ ॥

ऐसा रे उपदेस दावै श्री गुर राया।

स्वास सुसमवेद। बिधि हृदि। अजपा जाप। त्रिपमा सर्पा नाभि। त्रिनाथी सुषमन ॥ ६ ॥

ॐ नमो सिवाय स्वामी ॐ सिवाय ।

अह निस राति दिन बाई ईश्वर विनां वहै है। कौंण मंत्र कौंण उपाय बसि होय। ताका रे मैं चेला। टेक। गुरू कहै ॐकार जो छैं सूं मूल मंत्र छैं। ताहि करि संसार पंडित छैं। नाभि हृदा विचि वहै तौ देवगुरु बतावा। सो ते साधे बिना सिधि नाहीं। ॐकार करि नरहरि ब्रह्मा महादेव प्रसिधि है। नाद सब कौ निधांन। षट चक्रां कूं बेधिबे कूं वाई ही संम्रथ है। वाई ही सोहं हैं बित रष नहीं पिंड, विषै असधि वहै। बिंद कूं वाई जीतै। मन कूं मन मारै। मनकूं मन तारै। त्रिभवन मैं मन मन देषै। आदि मनहीं समाइसी (समहिसी—यथा दृष्ट)। अति सुधि मनह समभया काम। मन ही सूं विषै छूटै अनि करणी नाहीं। बिंद रज की भांड है। बारा कला सूरज, सोला कला ससि। रज रेत सम जे ह्वै तब परम गति होय। यती समि कीयां आपै आप है। पंच तत्त्व की समझि है ॥ ७ ॥

गुरु कीजै गहला निगुरा न रहिला ।

कोयला मन। दूध तीरथ। काग मंन। पहुप पुरांन। आभा काया। काग काल। उतर सबद में। पछिम पाछिली बुधि। दूजा अरथ। उतर माया। पाछिल परमेश्वर। चींटी मनसा। गजिंद्र मंन। गाय आत्मां। बाघ ग्यांन ॥ ८ ॥

गोरष बाळूड़ो बोलै सतगुर बांणी ।

गोरष बाळड़ा, जीवन परख्या नहीं। अगनि ब्रह्म। पांणी राम रस। टेक। पीलौ मन। मींस्रि काया। बिरोलै बिचार। सासू सुरति। बहू बुधि। कोयल बांणी। आंब आत्मां। गगन ब्रह्म। मछली मनसा। बुगलौ काल। करसंण कांम पाकौ। रषवालौ काल। मृघला मनोरथ। पारधी मन। सींगी सुरति। नाद सबद ॥ ९ ॥

गोरष कहै सुणौ मछिंद्र ।

चिंतामणि सरीषौ चित । द्वादस नैं षोड़ि । षट नैं षोड़ि । नौ द्वारै नैं षोड़ि। चवदै ब्रह्मंड का मोल एक दम। पवन हीं जल। अंबर आत्मां । बीज ब्रह्म । वटक प्रांण ॥ १० ॥

गोरष गोपालं लो ।

गोष्ट थी पाली । गगन की गाय मनसा । मही मन । अनभै ईश्वर । टेक । ममित मिट्यौ । तब माया मूंई । बाप वपु । छोरू यंद्री । लाल गवाल प्रांन । गाय मनसा । अनहद ईश्वर सबद । संष असत काया । गगन कँवल । सुनि असथांन गगन । गाय मनसा । परवार मन पवन । सुरति निरंतरि प्रांण घरि। बरण रहत मनसा गाय ॥ ११ ॥

गोरष जोगी तोला तोलै ।

तोला मन तालै पवन । ग्यांन सूं बांधै । तब अमोल । टेक । जे बिंद छै तौ । कद आत्मां न पड़ै । बिंद पड़्यां कोटि मोल जाय। जैसी उपजै भली बुरी तैसा करम करै। गगन ब्रह्म । अमर रांमरस । पून्यं चंद बिषै रत षीजै । बिंद तोला तोलि लै ॥ १२ ॥

च्यारि पहर आलिगन निंद्रा ।

आलिगन कांमनींद । टेक । अमावस अग्यांन करि मन सूंनो । घट ही सूंनौ। मंगल झूठा। दस दोष की काया । पड़िवा उजालौ ग्यांन तौ अनंद । पंच बसिवो ही ठांम । ससि पहलौ पहरौ। बीचि कौ पहरौ त्रिगुणी माया। तीन पहरा गया। धांम देह । दूजा घट परमेस्वर बांमौ अंग माया । जम भै भागौ ॥ १३ ॥

तत बणिजोलो तत बणिजीलो ।

तत नाम । पंचभूतांर गाय । मन बछौ । नौ द्वार बाषर बरह वरख । उडियांन अडिग । सिरा कौ हाट सुनि। अभ्यास बनिज। कूड़ा लैन दैन ॥ १४ ॥

तत बेली लो तत बेली लो ।

तत बेलि आत्मां । डाल करम । मूल मन प्रकृत, छाया नहीं। माया जल बिनां बधै । टेक । कुंजर मंन । काया बाड़ी । बेलि आत्मां सुबधि । धरती रोपी पुरष प्रांन । मूल पद्मा । ससि चंद । पांन भांण । सूरिज पवन । फल पूंनिम । चंद ग्यांन । गगन ब्रह्म । झाल विरह । दाया लहै काटत कूंपल मेल्है । स्वाद सींच्य कुमलावै ॥ १५ ॥

नाथ बोलै अमृत बांणी ।

कांमलि काया । पांणी प्रांण । टेक । पढरवा परकीरति । पूंटा मन । दमांमा दम, ऊंट काया । कऊवा काल, डारी बसु भली । पीपल पार-ब्रह्म । मूंसा मंन । बिलाई कुवधि । वटाऊ प्रांण । चलै ब्रह्म पंथ । चौरासी बाट थाकी । डोकरी आत्मां । षाट घट । कूकर मन । चोर संसार । धणी इस्वर काढ़ै । ढोर संसार । ऊजड़ गुण नहीं । बली ब्रह्म, गागरि गुण । पणिहारी आत्मां । कामनि कामना । अँगीठी आत्मां । वैसंदर बिकार । मगरी माया । मूल्है चित । रोटी रटणि । पोवै कुमति रंडीया आत्मां । बहु बुधि । सासु सुरति । मगरी काया । प्रांणी प्रांण । कूद कँवल ॥ १६ ॥

पूछौ पंडित ब्रह्म गियांन ।

बीज कांम । निसपती ग्यांन । मूल माया बिनां पांण तरवर । पांन परकीरति । फूल कांमनां । बांझ का पूत ग्यांन । लिंग प्रांण । माली काया रहत ईस्वर । कँवल काया । भृंग मन । स्वास बेद । सोहं बाणी । गंग जमनां स्वास उसास । बिधि गोरष बेलै ॥ १७ ॥

बंदंत गोरषनाथ दसवै द्वारे ।

स्वरग रंध्र के पुरष चढ्या । यकीस ब्रह्मंड ऊपरि सबमवेद । टेक । द्वादस अंगुल की बाई । रज बीरज की सकति बस हुई । ससिम

षोड़सु सरकंवल। सिव थांन सहंस पंषुड़ी। थांन जीव सीव घरि। अनहद सबद। पछिम ऊचै भांण ग्यांन। डीवी मनसा। पाताल गुणां परै। चंद सूर ताता सीता। धरत्या का गुण भस्म कीया। नादी बिंदी नाद बिंद सींगी। आकास आत्मां। थेगली काया। छसै सहंस स्वास। बहतरि नाड़ी। सूई सुरति। बांवन बीर मन। यड़ा पिंगुला सुषमनी। आसमांन ब्रह्मद्वार॥ १८॥

बदंत गोरषनाथ परसिलं केदारं।

केदार ब्रह्मद्वार। पांणी रामरस। टेक। ऊंचा परवत। राग दोष। ता आगैं बाट। यला पिंगुला किलिमिलि पवन। कांवरू काया। पूरब गिरि दसवौं द्वार॥ १९॥

बांधौ बछरिया पीवौ पीवौ पीरं।

बछरी यंद्री। षीर यंम्रतरस। अजरांवर मरै न। टेक। आकास ऊंची दसा। धेनि आत्मां। त्रिभवन त्रिगुणी काया। राजा जीव पूछ परकीरति नाहीं। बारह बछरा सो बारह कला सूरज की सो बांधौ। सोलह कला चंद्रमा की सो यंम्रत सरवैं। धेनि आत्मां। रैंणि चेतन आरवल। अचर ब्रह्म। कचरा माया। विषै रस। पाच ग्वालिया पांच यंद्री। आत्मां धेनि। अमृत रस। गगन ब्रह्म॥ २०॥

बोल्या गोरष धर जोई।

धर हिरदा। तत आत्मां॥ टेक॥ त्रियाली त्रिगुणी माया। आसण मन यंद्री। मन मैं तन वसिकीया। मव मैं कुंभ काया वसी। कलस कंवल। पैर पोज। पुरषै पुरष निपाया। जिहि तटि ताता सीला न ऊगै। तौ ग्यान न उदै होय। तहां आसण करै। मन मांहिला हीरा साध। सोधि लीणां तत ग्यांनी। बिमल नृमल॥ २१॥

मनसा देवी व्यौपार बांधौं।

मनसा व्यौपार ब्रह्म सूं कीयौ। पवन करि पुरुष। मन बिनसतौ

उपज्यौ। मनसा कहै रे जोगी मन अध्यात्म लागौ काया पटण मैं ।टेक। यकीस हजार छसै दम आदि का पुरष मन कै हाथि। जपमाला दीनी। यड़ा मन पिंगुला पवन। सुषमनां सुरति। अहनिस राति दिन। प्रनाली नाड़ि उलटि बहै। षट छह सासू षोड़ि काया। कँवल मैं दहे करि परिसिध। परब्रह्मचारी प्रांन। हंस ही पवन। जल ब्रह्म नौसै नाड़ि नदी सोई। पणिहारी आत्मां। गंगा तीर तहि कै तटि। बणिज ब्रह्म सूं। चंदसूर मन पवन। गगन ब्रह्म द्वार। घोर अंधार गुणां कौ हूवौ। पंच यंद्री पौढ़ी। सुनि प्रगट्या दसवैं द्वार। काया हो कन्था। मन जगोटा ॥२२॥

मेरा गुर तीन छंद गावै।

त्रिगुणी माया ॥ टेक ॥ कुंभार काया कै बसि। हांडी ही माया। अहीर (महीर-यथादृष्ट*) कै महकी माया। ब्राह्मण कै ब्राह्मणी लाया। राजा कै सेल माया। भांणीयां कै हींग माया। तेली कै तेल माया। जंगलि वेलि माया। एक ॐकार नांनां प्रांण पोया ॥२३॥

म्हारा रे वैरागी जोगी।

जोगणि मनसा। मन जोगी। मन सरोवर ईश्वर। गगन ब्रह्म। मठ आसन। टेक। सासू सुरति। ससुरौ सबद। जोगणि मनसा। नाभि बसै ब्रह्म अस्थांन के वास ॥ २४ ॥

रमिरे रमिता सूँ चौगांन।

अहरणि नाद-विंद की काया। ताती सीली नाड़ी ए पवन। मूल द्वार पांचौ आसन करि। टेक। सहज ही पलांण। पवन का घोड़ा। ल्यौ लगाम। चित चाबक। चेतन असवार। ग्यांन गुरू। विल ब्रह्मद्वार—हीरौ पांन। अहीर अपांन ॥२५॥

---

* संभवतः 'महीर' गलती से लिख गया है।

सरवा रे सरवा त्रिभवन थे गरवा ।

मन त्रिभवन सारिषौ । टेक । जगत मन कौ पसारौ । मन काया गहै । उलटि फिरि पीर होय । निसपती जोगी काल भषै । गरुड़ मन, भुयंगम । पांन अपांन नांन्हौ कीयौ ॥ २६ ॥

सोंना त्यौ रस सोंना ल्यौ ।

सुनारी कुनारी नहीं । सास उसास धमणि । गगन अंतह करण । टेक । मूल नाभि नाद अहरणि । बिंद काया । गगन ब्रह्म । अषै गगन आसण । विषै कोयला । ताता सीला गुण न लीया । चंद सूर मन पवन सम । कांम रती कौ स्वाद । मासौ मन उनमन मैं रहै । अरध उरध मन । तीन सुनि ब्रह्म मैं । उनमनी डोरी । मन तराजू । पवन गदियांनां । तोल्यौ ब्रह्म बराबरि ॥ २७ ॥

शब्द-संग्रह

[जहाँ पृष्ठ का संकेत नहीं दिया है, वहाँ संख्या पद्य संख्या का द्योतक है ।]

अँचई=आचमन करता है, पीता है । आ ३

अंबर=आकाश, ब्रह्मरंध्र । आ १६

अँविरथा=व्यर्थ । प २१

अकल=कला रहित, निर्गुण निरंजन आ २०

अकुच=असंकुचित, बिखरा हुआ । स २३३

अकुलान=अजन्मा में । मगो २८

अषै=अक्षय । स ७७

अगह=जो ग्रहण नहीं किया जा सकता । स २५२

अगम=अगम्य आध्यात्मिक क्षेत्र । स १६

अचरा=अचर, स्थिर । प ५१

अछया=इच्छा । प ३

अजरांवर=अजर और अमर । आ ११

अतीत=परमात्मा, सिद्ध योगी, अतिथि । स १६७

अदली=न्यायशील । प २७

अदिसिट=अदृष्ट परब्रह्म । स २२

अनली=पिंगला नाड़ी । मगो ४८

अनहद=अनाहतनाद । स ५४

अपूठी अपूठौ=वापिस, पीछे, पीठ की ओर । ग्या २९, स २३४

अविहड=अखंड, जो विछोह नहीं होता । पंद्र ८

अभाजैमी=अविभक्त सी, संपूर्ण । प ३४

अमरी=अमरोली । स १४१

अमिय=अमृत । स ८७

अमे=हम, मैं प २६

अरध, अरधंत, अर्ध=नीचे, का नीचे गिरनेवाला (रेतस्) स ३५, ८१; शिपु २१७ पृ०

अरस-परस=छूना, आलिंगन करना । स ९१

अलिया वलिया=भ्रम जाल, प्रपंच करनेवाली और बलवती । स १०१

अलुणी=बिना नमक की । स २३१

अहूँठ=साढ़े तीन । स ४३

अहेडै=आखेट । स २९८

आंवल्यौ=आंवला । प २०

आगिला=आगेवाला, दूसरा व्यक्ति, प्रतिद्वंद्वी । स ६३

आछे=अक्षय परब्रह्म । स ३; है प १२

आडां=तिरछे । स १५८

आतीत=अतीत, पहुँच के बाहर प १३

आदं=आदि, मूल । स ५३

आफू=अफीम । स २०८

आभ=पानी । प ७

आरण=अरण्य, जंगल । प ५

आवटै=आवर्तन करता है, चक्कर लगता है । प ३

आविला=आता है । प ३४

इकुटी विकुटी, त्रिकुटी=पहली, दूसरी, तीसरी अर्थात इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ । स १८७

इम तौ=इसी प्रकार। प ४
उंद्र=चूहा। प्रा ११
उजहदारं=वजीर। प २७
उछेदै=उखाड़ फेंकता है। स २०५
उजेबा=भचके से उठाकर झुलाना। सिद पृ० १६१
उडियाणीं=उड्डीयान बंध। सिद पृ० १६०; ऊँची उड़ान। प १५
उतराधी=उत्तराखंड वाला, ब्रह्मरंध्रस्थ अथवा समाधिस्थ। स ४१
उतौ=उधर। स ६८
उदबुदि=उद्बुद्ध, ज्ञान में जागरित प ६२
उदिक=उदक, बिंदु, शुक्र। स २६०
उनमनि=उन्मनावस्था। स ५१, ५२, ५५, ६४, ८०; प ६, १६; सिद पृ० १५६; पंद्र ८
उरधंत, उरध=ऊपर का स ३५, ८१
उरवारं=वरे, इस पार। स १०४
उलीचौ=बाहर फेंको। प २२
ऊफड़=ऊबड़ खाबड़। प ५७
ऊबरै=उद्धार पावै। प २२
ऊभा=उठा हुआ; खड़ा। स ६६, १००
ऊरम=आत्मकलाओं में से एक। स १६६
ऊरा=अधूरा। स १६०
एकंकार=एकाकार, केवल। स ११०
एयौं=इस प्रकार। प १६
एह्वा=इस प्रकार। प ३
ओजुद=शरीर। स २३२
ओलै=ओट में। स १७२
औन्नाट=उच्चाटन।

कंद=स्कंध, शरीर। स ९५, १२३
कछोटा=छोटी धोती, कोपीन। सिद
कठंजरा=काष्टपंजर। प २७
कतवारी=कूड़ाकबाड़ वाल। स २६१
कतेबे=किताब में। कतेब वे ग्रंथ हैं जिनके आधार पर धर्म चलते हैं। स ६
करड़ा=कठोर, कड़ा। स २०५
करवै=करक में कडुवे में। स १२२
कलमा=मुसलमान धर्म का मूलमंत्र-ला इलाहेल्लिलाह मुहम्मदरसूलिल्लाह स। ११
कांइ=क्यों। प २१
कावरू=कांवर, वहँगी। प ४०
कापड़ी=गंगोत्तरी से कांवर पर जल लेकर चलने वाले यात्री। स ९६
कीधा=किया। प १६
कुचीया=कुंचित, सिपटा हुआ। स २३३
कुलती=एक प्रकार की मोटी दाल। स २३२
कूले=कूल्हे, नितम्ब। स १०६
केचट्या=उतारी। प २८
कोटणी=कोड़नी। प्रा १
कोडि=कोटि, करोड़। स ११९
कोरड़=कोरा। स २११
कोवत=कूवत, शक्ति। स २६५
कौतिग=कौतुक, तमाशा। प २५
पड़ पड़=चरबी के बोझ से मुक्त, नीरोग, हल्का। स १०६
पड़ासण=लाठी के साथ पीढ़े का संयोग, जिससे खड़े खड़े बैठने के समान विश्राम मिल जाय। स ४८;

प ९
षरतर=तीक्ष्ण । स १३०, २२०
षलंत=स्खलित । छिपु पृ० २३६
षांडवड़ी=ओसली । प ७
षांडी=खंडित की, नष्ट की । प १६
षांणी=चारखानियां (योनियां) स ४
षासा। पासा=अच्छी तरह पाग में बँधे हुए । स २४६
षिरै=क्षरित अथवा नष्ट होता है । स १४०
षिसै=खिसकता है, गिरता है । प ५
षीषा=शिष्य । स १५०
षीजै=फकता है । स १५६
षीर=अमृत । आ १६; सप्तु ६
षुध्या=क्षुधा, भूख । स ३०
षुर साण=शान में चढ़ा हुआ । स ६१
षूटी=नष्ट हुई । स ७४
षूटै=नष्ट होती है । स १८७; प ३१
षोषै=शुष्क, खोखले को । आ १२
षोलै=कोरे, कोर में । प २
गगन सिषर=आकाश मंडल । स १
गम=गम्य, जगत् । स १६
गरथैं=धन को । प ५
गहिला=ग्रहिल, व्याधि आदि किसी बाधा से ग्रस्त । प ३४
गाठिया=ग्रथित करना चाहिए। छिद
गावड़ी=गाय । प ३४
गिलिया=ग्रस्त किया । प १८
गींद=गेंद । स ७६
गुरयनां=गुरुज्ञानी । स १७३
गुहज्य=गुह्य, गुप्त । प्रा ८
गैर्भ=अमान में । प १९
गोंइ=गुप्त । स ११
गोपंत=गुप्त करना । स २४
गोटा=टिकिया । प २४
गोड़=पांव । प ४३
गोटिका=गुटिका । प ३६
गोढ़=गोठ, गोस्थान । प २६
गोतं=गोत्र कुल । स २२७
घट=घट दशा । स १३७
घड़ी=गढ़ी हुई । स ९
घड़ियाल=घड़ीवाला, पहरेदार । प २७
चपंति=दब जाते हैं । स १८५
चबका=चाबुक । प १४
चहोड़ना=चित, पट, अगल, बगल पीटना । स २११
चाणक=चाबाकी । स १४९
चापि=दबाकर । स २५५
चिगावै=बुझाई जाती है । प २८
चिनंति=चिन्हों से पहचानते हैं । गोर ४६
चीत=चित्त । स ७
चीया=चित्त । स २
चीरा=पत्थर । प्रा ६
चौतारं=चौपाया, पशु । स ६२
च्यंतामंनि=चेतावनी । प ३
छर्बंद=स्वच्छंद । सिद पृ० १६१
छतीस=क्षितीश, राजा । न ६
छांटै=अलग से । प २
छीजंत=नष्ट होती है । स ३९
छैल=रसिया, विषयासक्त जीव । स १७५
छाइ=राख में मिलाकर छना हुआ पानी, प्रसंग से निस्सार वस्तु । प २
जरनां, जरणां=जीर्ण करना,

पचाना। स १३
जरणां (विशेषण)=जिसने अपने योगानुभव को पचा लिया है, स्थिर कर लिया है। स २५२
जरै=जीर्ण होता है, पचता है, स्थिर होता है। स १९
जलहर=जलधर, बादल। प १८
जहृटिया=ठगा गया, धोखे में आया। स २२
जांण=ज्ञान। प १८
जिंद=जीवन, प्राण तत्व। स १५६
जुग=जग। स ७३
जोतिबा=जोतना, जोड़ना। सिद पृ० १६०
जौरा, जौंरा=यमराज। प २५
झकोल्या=डाला, मिलाया। प २८
झषै=कहता है (झक-झक में का झक) स १६४
झवकै=झपकी में, सोते-सोते। प ५७
झलझलंति=छलछलाता, छलकता है। स २८
झालरि=झांझ। प ६२
डाकरै=डुकरना, गर्जन करना। प ४८
डिंभ=दंभ। स १६०
डीबी=शक्ति, कुंडलिनी। प १९
डैरूं=डमरू। ग्या ४
डुकरिया=स्त्री, माया। प ४७
ढंकी=ढकना, आच्छादन। स ४
ढवका=उपाय। प १४
तकबीर=तदबीर योग युक्ति। स ११८; रो पृ० २०४
तलत्रत्त=पूरा, लबालब भरा हुआ। स १३६
तांण=खिंचाव। प १९
ताली=ताला। प २३
ताली=ध्यान, समाधि स ३०
तुलाइ=रजाई। प ६
तेजंग=गरम। स ५६
तृसालवां=तृषालु। प २०
थंभ=स्तंभ, खंभा। ग्या ४५
थंभन=स्तंभन। न ५
थांन-मांन=पद या तीर्थ का मान। स ८२
थांभी=स्तंभित की, रोकी। ग्या २६
थाभां=खंभा। प ६
थारी=तुम्हारी। स २२८
थीति=स्थिति। स ८०
थीर, थीरं=स्थिर, गंभीर। मगो १२१, स २८
थोथी=छूछा, खोखला। स ११९
दगध=जलाना। स १७
दरसण=मुद्रा, जिसे नाथपंथी कानों में पहनते हैं। स २७२
दहूँ, (दुहुं)=दोनों। स ५७
दाषूं, दाषौं=देखता हूँ, देखते हो। गोद १०, ६
दिसंतर=देशांतर, देशाटन। स २६
दुकाला=कुसमय। स २०
दुद्‌हिं=माया में भी। ग्या २०
दुलीचा=आसन। ग्या ४५
दुहेला-ली=दुर्लभ, कठिन। स ६१
दूझे=दूसरे। प २०
दूधाधारी=केवल दूध पर रहने वाला, पयाहारी। स ३९
देवल=देवलनाथ। स ८७
देवल=देवालय। स ९७

द्वादश (द्वादिस) अंगुल = प्राणवायु। स ११६, १५५
धणियाणो = किसान। प १७
धर अधर = पृथ्वी और आकाश, मणिपूर और ब्रह्मरंध्र कुंडलिनी और अलक्ष्य जोति, माया और ब्रह्म। स ९८
धरती = मूलाधार अथवा मणिपूर पा ३
धूंधाइ = धुँआधार जल रहा है। प ४७
धूतारा = धूर्त। स ४३
धूतै = ठगता है। स ४३
धोतरा = धतूरा। स २४१
धोरी = धवल सुपेद। प ३१
नरवै = नृपति, राजा। स १५
नवेलड़ी = नवीन। प १७
नवेरड़ी = नवीन। प ३१
नहितर = नहीं तो। स २७१
नां = का। प १६
नांवगर = नौकाधर, मांझी। ग्या १९
नाभ = नभिचक्र, मणिपूर। प १६
नाटारंभ = नाट्य का आरंभ, दिखावा। स १९९; न ६
नालि = तोप, बंदूक। स ९४
निपनां, निपजैं = निष्पन्न हुआ, पैदा हुआ। ग्या ४३, स २७
निपाया, निपाइ = उत्पन्न किया, की। प ४८, २७
निवारी = छोड़ देना चाहिए, छोड़ा निवारण किया। स ८३
निरंतरि = अलग, बाहर। स १००
निरति = योगानंद की अवस्था। मगो १०८
निरदावें = बिना किसी के अधिकार या दबाव के। स १६५
निरूता = बिना आहट किये। स ३८
निवाणा = निम्न, नीचे तलवाला। न ७
निसपती = जिसे योग की निष्पत्ति अवस्था प्राप्त हो गयी है। स १३९
निहचलै = निश्चल। स ८
निहार = निकास, निस्सरण। गोग पृ० २२४
नेत = नासा रंध्र अथवा नेत्र। स १०६
न्यंदै = निंदा करता है। स १२६
न्हासै = चलता है, दौड़ता। स २०९
पगारं = प्राकार, परकोटा। प १०
पछिम = सुषुम्णा। स ६६
पछेवड़ौ = पक्षपट। प ६
पडरवा = भैंस का बछड़ा जो अभी ब्यायी नहीं। प ४७
पणी = गाय भैंस का एक बार का ब्याना। प २०
पदया नीर = शुक्र (नीर) को चबा कर। प्रा० ६
पयाल = पाताल, मणिपूर मूलाधार। प ३६
परचा, परचै = परिचय, साक्षात्कार। स १५, २१
परछ्या = परीक्षा। बल
परतपि = प्रत्यक्ष। स ८८
परमल = परिमल, सुगंधि। रो, पृ० २०४
परणांव्या = परिणय करा दिया। प १६
परन्यां = परिणय किया। प ६०
परमांधै = प्रयोजन करे। मगो १२६
पलंका = परलंका, लंका के भी परे। स ६४

पलाण=जीन, दल्या। प १४
पलीता=बारूद को आग देने की बत्ती। स ६५
पसर=बहिः प्रसार। स ८३
पहुप=पुष्प। प १८
पांणती=सिंचाई। प १७
पांणिग=पानी की धारा। प ३१
पातिग=पातक। प १३
पालि=कूल, किनारा। मगो ९
पावड़ी,पावड़िया=खड़ाऊँ। स ४८, ३९
पिंडता=पंडित। स १९६
पीड़ी=पीड़न कर, पेरकर। प २४
पीर=गुरु। स ११८
पोतं=पुत्र। स २२७, प ३२
पौलि=द्वार। प १०
प्रनाले=नाली या नहर में। प २०
प्रवांणीं=प्रामाणिक, विश्वसनीय। स ६५, ९१
फटक=स्फटिक। स १७४
फिलसै=फिसलता है। स ३९
फुरतैं=फुर्ती से, शीघ्र। स २०
बंकनालि=सुषुम्णा या मेरु। प ३०
बंचौ=(को) धोखा दो, (से) बचो। सत ३
बंच्या=बाँचा, पढ़ा। स ६
बकवाली=बकवास। प ११
बजरी=बज्रोली। स १४१
बटक=बट का वृक्ष। प २
बदीती=बीता। प ५
बप=बपु, शरीर। स २२८
बसंतर्ड़ी=मगो ५९
बसत=वस्तु। स २५५
बसती=बस्ती, सत्। स १
बसू=पशु। प ३२
बहे=धारण करे। प २
बाकलि=बकरा। स २६९
बाइलै=बजाओ। स ११५
बाघर=घर। प १५
बागे=इएला बोल दिया। स २६८
बाफ=भाप। ग्या ४४
बालूड़ा=बालक। प १८
बाव=वायु। प ६१
बावै=बजावे। स १०६
बाही=जोता-बोई। स ३७
बाहुड़ि=फिर। स १६८
बिंदौ=प्राप्त करो। स १२४
बिषमी संधि=बंक नालि, सुषुम्ना या मेरु। प ३२, मगो ४८
बिगूते=विकृत या नष्ट हो गये। ग्या १०
बिटंबौ=बिडंबन करते हो, हँसी उड़ाते हो। न ९
बिपर=विप्र, ब्राह्मण। स २६१
बिमली=इड़ा नाड़ी। मगो ४८
बियाप=व्यापने वाली आधि व्याधियाँ प ३३
बिरोलि=बिलोकर, मथकर। प २१
बिलूधा=विलुप्त या लोप होगये। प १०
बिवरौ=लेखा-जोखा करो। भली-भाँति देखो, ढूँढो। सत ४
बिसाह्या=बिसाधन किया, मोल लिया। स १५४
बिसहर=विषधर, साँप। प ७
बिहड़ि=विदीर्ण होकर, बिलुककर,

अलग होकर। मगो ७४

बिहूनड़े=बिना। प २०

बीजसि=द्वितीया, दुइज। प २

बेधां बोध=कुंडली बेध किये हुओं से प्राप्त ज्ञान। स १६०

ब्यंदै=वंदना या प्रशंसा करना। स १२६

भंडित=विकलांग। स २६१

भँवर गुफा=ब्रह्म रंध्र। स १३२

भद्र=मुंडन। पं १

भसकावे=भक्षण करता है। स २०६

भांजिवा=तोड़ना चाहिए। स २०३

भाजंत=टूटता है। स २४

भाजसी=भागेंगे। स २३५

भुंडि=भोंडी। स २५१

भेदांनिभेद=रहस्य (अभेद) का रहस्य (भेद), रहस्योद्घाटन। स ६६

भेवं=भेद। स ९६

भ्रमरगुफा=ब्रह्मरंध्र। प ३०

भांडै=पात्र, हाँडी। स ३७

म=मा, नहीं। प १

मगरी=लकड़ी। प ४७

मनसई=इच्छा करता है। प ४४

मरणीं=मृत्यु। स २६

मलवंधा (मलमला, मिलवला)=स्वाद रहित और अरुचि उत्पन्न करने वाला। गोग पृ० २२३

मलाया=छूटे हुए हैं। प १०

मसीत=मसजिद। स ६८

महकी=महिष, भैंस। प ४२

महारस=योगानंद। मगो १२०

मही=मट्ठा। प २१

माइ=समाना। प २०

मांड्यामांड्यौ=मंडन किया, रचा। ग्या २२, प २६

मांहरा=हमारा। प १६

माहिला=में का, मध्य का। प ४

मातंगी=मदमाती। प २६

मिदंर=मंदिर। ग्या ३८, स २०९

मिजालु=मज्जा। प ४९

मुलांनम्=मौला, अल्लाह। प ३८

मुछावैं=मूर्छित करे। आ १

मेले=मारे। स ७४

मेल्हा=मुक्त किया। स १५३

मेल्ही=फेंकी औंधा फेंकी। प १७, ग्या १८

मेल्है=डाले। स १५४

मोल्यां=डाली, मिलाई। प २८

मौरियो=बौरा। प २०

म्यंत्र=मित्र, साथी। स ४०

रङ्ग=रांगा, शीघ्र गल जाने वाला, परिणामी। मगो ११०

रढ़िया=दृढ़ निश्चयवाली। प ४७

रराले=डाले। पा ५७

रहता=रहनेवाला, सत्तत्व। स २७०

रहति=शुद्धसत्ता। गोग २२२

रांए=देखो ऊपर 'रंग'। मगो १०९

राकसि=राक्षसी। प ४८

राचै=अनुरक्त होता है। प २

राह=राहु। प १८

रिव=रवि सूर्य। स २५७

रिध=ऋद्धि। स २६८

रींधा=पक्व भये, पच मरे। प ४४

रूड़ा=अच्छा, अच्छी तरह, सुरक्षित रूप से। प १०

रुपाणी=रोपी। प १७

रेत=रेतस्, शुक्र। स ८९
रौलांगी=रावलिन, जोगिन। आ १९
लड़बड़ा=ढीले ढाले। स १५२
वोछा=ओछा, छोटा। स २५५
संमीं=समक्ष, सामने। प ३
संवारी=रोक देता है। ग्या ३४
ससा=संशय। ग्या २४
सती=सत पर स्थिर। स २०
सथीर=स्थैर्य। स २३१
समधाओ=ठीक करो अच्छी तरह व्यवहार में लाओ। प ३१
समांण=मसान, शव। प २१
समाई=समाने का भाव। स २५६
सरवटा=जिसके सिर के बाल बटे हों। स २१८
सलइ=सरल। स २५१
सपुन=उक्ति। स १३८
ससंवेद=स्वसंवेद्य। स २२
सहजैं=सहज, स्वाभाविक रूप से। स २७
सहिनांड़ी=संधान, खोज, पहचान। स ११३
सहेता (संहेता)=सहित, से। स ८०, २५
साइर=सौरभ। प १८
सांडी=सादी, मलाई। प ४२
सांतीड़ा=सीता, सेंता, घिगड़ैल बैलों को नाथने का रस्सा। प ३१
सांधी=संधान की लक्ष्य साधा। स २०७
सांवि न सारा=सँवरा सारा नहीं। कुटे चावलों को भूसे से अलग नहीं किया। प ६
सांसा=संशय। ग्या ४०
सालिम=संपूर्ण। ग्या ३४
सिंभू=शम्भु। ग्या ३३
सीया=सीने (सिलने) में। प १९
सिचाणैं=बाज पक्षी ने। प २०
सींगणि=शिंजिनियां, प्रत्यचाएं। शार्ङ्ग धनुष अर्थ भी संभव है। स १२७
सीझंत=सिद्ध होता है। स १२६
सीला=शील वृत्ति स २३९
सीव=शिव, ब्रह्म। स २२७
सुंनि=शून्य। प १५
सुकर=शूकर, सुअर। स २४०
सुधि बुधि=शुद्ध बुद्धि। स ६५, ६६
सुन्यं=शून्य, ब्रह्मरंध्र, अभाव। स १
सुरहट=ऊंचा। प १५
सुरही=सुरभि, गाय। स १८८
सुन्संज्ञा=संशय। ग्या २४
सुसा, सुसिलौ=शशा, खरहा, सूक्ष्म माया। प २०
सुसूपाल=शिशुपाल, (काल)। स ७४
सूरिवाँ=सूरमा, शूर वीर। स ११४
सैवार=सपाट मैदान। प ४०
सेल=शल्य, बरछा। प ४२
सोसा=सोखा। ग्या २
हंसगोत=आत्म गोत्री। प ३२
हंड=समस्त। स २११
हंस घात=प्राणी का वध। स २२७
हियाली=हृदय में। प २६
हुजदारं=फौजदार, सेनापति। प २७
हेला=उपेक्षा। स २०३
हेलै=उपेक्षा से (में)। स १२१

———